Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

0152mN44
G2.2

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

0152mN44 2966
G2.2
Hindusthan Academy
Hindusthan.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

0152m N44
G2.2

29618

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

अक्तूबर, १९३२

तिथि 3.11.
संख्या 627

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

वार्षिक मूल्य पाँच रुपये—विदेशों से दस शिलिंग

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

0152 mN44
G2.2

हिंदुस्तानी, अक्तूबर १९३२

संपादक—रामचंद्र टंडन

संपादक-मंडल

१—डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फ़िल्० (ऑक्सन)

२—डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)

३—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम्० ए०, डी० एस्-सी (लंदन)

४—श्रीयुत धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०

५—श्रीयुत रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

लेख-सूची

(१) कबीर साहब की रमैनी—लेखक, श्रीयुत परशुराम चतुर्वेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ... ... ३६९

(२) कुंडलिया छंद—लेखक, श्रीयुत नरोत्तमदत्त स्वामी, एम्० ए० ... ३९७

(३) स्वामी रामानंद और 'प्रसंग-पारिजात'—लेखक, श्रीयुत शंकरदयालु श्रीवास्तव, एम० ए० ... ... ४०३

(४) प्राचीन भारत में तोल—लेखक, डाक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार, पी-एच्० डी० (वियना), डी० एस्-सी० (लंदन) ४२१

(५) चित्रकार 'कवि' मोलाराम की चित्रकला और कविता—लेखक, श्रीयुत मुकंदीलाल, बी० ए० (ऑक्सन), बार-एट्-लॉ ... ४३२

(६) उमर ख़ैयाम—लेखक, श्रीयुत इक़बाल वर्मा, 'सेहर'... ... ४५३

संपादकीय ४६२

समालोचना ४६८

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. ......2966......

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc. No. 2966

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग २ } अक्तूबर १९३२ { अंक ४

कबीर साहब की रमैनी

[लेखक—श्रीयुत परशुराम चतुर्वेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

[१]

कबीर साहब की रचनाओं में उन की रमैनियों का प्रचार उतना अधिक नहीं है जितना उन के शब्दों अथवा साखियों का है। शब्दों को, उन के संगीतमय होने के कारण, गाने वाले प्रायः 'निर्गुण गान' के नाम से गाया करते हैं और साखियों के दोहे, छोटे, सुसंघटित एवं भावपूर्ण होने के कारण, बहुधा सर्वसाधारण की बातचीत तक में प्रयुक्त हुआ करते हैं, परंतु केवल दोहों चौपाइयों के संयोग से प्रस्तुत की गई, स्वभावतः शिथिल बनावट के कारण, रमैनियों को स्मरण रखना कुछ कठिन बात है, जिस से इन की लोकप्रियता में बाधा पहुँचती है। तौभी विषय की दृष्टि से हम रमैनियों को कबीर साहब की अन्य रचनाओं से किसी प्रकार भी कम नहीं मान सकते। रमैनियों के अंतर्गत भी उन के विचारों का प्रायः उसी प्रकार न्यूनाधिक समावेश है और विषय-प्रतिपादन की उत्तम शैली एवं वर्णनात्मक पद्यों की सीधी तथा अधिकतर स्पष्ट भाषा के कारण, रमैनियाँ हमारे लिए नित्य पाठ

0-2-0

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की वस्तु बन सकती हैं। कबीर साहब के सांप्रदायिक अनुयायियों में रमैनियों का वही आदर है जो उन की अन्य रचनाओं का है।

'रमैनी' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में थोड़ा बहुत मतभेद है। रमैनियों के विषय को "जीवात्मा की संसरणादिक क्रीड़ाओं का सविस्तर वर्णन" बतलाते हुए किसी किसी ने उसे संस्कृत 'रामणी' शब्द का रूपांतर माना है[1]। परंतु एक तो रमैनियों का विषय उतना संकुचित नहीं दूसरे रामणी शब्द का 'रमैनी' में परिवर्त्तित होना उतना स्वाभाविक नहीं जान पड़ता। रमैनी शब्द का मूल रूप 'रामायण' शब्द का होना कदाचित् अधिक संभव समझा जा सकता है क्योंकि 'रामायण' का अर्थ अथवा, उसी के अनुसार, रामायण ग्रंथ का विषय रामयशोवर्णन होता है जो वस्तुतः कबीर साहब की रमैनियों का भी मुख्य विषय है और रामायण शब्द से क्रमशः 'रमैन' तथा अल्पत्व बोध कराने के लिए, 'रमैनी' शब्द बन जाना कोई असंभव बात नहीं। परंतु रमैनी शब्द कबीर साहब के समय से भी पहले का जान पड़ता है क्योंकि स्वयं उन के 'बीजक' में ही हम इस शब्द के प्रयोग एक से अधिक भिन्न भिन्न अर्थों में पाते हैं। जैसे—

अद्बुद रूप जाति की बानी,
उपजी प्रीति रमैनी ठानी।

(रमैनी ४ की तीसरी[2] पंक्ति)

अथवा,

जाकर नाम अकहुआ भाई,
ताकर कहा रमैनी गाई।

(रमैनी ५१ की पहली[3] पंक्ति)

---

[1]कबीर साहब का बीजक—साधु विचारदास जी द्वारा सटिप्पण संपादित और श्री नागेश्वरबख़्श सिंह जी द्वारा प्रकाशित (प्रथम वार सं० १९८३) पृ० २८९-९०।

[2] 'बीजक' (बेलवीडियर प्रेस, प्रयाग), पृष्ठ ४।

[3] वही, पृ० २१।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथवा,

छ लख छानवे सहस रमैनी,
एक जीव पर होय।

(साखी २८८ की दूसरी[1] पंक्ति)

में रमैनी शब्द का व्यवहार क्रमशः स्तुति, वर्णन तथा उपदेशमय पद्य के अर्थों में हुआ है और, संभव है, अन्य ग्रंथकारों की रचनाओं में भी यह शब्द भिन्न भिन्न प्रकार से व्यवहृत हुआ हो। जो हो, इतना प्रायः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि रमैनी शब्द का प्रयोग पद्य विशेष के अर्थ में कबीर साहब के पहले से भी होता रहा है यद्यपि अभी तक उन के पूर्ववर्त्ती अथवा समकालीन किसी कवि की रमैनी हमें देखने को नहीं मिली। आज तक की उपलब्ध रमैनियों में से सब से पुरानी कबीर साहब की ही कही जाती हैं और कबीरपंथी लोगों के अनुसार इन की संख्या बहुत अधिक है। इन के यहाँ यह कदाचित् विश्वास किया जाता है कि कबीर साहब ने—

सहस छानवे औ छव लाखा,
जुग परमान रमैनी भाखा।

अर्थात् युगधर्मानुसार छः लाख छयानवे हज़ार रमैनियों की रचना की थी। परंतु कबीर-संबंधी विषयों का ज्ञान रखने वाले अन्य विद्वानों के विचार में यह संख्या काल्पनिक मात्र है और, जैसा कि उपरोक्त २८८वीं साखी अर्थात्

जो मिलिया सो गुरु मिलिया,
सीष न मिलिया कोय।
छ लख छयानवे सहस रमैनी,
एक जीव पर होय॥

के भाव से लक्षित होता है, उपरोक्त बड़ी संख्या संभवतः बहुत अधिक के लिए दी गई है।

कबीर साहब की रमैनियाँ जिन जिन ग्रंथों में संगृहीत बतलाई जाती

---

[1] 'बीजक' (बेलवीडियर प्रेस), पृ० १११।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं उन में से, 'बीजक' को छोड़ कर 'अक्षर भेद की रमैनी', 'अक्षर खंड की रमैनी', 'चौका पर की रमैनी', 'करमकांड की रमैनी' और 'रमैनी' नामक ग्रंथों के नाम 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की खोज'[1] में दिए गए हैं और 'मिश्रबंधुओं' ने अपने 'हिंदी नवरत्न' में 'बलक की रमैनी' नामक एक अन्य ग्रंथ की भी चर्चा की है[2]। परंतु इन उपरोक्त ग्रंथों में से 'बीजक' को छोड़ कर कदाचित् कोई दूसरा ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'कबीर ग्रंथावली' में जो रमैनियाँ संगृहीत हैं उन के विषय में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उन में से कोई ऊपर लिखित संग्रहों के अंतर्गत आ गई हैं अथवा नहीं। 'बीजक' में कुल मिला कर चौरासी रमैनियाँ हैं जो ग्रंथ के आरंभ में अथवा, एकाध संस्करणों के अनुसार, 'आदि मंगल' के अनंतर दी हुई हैं। इन रमैनियों का क्रम प्रायः सभी संस्करणों में एक ही प्रकार दिया हुआ है और जहाँ तक विदित है, केवल महाराज रीवाँ-नरेश द्वारा संपादित संस्करण अथवा, उसी के आदर्श पर प्रकाशित कुछ संस्करणों में ही रमैनी संख्या २ रमैनी संख्या १ के स्थान पर दी गई है और इसी प्रकार पहली दूसरी के स्थान पर है। रमैनियों के इस क्रम-भेद के विषय में यह कथा प्रसिद्ध है कि कबीर साहब के शिष्यों में से जग्गूदास और भग्गूदास नामक दो भाई थे। जब कबीर साहब के देहांत का समय निकट आया तो 'बीजक' ग्रंथ का संग्रह तय्यार कर के उन्हों ने इन दोनों की माता को सुरक्षित रखने के लिए दे दिया। परंतु कबीर साहब के देहावसान के अनंतर जब उक्त दोनों भाइयों में 'बीजक' के लिए झगड़ा खड़ा हुआ तो उन की माता ने आपस के वैमनस्य को दूर करने की इच्छा से इस की प्रथम दो रमैनियों के क्रम में फेरफार कर के इस के दो भिन्न भिन्न संस्करण बना दिए और दोनों पुत्रों को एक एक दे कर उन्हें संतुष्ट कर

---

[1] 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की खोज', भाग १ (काशी नागरी-प्रचारिणी सभा) पृ० १८-१९।

[2] मिश्रबंधु, 'हिंदी नवरत्न' (दूसरा संस्करण), पृ० ४५१-२।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिया। इन्हीं दोनों संस्करणों में से एक इस समय महाराज रीवाँ-नरेश का संस्करण कहा जाता है जिसकी पहली 'रमैनी' "जीव रूप एक अंतर बासा, अंतर ज्योति कीन परगासा" से आरंभ होती है और दूसरा पूरनदास का संस्करण कहलाता है जिसकी पहली रमैनी, "अंतर ज्योति सब्द एक नारी, हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी" से आरंभ होती है।

'बीजक' की इन रमैनियों में से सब का रूप एक सा नहीं है। रमैनी की बनावट एक या अधिक चौपाइयों के साथ साखी अथवा दोहा जोड़ कर और कहीं कहीं बहुत सी चौपाइयों के बीच यथास्थान कई साखियाँ अथवा दोहे डाल कर पूरी की जाती है, परंतु बीजक की कुल रमैनियों का ढाँचा ठीक इसी प्रकार का नहीं है। २८, ३२, ४२, ५६, ६२, ७०, ८० एवं ८१ संख्या की रमैनियों में साखी अथवा दोहे का अस्तित्व ही नहीं है, १५ वीं रमैनी में चौपाई की दो ही पंक्तियों के अनंतर साखी आई है और अन्य रमैनियों में ३ से १२ तक पंक्तियों के अनंतर साखियाँ दी गई हैं। इसी प्रकार 'बीजक' की साखियों अथवा दोहों की मात्रा तथा लय में भी बहुत कुछ अंतर है। 'बीजक' की इन कुल ८४ रमैनियों के अंतर्गत आई हुई चौपाइयों में ४६० तथा साखियों अथवा दोहों में १५२ अर्थात् कुल मिला कर ६१२ पंक्तियाँ हैं।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा 'नागरी-प्रचारिणी ग्रंथमाला' के अंतर्गत प्रकाशित 'कबीर ग्रंथावली' में रमैनियों के पहले 'राग सूहौ' नाम दे कर एक पद की रचना की गई है जिस की टेक के अनंतर २० पंक्तियाँ चौपाइयों के रूप में आती हैं और अंत में कदाचित् पहली रमैनी की संख्या सूचित करने के लिए १ का अंक दिया गया है। परंतु वास्तव में ये पंक्तियाँ रमैनी की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आतीं। इस ग्रंथ में दी हुई रमैनियाँ केवल छः हैं, जिन्हें क्रमशः सतपदी रमैणी, बड़ी अष्टपदी रमैणी, दुपदी रमैणी, अष्टपदी रमैणी, बारहपदी रमैणी तथा चौपदी रमैणी के नामों से सूचित किया गया है और ये नाम संभवतः 'बीजक' की रमैनियों के समान छोटी या बड़ी दो, चार, सात, आठ या बारह रमैनियों के संयोग के कारण ही इन्हें दिए गए हैं और इसी कारण इन में से प्रत्येक के भीतर उन की पूर्त्ति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करने वाले कई एक दोहे आ गए हैं। इन छोटे बड़े पदों अथवा अंशों के भी आकार प्रकार 'बीजक' की रमैनियों की ही भाँति एक से नहीं हैं, किंतु किसी किसी पद में यदि चौपाई की तीन पंक्तियों के ही अनंतर दोहा आ जाता है तो औरों में २५, २६ अथवा ८२ तक पंक्तियों के अनंतर मिलता है। इसी प्रकार इन रमैनियों के भी दोहों की मात्रा तथा लय में बहुत कुछ भिन्नता है। उपरोक्त राग सूहौ की टेक को छोड़ कर 'कबीर-ग्रंथावली' में रमैनियों के अंतर्गत आई हुई चौपाइयों की ४०३ तथा साखियों अथवा दोहों की ८२ अथवा कुल मिला कर ४८५ पंक्तियाँ हैं।

इन उपरोक्त रमैनियों के सिवाय "कबीर-ग्रंथावली" की पाद-टिप्पणी[1] में 'ग्रंथ-बावनी' नाम से छः पदों अथवा अंशों की एक और रमैनी उद्धृत है जिस में विशेषता यह है कि इस का आरंभ दोहे से और अंत चौपाई से होता है तथा इस के पहले और छठे पदों के आदि में एक एक की जगह दो दो दोहे दिए हुए हैं। यह छोटा 'ग्रंथ' उक्त ग्रंथावली के परिशिष्ट भाग में[2] पद १५२ करके एक बार और उद्धृत किया गया है, किंतु इन दोनों उद्धरणों में बहुत कुछ पाठभेद है और दोनों की पंक्तिसंख्या में भी ८ का अंतर है। इस ग्रंथ की बहुत सी पंक्तियाँ 'बीजक' में संगृहीत 'ज्ञानचौंतीसा' की कई एक पंक्तियों से भी न्यूनाधिक समानता रखती हैं परंतु इन दोनों में उदाहृत वर्णमाला के वर्णों में थोड़ी बहुत भिन्नता है। 'ग्रंथ-बावनी' की वर्णमाला इस प्रकार है :—

क, ख, ग, घ, न, च, छ, ज, झ, न, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, ज, र, ल, व, स, ष, स, ह, ष

और 'ज्ञानचौंतीसा' की वर्णमाला नीचे लिखे अनुसार दी हुई है :—

क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, स, ष, स, ह, क्ष

---

[1] कबीर-ग्रंथावली (का० ना० प्र० सभा), पाद टिप्पणी, पृ० २२४-२२७।

[2] वही, परिशिष्ट, पृ० ३१०-३१३।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिन के देखने से पता चलता है कि "ज्ञानचौंतीसा" की वर्णमाला प्रायः आजकल की प्रचलित वर्णमाला के ही अनुसार है, किंतु 'ग्रंथबावनी' की वर्णमाला में 'ङ' और 'ञ' के स्थान पर 'न' दिया हुआ है तथा 'य' और 'क्ष' के स्थान पर क्रमशः 'ज' और 'ष' लिखे हैं। इस के साथ ही इन दोनों वर्णमालाओं की तुलना से यह भी विदित होता है कि जिस समय "ग्रंथ-बावनी" की रचना हुई थी उस समय तक संभवतः हमारी वर्णमाला का रूप पूर्णतः विकसित नहीं हुआ था जिस कारण यह ग्रंथ 'ज्ञानचौंतीसा' से पहले की रचना समझा जा सकता है और इन दोनों के रचनाकाल में बहुत कुछ अंतर भी है। स्वयं 'ग्रंथ-बावनी' के ही उपरोक्त दो पाठभेदों अर्थात् पादटिप्पणी की "ग्रंथ-बावनी" तथा परिशिष्ट की १५२ वीं पदरचना की वर्णमालाओं में भी यह अंतर विद्यमान है जिस से पता चलता है कि परिशिष्ट के पद के आधार ग्रंथ 'श्री ग्रंथसाहब' का संग्रह भी "ग्रंथ-बावनी" की रचना के उपरांत ही हुआ होगा और संग्रहकर्त्ता ने उस समय की वर्तमान वर्णमाला के अनुसार मूलग्रंथ में फेर फार कर दिया होगा। जो हो 'ग्रंथ-बावनी' की रमैनी में दोहों की १६ और चौपाइयों की ६८ अर्थात् कुल मिला कर ८४ पंक्तियाँ हैं।

[२]

'बीजक' की रमैनियों के कोई शीर्षक नहीं दिए हैं और न उन का आपस में विषयानुसार कोई क्रम ही जान पड़ता है। आरंभ में यदि सृष्टि विषयक चर्चा छिड़ती है तो थोड़ी ही दूर जा कर भ्रमजाल, मायाप्रपंच, ब्रह्मज्ञान, चेतावनी, अन्यमतसमीक्षा, आदि अनेक विषय एक के अनंतर दूसरे आने लगते हैं और बीच बीच में पहले आए हुए विषयों के दुबारा वर्णन भी होते रहते हैं जिस से रमैनियाँ किसी सुव्यवस्थित रूप में रक्खी गई नहीं जान पड़तीं। तौभी इन रमैनियों को ध्यानपूर्वक देखने से इन के मुख्य मुख्य विषयों में क्रमशः अन्यमतसमीक्षा, चेतावनी, मायाप्रपंच, सृष्टि-विकास, ब्रह्मज्ञान, आदि का पता बहुत शीघ्र लग जाता है। इस के विरुद्ध 'कबीर-ग्रंथावली' की रमैनियों का क्रम अधिक सुसंगत जान पड़ता है

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और उन में अन्य मतों की खंडनात्मक आलोचना के स्थान पर मूलतत्व एवं ब्रह्मज्ञानादि का ही विवेचन विशेष रूप में दिखलाई देता है। सृष्टि-विकास, मायाप्रपंच, पाखंड, आदि विषयों का इन में अपेक्षाकृत कम समावेश है। 'बीजक' की रमैनियों में किया हुआ विषयों का प्रतिपादन भी, छोटी छोटी रमैनियों में अंशतः अथवा संक्षेप रूप में बे-तरतीब आने के कारण, भली भाँति स्पष्ट अथवा सुबोध नहीं हो पाया है, किंतु 'ग्रंथावली' की रमैनियाँ बड़ी बड़ी हैं तथा विषयों के वर्णनानुसार उन में थोड़ा बहुत क्रम अथवा सुसंगति का भी विचार किया गया जान पड़ता है, जिस से उन के समझने में अधिक कठिनाई का अनुभव नहीं हो पाता। तौ भी उपरोक्त दोनों ग्रंथों के पाठों में बहुत कुछ साम्य भी है और दोनों का मिलान करने पर पता चलता है कि रमैनियों की प्रायः १२५ पंक्तियाँ केवल थोड़े थोड़े पाठांतरों के साथ दोनों संग्रहों में एक ही प्रकार की हैं और 'कबीर-ग्रंथावली' की 'अष्टपदी रमैणी' में दी हुई ६८ पंक्तियों में से ५० पंक्तियाँ बीजक में ज्यों की त्यों रक्खी हुई हैं। इस पाठसाम्य के साथ साथ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि समान पंक्तियों में अधिकतर वे ही आती हैं जिन के विषय खंडनात्मक आलोचनादि हैं अथवा जिन में मायाप्रपंच, भ्रमजाल एवं अज्ञानादि का वर्णन है। 'ग्रंथबावनी' का विषय मिश्रित है और कोई विशेषता नहीं।

'कबीर-ग्रंथावली' की रमैनियों में से प्रत्येक में प्रायः सभी आवश्यक विषयों का गौण रूप से समावेश है, किंतु उन पर ध्यानपूर्वक विचार करने से पता चलता है कि जिन जिन विषयों का उन में प्रधान रूप से उल्लेख है उन का क्रम सुसंगत एवं सुव्यवस्थित है। रमैनियों के पहले जो राग सूहौ का पद है उस की टेक में ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता तथा अज्ञेयता का वर्णन है; और उस की प्रशंसा करने के अनंतर क्रमशः क़ाज़ी, मुल्ला, शेख़, जंगम, योगी, जैन, भक्त, पंडित एवं संन्यासी के कर्त्तव्यों का दिग्दर्शन कराया गया है, तथा पद के अंत में कबीर साहब ने उस अनिर्वचनीय तथा अग्राह्य 'पुरिस' परमात्मा में अपने को लवलीन होना बतलाया है। इस के आगे 'सतपदी रमैणी' में कहा है कि जिस आदि पुरुष ने केवल कहने सुनने भर के ही लिए

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वर्तमान जगत् की रचना की उसे, आश्चर्य की बात है कि, आजतक किसी ने नहीं पहचाना। वह परम तत्त्व स्वयं आनंद स्वरूप है और त्रिगुणात्मिका माया के आवरण में अपने आप को उस ने छिपा रक्खा है। वह 'हरि' एक 'तरवर' के समान है जिस की शाखाओं में गुण के पल्लव, ज्ञान के फूल एवं राम नाम के सुंदर फल लगे हुए हैं और जिस पर चेतन किंवा अचेतन दोनों प्रकार के पक्षी बसेरा ले रहे हैं। मिथ्या संसार के व्यर्थ विस्तार में पड़ कर 'खसमराम' को भूल जाना निरी मूर्खता है, अतएव सांसारिक जीवन को 'लहरि तरंग' के समान क्षणस्थायी समझते हुए अविनाशी 'राम नाम' को ही ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि,

भौसागर अथाह जल,
तामैं बोहिथ राम अधार।
कहै कबीर हम हरिसरन,
तब गोपद खुर विस्तार॥[1]

किंतु इस परमोपयोगी उपदेश को लोग बहुधा भूल जाया करते हैं क्योंकि उपरोक्त माया का बंधन ऐसा है जिस से, 'बड़ी अष्टपदी रमैणी' के अनुसार, वास्तविक तत्त्व की ओर ध्यान देने की अपेक्षा हम अच्छे बुरे, कुलीन अकुलीन, गुणी गुणहीन, एवं स्तुति निंदा तथा मानापमानादि के व्यर्थ ढकोसले में ही पड़ा रहना अधिक श्रेयस्कर समझने लगते हैं और शास्त्र वेदादि अनेक विद्याओं के पचड़े के प्रभाव में आ कर सदा तीर्थ व्रत पूजादि में अपना जीवन खोते रहते हैं और अंत में भ्रम जाल के कारण ऐसी स्थिति आ जाती है कि—

भूलि पर्‌यो जीव अधिक डराई,
रजनी अंधकूप ह्वै जाई।
माया मोह उनवैं भरपूरी,
दादुर दामिनी पवनां पूरी॥

---

१ 'कबीर-ग्रंथावली,' (का० ना० प्र० सभा) पृष्ठ २२८।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तरिपै वरिषै अखंड धारा,
रैनि भामिनी भया अँधियारा।
तिहि विवोग तजि भये अनाथा,
परे निकुंज न पावै पंथा॥[१]

अर्थात् व्यर्थ के जंजाल में अपने को भटकता हुआ पा कर मनुष्य और भी अधिक भयभीत होने लगता है और अज्ञान का अंधकार घना होता जाता है। माया मोह के बादल चारों ओर से उमड़ आते हैं, क्षणिक यशोगान, सुख एवं उमंग के बीच काल का प्रवाह बना रहता है और ज्ञान के बिना अँधेरा दूर नहीं हो पाता। ऐसी दशा में मनुष्य अनाथ की भाँति निरवलंब हो जाने के कारण, प्रयत्न करने पर भी अपना मार्ग नहीं ढूँढ पाता। तौ भी आंतरिक अहंकार के फेर में पड़ कर अल्पसुख के लालच में वह 'मेरु' पर्वत के समान दुःख भोगा करता है और उस का नाचना चौरासी लाख योनियों की परिक्रमा में भी कभी बंद नहीं होता। इसलिए कबीर साहब का उपदेश है कि मनुष्य का जन्म पा कर अपने कल्याण के निमित्त यह समझ लेना चाहिए कि—

अंमृत केवल राम पियारा,
और सबै विष के भंडारा।
हरिख आहि जो रमियैं रामा,
और सबै बिसमां के कांमां॥
सार आहि संगति निरबानां,
और सबै असार करि जांनां।
अनहित आहि सकल संसारा,
हित करि जांनियैं राम पियारा॥
साच सोई जे थिरह रहाई,
उपजै बिनसै झूठ ह्वै जाई।

[१] 'कबीर-ग्रंथावली' (का० ना० प्र० सभा), पृ० २२९।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मींठा सो जो सहजैं पावा,
अति कलेस कैं करू कहावा ॥

तथा

आपण मैं जे रह्यौ समाई,
नेडे दूरि कथ्यौ नहीं जाई।
ताके चीन्हैं परचौ पावा,
भई समाधि तासों मनलावा ॥[1]

इस प्रकार धारणा कर लेने पर परमात्मा के प्रति प्रीति का संचार होने लगता है और धीरे धीरे अज्ञान का नाश होने के कारण आत्मा को चिरस्थायी शांति मिलने लगती है। ऐसी स्थिति अथवा आनंदोत्पादक अवस्था का वर्णन करते हुए कबीर साहब अपनी 'दुपदी रमैंणी' में कहते हैं कि जिस प्रकार आषाढ़ मास में सूर्य द्वारा संतप्त पृथ्वी पर पानी बरस जाने के कारण ताप दूर हो जाता है एवं ऋतु के स्वभावानुकूल अमृत की धारा प्रवाहित हो पड़ती है तथा सारी पृथ्वी हरी भरी हो जाती है उसी प्रकार संसार के त्रिविध तापों द्वारा दुःखित हृदय वाले मनुष्य की दशा भी परिवर्त्तित हो जाती है और उस की मनोवृत्ति उस विरहिणी स्त्री की भाँति होती है जिस का पति, बहुत काल के दुःखदायक वियोग के अनंतर आ कर, उस से मिल जाता हो। परमात्मा सर्वशक्तिमान् एवं सर्वनियंता है और उस अविगत की गति समझ में नहीं आती। परमात्मा के विधान द्वारा एक ही मनुष्य जब तक माया के विविध बंधनों में जकड़ा रहता है, अज्ञान के कारण अनेक दुखों से छुटकारा नहीं पाता; और वही जब, ज्ञान का उदय हो जाने पर, वस्तुस्थिति से अभिज्ञ हो जाता है तो, उस के हृदय में अलौकिक भावों के उद्भव के कारण, उसे शीघ्र शांति और आनंद मिल जाते हैं। परमात्मा सर्वव्यापी भी

---

१ 'कबीर-ग्रंथावली' पृ० २३२।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है और वह सब के हृदयों में निवास करता है, किंतु सच्चे भाव के बिना उस का पता लगाना उसी प्रकार कठिन है जैसे काठ के भीतर वर्तमान आग को पा लेना, बिना प्रयत्न के कठिन हो जाता है।

किंतु इन रहस्यों के ज्ञान से विरले ही मनुष्य लाभ उठाते हैं। संसारी लोगों का तो यह स्वभाव है कि वे सीधे परमतत्व का परिचय पाना पसंद नहीं करते बल्कि प्रायः सदा सांप्रदायिक मतमतांतरों के बखेड़े में पड़ काल्पनिक बातें गढ़ते हुए उन से अपना मन बहलाया करते हैं। ऐसे ही मतों अथवा विचारों की समीक्षा कबीर साहब ने आगे की 'अष्टपदी रमैणी' में की है। उन का कहना है कि मुसल्मानों के अनुसार सृष्टि के आरंभ में आदम और हव्वा की उत्पत्ति हुई थी और हिंदू मुसल्मानों के बीच का मतभेद बिल्कुल गहरा और पुराना है, परंतु ये लोग यह नहीं सोचते कि आदम और हव्वा के भी पहले क्या रहा होगा और हिंदू मुसल्मानों के बीच में यदि वास्तव में कोई स्थायी मतभेद है तो वह उन के जन्मकाल से ही क्यों नहीं दीख पड़ता। इसी प्रकार पंडित लोग वेदादि को पढ़ कर संध्यावंदन आदि करते रहते हैं और नित्यकर्मों की इस परंपरा द्वारा अपने को पवित्र मानते हुए अभिमान के कारण फूले नहीं समाते किंतु इन लोगों को यह पता नहीं कि परमात्मा गर्व-प्रहारी है और वह इन बातों को कभी सहन नहीं कर सकता। क्षत्रिय कहलाने के कारण जीवहिंसा में निरत रहनेवाले लोगों की भी यही दशा है क्योंकि ये लोग अपने वास्तविक शत्रु अर्थात् पंचेंद्रियों को नहीं मारते बल्कि कामदेव के फेर में पड़ कर अनेक दुःख उठाया करते हैं। जैन, बौद्ध, शाक्त चार्वाकादि मतानुयायियों का भी यही हाल है। ये सभी लोग वास्तविक तत्त्व को छोड़ कर व्यर्थ इधर उधर भटकते फिरते हैं। इस कारण सांप्रदायिक बातों को ही सच्ची मान कर संसार में सुख की इच्छा करनेवाले लोगों को उपदेश देते हुए कबीर साहब कहते हैं—

जिनि यह चित्र बनाइया,
सो साचा सुतधार।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहैं कबीर ते जन भले,
जे चित्रवत लेहिं विचार ॥[1]

अर्थात् यह सारा संसार एक चित्र के समान है और इस का वास्तविक चित्रकार परमात्मा है। वही इस का सूत्रधार अथवा नियामक है और जिस प्रकार साधारण चित्र रंगरेखादि का परिणाममात्र होता है और उस की वास्तविकता कुछ भी नहीं चित्रकार की कल्पना है। उसी प्रकार चित्रकार परमात्मा ही सत्य है और चित्र संसार असत्य है।

कबीर साहब ने इस परमात्मा का वर्णन अपनी अगली 'बारहपदी रमैणी' में इस प्रकार किया है। वे कहते हैं कि परमात्मा की तुलना में कोई भी वस्तु नहीं आ सकती। उस में न तो कोई भूख है न प्यास है, न धूप है न छाया है, न सुख है न दुःख है। उस का न तो कोई रूपरेख है और न वह हल्का भारी कह कर तौला जा सकता है। उस का आदि अंत तक नहीं जाना जा सकता और न उस का दाहिना बायाँ, आगा पीछा अथवा नीचा ऊँचा बतलाया जा सकता है। उस ने किसी को उत्पन्न नहीं किया और न वह किसी दूसरे के द्वारा स्वयं उत्पन्न है। वह अविगत है अरचित है और निराधार है तथा लोक वेद इन सब से एक दम न्यारा है। वह न तो दूर है न निकट है और न गर्म है न ठंडा है। न गोरा है न साँवला है और न ब्याहा है न कांरा है। उस का कोई भी संबंधी नहीं और न वह उन में से है जिन्हें राम, कृष्ण, वामनादि अवतारों के नाम से पुकारते हैं। वास्तव में वह

अविगत अपरंपार ब्रह्म,
ग्यांन रूप सब ठांम।
बहु बिचार करि देखिया,
कोइ न सारिख राम॥

अथवा,

---

[1] 'कबीर-ग्रंथावली' (का० ना० प्र० सभा) पृ० २४०।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वो है तैसा वो ही जानै,
ओ ही आहि आहि नहीं आनै।[1]

इस के उपरांत अंत में उपरोक्त सारी रमैनियों का उपहार स्वरूप चौपदी रमैंणी में उपदेश देते हुए, मनुष्यमात्र के लिए, कहा है,—सारा मानव समाज एक है और आपस में कोई मतभेद नहीं। जो भेद अथवा भिन्नता एक दूसरे के बीच दिखाई पड़ती है वह केवल अविद्याजनित है और बिना कृपालु गुरुद्वारा ज्ञान प्राप्त किए, वह किसी प्रकार दूर नहीं की जा सकती। संप्रदायों के नियमानुसार चलने वाले जो लोग विविध प्रकार के आचारादि का पालन कर के भ्रमवश मानवसमाज में दंभ एवं पाखंड का प्रचार करते हैं अथवा जो लोग शास्त्रोक्त विधियों के साथ प्रस्तरादि की मूर्तियों की पूजा मात्र कर लेना ही अपना कर्त्तव्य समझ बैठते हैं वे दोनों ही ठीक रास्ते पर नहीं हैं क्योंकि संसार के आवागमन से मुक्ति पाने के लिए ऊपरी बातों की जगह सच्चे हृदय की आवश्यकता है और सच्चा हृदय भगवान की भावमयी भक्तिद्वारा ही प्राप्त हो सकता है। हरिभक्ति से हृदय पर अटल विश्वास का अधिकार हो जाता है जिस से संशय निर्मूल हो जाते हैं और एकमात्र परम तत्त्व की प्राप्ति होती है। इस लिए अंत में कहा है कि—

जब लग भाव भगति नहिं करिहौ,
तब लग भव सागर क्यूं तिरिहौ।
भाव भगति विसवास बिन,
कटै न संसै सूल।
कहै कबीर हरि भगति बिन,
मूकति नहीं रे मूल[2]॥

और वास्तव में यही रमैनियों के सारे उपदेशों का निचोड़ है।

---

[1] 'कबीर-ग्रंथावली', पृष्ठ २४१।

[2] वही, पृष्ठ २४५।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[३]

'ग्रंथावली' की रमैनियों में किए गए उपरोक्त विषय-प्रतिपादन से यह स्पष्ट है कि इन की रचना अथवा इन का वर्तमान संपादन किसी विशेष उद्देश्य को ले कर किया गया था और अपने पद्यों की अपेक्षाकृत सुसंगति एवं विषयानुसार अनुक्रमण के कारण यह प्रकरण स्वयं पूर्ण और स्वतंत्र कहा जा सकता है। परंतु 'बीजक' वाले रमैनी प्रकरण के विषय में हम ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि पहले तो इस की रमैनियों में कोई स्पष्ट संगति नहीं दूसरे उन के विषयों के मुख्यतः खंडनात्मक होने के कारण उस प्रकरण की रचना का कोई निश्चित ध्येय नहीं लक्षित होता। 'ग्रंथावली' की रमैनियों का रचयिता एक परमभक्त कवि है जिसे अपने इष्टदेव राम नामधारी परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता, सर्वनियंतृत्व, सर्वव्यापकत्व एवं नित्यानंदपरत्व पर अटल श्रद्धा है, जो अपने इष्टदेव के साथ अपनी आत्मीयता का अनुभव करता है और जो उसे दयासागर अथवा एकमात्र आश्रय समझ कर उस के अहर्निश चिंतन तथा नामस्मरण को ही मुक्ति का परमसाधन मानता है। इस कवि के अनुसार भावमयी भक्ति ही अपने अथवा जगत् के कल्याण का अद्वितीय राजमार्ग है और भिन्न भिन्न मतानुसार प्रतिपादित साधन नितांत कृत्रिम और भ्रममूलक हैं। वास्तव में जब सारे पदार्थ मूलतः एक हैं और एक ही वस्तु के सब कहीं व्याप्त रहने के कारण सब की एकता स्वयंसिद्ध हो जाती है, ऐसी स्थिति में, वास्तविक तत्त्व की ओर समुचित ध्यान न दे कर, अज्ञानवश, दृश्यमान भेदों के आधार पर, विविध मतमतांतरों की कल्पना करना निरी मूर्खता के सिवाय और क्या कहा जा सकता है। 'बीजक' की रमैनियों के रचयिता को वर्तमान संसार में दीख पड़ने वाले अनेक मतभेद हार्दिक दुःख पहुँचाते हैं क्योंकि उन के भिन्न भिन्न अनुयायियों के काल्पनिक विधि-विधान, पारस्परिक ईर्षा द्वेष, भिन्न-भिन्न आचार व्यवहार एवं भ्रमात्मक विचारों के कारण दंभ, कलह, पाखंड तथा अत्याचार की सृष्टि हुआ करती है और एकता के स्थान पर पृथकत्व का भाव नित्यशः बढ़ता जाता है। कवि ने इसी कारण उस समय के प्रसिद्ध मुस्लिम, जैन, बौद्ध, शाक्त, शैव, चार्वाकादि पथों एवं हिंदूमत के अंतर्गत आने वाले अवतार-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाद, वर्णाश्रम-वाद, मूर्ति-पूजा, वादिमत, स्मार्त्तधर्मादि मतों की समीक्षा की है और संसार की अनित्यता की ओर संकेत करते हुए बतलाया है कि इस क्षणभंगुर जीवन में इन टेढ़े-मेढ़े मार्गों का अवलंबन करना कितना व्यर्थ और दुःखदायक है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि 'ग्रंथावली' की रमैनियों में यदि भक्तिमार्ग का उपदेश है तो 'बीजक' की रमैनियों में सांप्रदायिक विवाद है।

परंतु इन उपरोक्त ग्रंथों में संगृहीत रमैनियों के रचयिता पर हिंदू धर्म का प्रभाव फिर भी स्पष्ट है। सृष्टि-रचना विषयक वर्णन करते समय त्रिदेव, विधाता, चौदह भुवन, तीन लोक, 'सात दीप नवखंड', पंचतत्व, आदि के प्रसंग एक अथवा अनेक स्थलों पर भिन्न भिन्न प्रकार से आए हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवों का अधिकार-विभाग, पार्वती की तपस्या, सनकादिक चारों भाइयों की ज्ञान-प्राप्ति वर्णविभाग की उत्पत्ति और यमराज के दंड-विधान विषयक चर्चा भी की गई है। माया की मोहकता, कर्म नियमों की जटिलता, संसार की अनित्यता, जीवन की क्षणभंगुरता और काल की निष्ठुरता में कवि को पूर्ण विश्वास है और झूठे सांसारिक ऐश्वर्य पर मिथ्याभिमान करने वालों की अंतिम दुर्दशा को उदाहृत करने के लिए उस ने पुराणादि में वर्णित हिरण्याक्ष, जरासंध, शिशुपाल, सहस्रार्जुन, रावण तथा छः प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजा अर्थात् वेणु, बलि, कंस, दुर्योधन, पृथु और त्रिविक्रम की कथाओं का उल्लेख किया है। इसी प्रकार हिंदू दार्शनिक सिद्धांतों में योगशास्त्र एवं वेदांत संबंधी विषयों के प्रसंग कई बार आए हैं और उपनिषदों के संदेश का उल्लेख करते हुए जनक और याज्ञवल्क्य का संवाद, राम और वसिष्ठ के प्रश्नोत्तर तथा कृष्ण और ऊधव की बातचीत एवं दत्तात्रेय के अनुभव की ओर भी संकेत किया गया है। हिंदू मंतव्यों में अवतारवाद, मूर्तिपूजा, वर्णव्यवस्था, हठयोग, वादिमत, कर्मकांड अथवा शैवादि संप्रदायों के वाह्यविधान आदि की निंदा भी की गई है। हिंदुओं के तीर्थ व्रत, मुसलमानों के रोज़ा नमाज़ तथा जैनियों की पूजा की प्रायः एक ही प्रकार से हँसी उड़ाई गई है और हिंदुओं तथा विशेष कर मुसलमानों के हिंसापरक कृत्यों पर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घृणा प्रकट करते हुए अहिंसा के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है और गो-वध के विरुद्ध भी उपदेश है।

'बीजक' ग्रंथ की ४८ वीं रमैनी में कबीर साहब के मानिकपुर नगर में ठहरने के विषय में उल्लेख है। उस में यह भी कहा है कि "मानिक पुर में मैं ने शेख़ तक़ी की प्रशंसा सुनी और जौनपुर तथा झूँसी के भी कई पीरों के नाम मेरे सुनने में आए। झूँसी में तो इक्कीस पीरों के नाम लिखे हुए थे जहाँ पर पैग़ंबर मुहम्मद साहब का ख़ुतबा पढ़ा जाता था। वहाँ के मुसलमानों की बातें सुन कर मुझ से रहा नहीं गया क्योंकि ये लोग भ्रम के वश में पड़ कर मक़बरों की व्यर्थ प्रतिष्ठा करने में भूले हुए थे" इत्यादि। इस के अनंतर उन्हों ने, नबियों एवं हबीबों के कार्यों को तथा साधारण मुस्लिम धर्मविहित साधनों को हराम बतलाते हुए शेख़ अकर्दी तथा शेख़ सकर्दी नामक किन्हीं दो समाधि-रक्षकों को उपदेश भी दिए हैं। शेख़ तक़ी का नाम एक बार 'बीजक' की ६३वीं रमैनी में भी आया है जहाँ पर—

नाना नाच नचाय कै, नाचै नट के भेख।
घट घट अविनासी अहै, सुनहु तकी तुम सेख ॥[१]

के अभिप्राय से यह भी प्रतीत होता है कि कबीर साहब ने शेख़ तक़ी को भी उपदेश दिए थे। परंतु इन बातों की ऐतिहासिकता के विषय में अभी तक कोई निश्चय नहीं हो पाया है। रेवरेंड वेस्टकाट साहब शेख़ तक़ी नामक दो व्यक्तियों का पता देते हैं।[२] उन के अनुसार एक शेख़ तक़ी फ़तेहपुर ज़िले के कड़ा मानिकपुर नामक स्थान के रहने वाले धुनिया थे। ये सूफ़ी धर्म के अंतर्गत चिश्ती संप्रदाय के अनुयायी थे और इन की मृत्यु सन् १५४५ ई० में हुई थी। दूसरे शेख़ तक़ी सूफ़ी धर्म के ही सुहरवर्दी संप्रदाय के अनुयायी थे और उन की मृत्यु सन् १४२९ ई० में हुई। मानिकपुरी शेख़

---

[१] बीजक (बेलवीडियर प्रेस, प्रयाग) पृ० २४।

[२] डाक्टर एफ़० ई० के : कबीर ऐंड हिज़ फ़ालोवर्स (रेलिजस लाइफ़ अव् इंडिया सीरीज़) पृ० ३७।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तक़ी के वंशज, रेवरेंड साहब के अनुसार अभी तक फ़तेहपुर जिले में पाये जाते हैं और झूँसी वाले शेख़ तक़ी का मक़बरा झूँसी में अभी तक वर्तमान है जहाँ पर लोग तीर्थ करने जाया करते हैं। परन्तु केवल इतनी ही बातों के आधार पर यह बतलाना कठिन है कि कबीर साहब ने अमुक शेख़ तक़ी को ही लक्षित कर के अपने उपरोक्त उद्गार प्रकट किए हैं। संभव है कि कबीर साहब ने कड़ा मानिकपुर वाले शेख़ से बातचीत की हो और झूँसी वाले शेख़ के केवल मक़बरे पर ही गए हों। रमैनियों के अंतर्गत इसी प्रकार कुछ अन्य ऐतिहासिक व्यक्तियों के भी नाम आते हैं। 'बीजक' की ५५वीं रमैनी में राजा भोज का नाम आया है और कहा गया है कि,

गये भोज जिन साजल धारा।[1]

जिस से पता चलता है कि यह प्रसंग प्रसिद्ध परमारवंशी धारापति राजा भोज को ही उद्देश्य कर के लिखा गया है जिन का समय सन् १०१० ई० से सन् १०५५ ई० तक कहा जाता है। 'बीजक' की ५४वीं रमैनी में मुछन्दर-नाथ तथा गोरखनाथ के 'काल की फांस' में पड़ने के विषय में उल्लेख है और इन दोनों योगियों का समय राजा भोज के समय से कदाचित् कुछ ही अनंतर का समझना चाहिए। गोरखनाथ का प्रभाव भी कबीर साहब के विचारों पर कई स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है।

रमैनियों के उपरोक्त दोनों संग्रहों अर्थात् 'बीजक' तथा 'ग्रंथावली' में किस का संपादन पहले और किस का पीछे हुआ यह बतलाना कठिन है। रीवाँनरेश महाराजा विश्वनाथ सिंह ने अपने संपादित बीजक की टिप्पणी में एक स्थान पर कहा है कि "पोथी पन्द्रह से यकइस के साल की धर्मदास के हाथ की लिखी है"[2] जिस से, यदि 'पोथी' शब्द से तात्पर्य 'बीजक' ग्रंथ का समझा जाय तो उस की मूल हस्तलिखित प्रति का संपादनकाल

---

[1] बीजक (बे० प्रे० प्रयाग) पृ० २२।

[2] श्री महाराजा विश्वनाथ सिंह, 'बीजक कबीर दास सटीक' (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ) पृ० २६।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संवत् १५२१ अर्थात् सन् १४६४ ई० मानना पड़ेगा और उस में आए हुए रमैनी आदि के पद्यों को कदाचित् उस से भी पुराना बतलाने में किसी प्रकार की अड़चन न होगी। इसी कारण बहुत से लेखकों ने बीजक के प्रथम संग्रह का समय संवत् १५२१ ही माना है। परंतु उपरोक्त अवतरण के अनंतर पुस्तक "औ येही पोथी में कबीर जी राजाराम ने आगम कहि दियो है। तुम से दशौ वंश जो ह्वै हैं। सोतो शब्द हमारो गहि हैं।" इत्यादि के देखने से इस धारणा के प्रति संदेह प्रकट होता है। क्योंकि 'बीजक' ग्रंथ में कहीं इन उद्धृत पद्यों का पता नहीं है और इन पंक्तियों के कुछ ही ऊपर 'बयालिस वंश विस्तार' नामक किसी ग्रंथ का प्रसंग भी आया है। उधर रेवरेंड वेस्टकाट साहब का कहना है कि "बीजक संभवतः १५७० ई० में या सिक्खों के पाँचवे 'गुरु अर्जुन' द्वारा नानक की शिक्षा 'आदि ग्रंथ' में लिखे जाने के बीस बरस पहले, लिखा गया था" जिस से बीजक की रमैनियों का संग्रह अथवा संपादन-काल १०६ वर्ष इधर हट आता है। 'कबीर-ग्रंथावली' की मूल हस्तलिखित प्रति संवत् १५६१ अर्थात् सन् १५०४ की लिखी बतलाई जाती है जो उपरोक्त दोनों समयों के प्रायः मध्य में पड़ता है। ऐसी दशा में 'बीजक' का संग्रह काल यदि सन् १४६४ ई० मान लिया जाय तो 'ग्रंथावली' की उक्त प्रति का लेखन-काल उस के उपरांत का ठहरेगा और इस की रमैनियों के प्रकरण का बीजक की रमैनियों को देख कर निर्मित किया जाना संभव हो सकता है, परंतु यदि 'बीजक' का संग्रह-काल सन् १५७० ई० माना जाय तो उस की रमैनियाँ 'ग्रंथावली' की रमैनियों को देख कर संगृहीत की गई समझी जा सकती हैं और इन दोनों ग्रंथों की कतिपय रमैनियों के समान होने का कदाचित् यही कारण हो सकता है। इधर इन दोनों ग्रंथों की रमैनियों की भाषा का मिलान करने पर पता चलता है कि 'बीजक' में संगृहीत रमैनियों की भाषा से 'ग्रंथावली' की रमैनियों की भाषा अधिक पुरानी है और

---

१ रेवरेंड वेस्टकाट: कबीर एंड दी कबीर पंथ (चर्चमिशन प्रेस, कानपुर) पृ० ७३।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इन दोनों में आए हुए विषयों की दृष्टि से भी यही जान पड़ता है कि, अधिकतर सांप्रदायिक विवादों के लिए संगृहीत बीजक की रमैनियों की अपेक्षा केवल मुख्य मुख्य विषयों के क्रमानुसार प्रतिपादन के कारण 'ग्रंथावली' की रमैनियाँ कदाचित् कुछ अधिक प्राचीन हो सकती हैं। जो हो, वर्तमान खोजों के आधार पर कोई बात निश्चित रूप से नहीं कहीं जा सकती। 'बीजक' तथा 'ग्रंथावली' की एक से अधिक पुरानी हस्तलिखित प्रतियों का जब तक भली भाँति मिलान न हो तब तक ऊपर की सारी बातें अनुमान से अधिक प्रामाणिक नहीं हैं।

[४]

'बीजक' और 'ग्रंथावली' की रमैनियों की, साहित्यिक दृष्टि से, आपस में तुलना करने पर पता चलेगा कि 'ग्रंथावली' की रमैनियाँ 'बीजक' की रमैनियों से अधिक सुंदर हैं। उपयुक्त शब्दों का चुनाव, वर्णनात्मक शैली का व्यवहार एवं गंभीर भावों का सरल स्पष्टीकरण तो है ही, रचयिता के हृदय की निर्मलता और उस के उद्देश्य की शुद्धता के कारण इन में एक ऐसी मिठास का अनुभव होता है जो वास्तव में अपूर्व है। कबीर साहब की बातें स्वभावतः सामने आ जाती हैं और उन्हें व्यक्त करते समय कदाचित् कुछ भी प्रयास किया गया नहीं जान पड़ता। तौ भी, एक सच्चे हृदय के गंभीर अनुभवों का परिणाम होने के कारण उन के उपदेशों में इतना खरापन तथा इतनी मार्मिकता भरी रहती है कि उन की चोटों का प्रभाव कभी व्यर्थ नहीं जा पाता और उन के पद्यों के छंदोभंग आदि पिंगल विषयक दोषों द्वारा उत्पन्न अव्यवस्थिति भी कानों को मधुर लगने लगती है। 'ग्रंथावली' की रमैनियों में इन बातों के कई उदाहरण मिल सकते हैं। इस की प्रायः प्रत्येक 'रमैणी' में कोई न कोई गुण वर्तमान है और इन में भी बड़ी 'अष्टपदी रमैणी' तथा 'दुपदी रमैणी' विशेष रूप से सुंदर कही जा सकती हैं। 'ग्रंथावली' की उत्कृष्ट पंक्तियों के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं।

भ्रम एवं अज्ञान के कारण भवसागर के फेर में पड़ा हुआ तीनों तापों से संतप्त मनुष्य व्याकुल हो कर चिरव्यापिणी शांति की चाह में अधीर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है और वह किसी प्रकार किनारे लगना चाहता है। ऐसी ही स्थिति में उसे सद्गुरु का सहारा मिल जाता है। फिर तो विषैली ज्वाला दूर होने लगती है, प्रेम और आनंद का संचार आरंभ होता है और सारी परिस्थितियाँ बदल सी जाती हैं। ऋतु परिवर्तन के दृश्य दिखलाई पड़ने लगते हैं और इष्टदेव के दर्शनों की अभिलाषा पूर्ण हो जाती है। प्रियतम-संयोग के कारण हृदय में उमंग आ जाने पर सब कहीं सुख व शांति का साम्राज्य दीख पड़ता है और जीवात्मा परमात्मा का मानो विश्रब्धालाप आरंभ होता है। कबीर साहब के ही शब्दों में—

भया दयाल त्रिपहर जरि जागा।
गह गहान प्रेम बहु लागा॥
भया अनंद जीव भये उल्हासा।
मिले राम मनि पूजी आसा॥
मास असाढ़ रवि धरनि जरावै।
जरत जरत जल आइ बुझावै॥
रुति सुभाइ जिमी सब जागी।
अमृत धार होइ झर लागी॥
जिमीं माँहि उठी हरियाई।
बिरहनि पीव मिले जन जाई॥
मनिका मनिकै भये उछाहा।
कारनि कौन बिसारी नाहा॥
खेल तुम्हारा मरन भया मोरा।
चौरासी लख कीन्हा फेरा॥[1]

इसी प्रकार इस संयोग अनुभव के विपरीत वियोग की दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार नलिनी का प्राणाधार जल है और उस के अलग होते ही इसे सूर्य की किरणें शीघ्र झुलसा देती हैं उसी प्रकार

---

१ 'कबीर-ग्रंथावली' (नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी) पृ० २३३-२३४।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

राम अथवा परमात्मा के वियोग में जीवात्मा को मनरूपी सूर्य कष्ट पहुँचाता है। जीवात्मा की यह विरहावस्था इस प्रकार कष्टदायक हो जाती है कि वह अच्छी परिस्थिति में रहते हुए भी सुख का अनुभव नहीं कर पाता। माघ महीने के तुषार का समय जब बीत जाता है और बसंत ऋतु के आगमन के कारण सारे उद्यान हरे भरे हो जाते हैं और अपने अपने रंग में सभी लवलीन दिखाई पड़ते हैं अर्थात् जिस समय भ्रमर मत्त हो कर फूलों का रस लेते फिरते हैं, कोकिल की कूक सारे बन प्रदेश में गूँज उठती है और जब कि सब के मनों के ऊपर वसंत का पूर्ण प्रभाव लक्षित होता है, अपने प्रियतम के विरह में तड़पने वाली विरहिणी जीवात्मा के लिए रातें युगों के समान बिताती हैं और जब तक संयोग नहीं होता समय कल्प के समान कटता है। जैसे—

नलनी कै ज्यूँ नीर अधारा।
खिन बिछुरयां लैं रवि प्रजारा॥
रांम बिनां जीव बहुत दुख पावै।
मन पतंग जगि अधिक जरावै॥
माघ मास रुति कवलि तुसारा।
भयौ बसंत तब बाग संहारा॥
अपने रंगि सब कोइ राता।
मधुकर वास लेइ मैमंता॥
बन कोकिला नाद गहगहांनां।
रुति बसंत सबकै मति मांनां॥
विरहन्य रजनी जुग प्रति भइया।
बिन पीव मिले कलप टलिगइया॥[1]

इस के सिवाय भ्रम तथा अज्ञान के कारण कल्याण मार्ग से पथ-भ्रष्ट हुए मनुष्य की दुर्दशा वर्णन करते हुए निम्नांकित पद्य में कहते हैं कि जब झूठी

---

[1] 'कबीर-ग्रंथावली', पृष्ठ २३४।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं कपोलकल्पित बातों को सच समझता हुआ मनुष्य उन की आड़ में अनेक प्रकार के विधान रचने लगता है अर्थात् जब कि चार वेद, छः शास्त्र, अनेक विद्या में तप, तीर्थ, व्रत, पूजा, धर्म, नियम, दान, पुण्य आदि के फेर में भेष बदले घूमने लगता है, उस समय उस का वास्तविक अपनापन एक दम खो जाता है और ज्ञान-हीन हो कर भटकते फिरने के कारण उसे भय मालूम होने लगता है। अज्ञान की रात में घोर अंधकार छा जाता है माया मोह के बादल उमड़ आते हैं, व्यर्थ वाद-विवाद रूपी मेढकों के शब्द तथा सांप्रदायिक आदर्श रूपी बिजली की कड़क वायुमंडल में गूँज उठती है और निरंतर वृष्टि होती रहने के कारण रात भयावनी लगने लगती है। ऐसे अंधकार पूर्ण समय में परमात्मा का वियोग उसे अनाथ बना देता है और वह निरवलंब व निराश्रय जीवनयात्री अपना मार्ग निश्चित करने में असमर्थ रहता है। कबीर साहब के ही शब्दों में—

गहन ब्यंद कछू नहिं सूझै,
आपन गोप भयौ आगम बूझै ॥
भूलि परयौ जीव अधिक डराई,
रजनी अंध कूप ह्वै आई ॥
माया मोह उनवैं भर पूरी,
दादुर दांमिनी पवनां पूरी ॥
तरिपै बरिपै अखंड धारा,
रैंनि भांमनीं भया अँधियारा ॥
तिहि विवोग तजि भये अनाथा,
परे निकुंजन पावै पंथा ॥[१]

ये उपरोक्त तीनों अवतरण प्राकृतिक दृश्य अथवा मानव जाति के मनोविकारों के वर्णन के अच्छे उदाहरण कहे जा सकते हैं। कबीर साहब की

---

१ 'कबीर-ग्रंथावली', (का० ना० प्र० सभा), पृ० २२९ ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रमैनियों में ऐसे ऐसे उदाहरणों के सिवाय कतिपय अलंकारों के भी नमूने मिलते हैं जैसे,

जगि जीवन जैसे लहरि तरंगा,
खिन सुख कूँ भूलसि बहु संगा ॥[१]

में सांसारिक जीवन की उपमा, उस की क्षणभंगुरता, के कारण, जल की लहरों के तरंग मात्र से दी है, जो बहुत उपयुक्त जान पड़ती है। अथवा, जैसे,

नींव कीट रस नींव पियारा,
यूँ विष कूँ अंमृत करै संसारा ॥[२]

में विषरूपी विषय को अमृत समान सुखदायी समझ कर उस में लीन रहने वाले सांसारिक लोगों की उपमा नीम के कडुए रस के साथ प्रेम करने वाले नीम के कीड़ों से दी है जो, इन दोनों की प्रायः एक ही समान मानसिक प्रवृत्ति का विचार करते हुए बहुत ही ठीक जँचती है। इसी प्रकार रूपक अलंकार के उदाहरणों में से नीचे लिखे पद्य दिये जा सकते हैं। जैसे,

ते तौ आहि अनंद सरूपा,
गुन पल्लव विस्तार अनूपा ॥
साखा तन थैं कुसुम गियाना,
फल सो आछा राम का नामा ॥
सदा अचेत चेत जीव पंखी,
हरि तरिवर करि वास।
झूठे जगि जिनि भूलसि जियरे,
कहन सुनन की आस ॥[३]

में हरि अर्थात् परमात्मा को 'तरवर' अर्थात् वृहत् वृक्ष माना है और कहते हैं कि यह वृक्ष आनंद स्वरूप है, इस के गुणरूपी पल्लवों का विस्तार

---

[१] 'कबीर-ग्रंथावली', पृ० २२८।

[२] वही, पृ० २३१।

[३] वही, पृ० २२५-२२६।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुपम है, इस की तत्त्व-रूपी शाखाओं में ज्ञान-रूपी फूल तथा राम नाम रूपी सुंदर फल लगे हुए हैं और इस वृक्ष पर चेतन एवं अचेतन दोनों प्रकार के पक्षी सदा निवास किया करते हैं। इन पंक्तियों के अनंतर ही 'ग्रंथावली' में संसार को विषम माया द्वारा उत्पन्न किया हुआ नीरस वृक्ष मान कर उस के भिन्न भिन्न अंगों का वर्णन किया गया है। जैसे,

सूक विरख यहु जगत उपाया,
समझि न परै विखम तेरी माया॥
साखा तीनि पत्र जुग चारी,
फल दोइ पाप पुंनि अधिकारी॥
स्वाद अनेक कथ्या नहिं जाहीं,
किया चरित सो इन में नाहीं॥[1]

ये दोनों अवतरण सांगरूपक के अच्छे उदाहरणों में गिने जा सकते हैं। इन के सिवाय,

काल अहेडी संझ सकारा,
सावज ससा सकल संसारा॥[2]

में काल को शिकारी तथा संसार को शिकार के पशु खरगोश का रूपक दे कर काल का संसार को नष्ट करने के लिए उद्यत हो कर पीछा करते रहना दिखलाया है। तथा

जहुँवा प्रगटि बजावहु जैसा,
जस अनभै कथिया तिनि तैसा॥[3]

में मनुष्य को वाद्ययंत्र मान कर उस का बजाने वाला परमात्मा को माना है और कहा है कि जिस प्रकार वाद्ययंत्र से बजाने वाला जैसा चाहे वैसा सुर निकाल सकता है उसी प्रकार मनुष्य से भी परमात्मा जैसा चाहे वैसा

---

[1] 'कबीर-ग्रंथावली' (का० ना० प्र० सभा), पृ० २२६।

[2] वही पृ० २३१।

[3] वही, पृ० २३०।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुभव करा कर तदनुसार उस की व्यक्ति करा लेता है और ये दोनों रूपक क्रमशः संसार की क्षणभंगुरता तथा मनुष्य की विवशता को स्पष्ट करने के लिए बहुत उपयुक्त जान पड़ते हैं।

'ग्रंथावली' की रमैनियों में इसी भाँति यमक, अनुप्रास, समासोक्ति, अर्थांतरन्यास आदि के भी दो एक उदाहरण मिल सकते हैं। यहाँ पर दृष्टांत अलंकार का हम एक उदाहरण दे देते हैं जो बहुत ही अच्छा है। जैसे,

दर बो नहीं कांइ तुम नाहा,
तुम्ह बिछुरे मैं बहु दुख चाहा॥
मेघ न बरिखै जांहिं उदासा,
तऊ न सारंग सागर आसा॥
जलहर भर्यौ ताहि नहिं भावै,
कै मरि जाइ कै उहै पियावै॥[1]

अर्थात् प्रियतम के वियोग में बहुत सा दुःख अपना चुकने के अनंतर अपने अटूट नेह पर विश्वास दिलाते हुए उस से विनय करता हुआ कवि कहता है कि, "देखो, स्वाती नक्षत्र के मेघ यदि नहीं बरसते तो चातक उदास हो कर चला जाता है, किंतु तौ भी समुद्र की आशा नहीं करता और न भरा हुआ जलाशय देख कर भी उस के पास तक जाता है। मानो वह मर ही जाता है अथवा जीता है तो उसी मेघ का दिया जल पीता है। इसी प्रकार मेरी भी दशा होगी ऐसा विश्वास कर तुम मेरे ऊपर दया क्यों नहीं करते।" यहाँ पर उपमेय प्रेमी कवि की एकांत निष्ठा को, वैसे ही प्रेमी चातक के उपमान द्वारा उस के कतिपय व्यवहारों का उल्लेख करते हुए, स्पष्ट करने के कारण पद्य में दृष्टांतालंकार का समावेश बड़े अच्छे ढंग से हो जाता है।

'ग्रंथबावनी' में अलंकारों के बहुत उदाहरण नहीं मिलते और जो कुछ मिलते हैं वे शब्दालंकारों के ही अंतर्गत आ सकते हैं परंतु 'बीजक' की रमैनियों में उन से अधिक अलंकार हैं उन में से हम यहाँ पर क्रमशः रूपक

---

[1] 'कबीर-ग्रंथावली' (का० ना० प्र० स०), पृ० २३४।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और समासोक्ति अलंकारों का एक एक उदाहरण दे कर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं। जैसे—

अस जुलहा का मरम न जाना,
जिन्ह जग आनि पसारिन्हि ताना॥
महि अकास दोउ गाड़ खँदाया,
चाँद सुरज दोउ नरी बनाया॥
सहस तार ले पूरनि पूरी,
अजहूँ विनब कठिन है दूरी॥
कहहिँ कबीर करम से जोरी,
सूत कुसूत बिने भल कोरी॥[1]

में जीवात्मा को जुलाहे का रूपक दे कर उस के कल्पना प्रसूत विविध भ्रमजाल को जुलाहे के ताने बाने आदि द्वारा स्पष्ट किया है। कहते हैं कि इस संसार में आ कर विचित्र ताना फैलाने वाले इस जुलाहे का भेद जान लेना कठिन है क्योंकि पृथिवी और आकाश अर्थात् शरीर के अंतर्गत अधोभाग और ऊर्ध्व-भाग के बीच तो उस ने गढ़ा खोद रक्खा है जिस में चंद्रमा और सूर्य अर्थात् ईड़ा और पिंगला नामक नाड़ियों के दो नरे लगे हुए हैं और सहस तार अर्थात् प्रणव के सहस्र कुंभक द्वारा ताना तैयार किया जाता है। आश्चर्य तो यह है कि निरंतर लगे रहने पर भी बिनाई का पूर्ण होना कठिन है। ताना का तागा टूटते ही अभ्यास रूपी कर्मों द्वारा उसे वह फिर जोड़ लिया करता है और सूत कुसूत अर्थात् शुभाशुभ कर्मों की बिनाई का काम भली भाँति सदा चलता रहता है। इसी प्रकार नीचे लिखी रमैनी में थोड़े से ही किंतु उपयुक्त शब्दों द्वारा विकट संकट में पड़ी हुई एक निःसहाय अबला को प्रस्तुत वस्तु मान कर उस की दुर्दशा का वर्णन करते हुए अप्रस्तुत वस्तु जीवात्मा की कठिनाइयों का दिग्दर्शन कराया गया है, जिस कारण इस में समासोक्ति अलंकार का एक उत्कृष्ट उदाहरण मिल जाता है। जैसे,

---

१ बीजक (बेलवीडियर प्रेस, प्रयाग), पृ० १३-१४।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उनइ बदरिया परिगौ संझा,
अगुआ भूले बनखंड मंझा ॥
पिय अंते धनि अंते रहई,
चौपरि कामरि माथे गहई ॥
फुलवा भार न ले सकै,
कहै सखिन सों रोय ॥
जौं जौं भीजै कामरी,
तौं तौं भारी होय ॥[1]

अर्थात् अविद्या की घटा घिर आई, जीवन का संध्या-काल भी आ पहुँचा और पथप्रदर्शक स्वयं भ्रमजाल के जंगलों में भटकते फिर रहे हैं फलतः प्रेमिका और उस के प्रियतम अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा का वियोग होना अवश्यंभावी है और ये दोनों वियुक्त हो कर जहाँ के तहाँ पड़े दीख पड़ते हैं तथा प्रेमिका जीवात्मा के सिर पर चार तह किया हुआ कंबल अर्थात् कर्मों का भारी बोझ भी लदा हुआ है। इस प्रेमिका जीवात्मा की स्थिति इस समय ऐसी भयानक है कि वह फूलों के ढोने अर्थात् अपने हितैषियों द्वारा सुझाये गए हल्के हल्के सुगम नियमों तक के पालन करने में असमर्थ है। अतएव अपने साथियों से अपनी विवशता प्रकट करती हुई रो रही है और उधर अज्ञान की बूँदों के कारण कर्मों का कंबल धीरे धीरे और भी भारी होता जा रहा है।

---

[1] बीजक (बेलवीडियर प्रेस, प्रयाग) पृ० ९।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कुंडलिया छंद

[लेखक—श्रीयुत नरोत्तमदत्त स्वामी, एम्० ए०]

कुंडलिया हिंदी का एक प्रधान छंद है। गिरधर कविराय और दीनदयाल गिरि की कुंडलियाँ हिंदी में बहुत प्रसिद्ध हैं। हिंदी के छंदः शास्त्रकारों ने इस का यह लक्षण दिया है कि पहले एक दोहा और उस के पीछे एक रोला रक्खा जाय तथा दोहे के आरंभ के एक या अधिक शब्दों की आवृत्ति रोला के अंत में होनी चाहिये और साथ ही दोहे के चतुर्थ चरण की आवृत्ति रोला के आदि में होनी चाहिए। प्रथम प्रकार की आवृत्ति का ध्यान कभी-कभी नहीं भी रखा गया है पर द्वितीय प्रकार की आवृत्ति सर्वत्र पाई जाती है। यहाँ पर कुंडलिया के दो एक उदाहरण दे कर यह लक्षण स्पष्ट किया जाता है—

[१]

गुन के गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला सबद सुनै सब लोय॥
सबद सुनै सब लोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को रँग एक, काक सब भये अपावन॥
कह गिरधर कविराय, सुनो, हो ठाकुर मन के।
बिनु गुन लहै न कोय सहस नर गाहक गुन के॥

इस में पहले एक दोहा और फिर एक रोला है। दोहे के पूर्वार्ध की आवृत्ति रोला के अंतिम पद में हुई है और दोहे के चतुर्थ चरण (सबद सुनै सब लोय) की आवृत्ति रोला के प्रथम चरण के आदि में हुई है।

[२]

साईं अवसर के परे को न सहै दुख-द्वंद।
जाय बिकाने डोम घर वे राजा हरिचंद॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वे राजा हरिचंद करैं मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी भेस फिरै अरजुन बलधारी॥
कह गिरधर कविराय तपै वह भीम रसोई।
को न करै घटि काम परे अवसर के साईं॥

इस में दोहे के समग्र पूर्वार्ध की नहीं किंतु केवल प्रथम चरण की आवृत्ति रोला के अंतिम चरण के अंत में हुई है। साथ ही दोहे के चतुर्थ चरण की भी आवृत्ति रोला के प्रथम चरण के आरंभ में हुई है।

[३]

लाठी में गुण बहुत हैं सदा राखिये संग।
गहिर नदी-नारा जहाँ तहाँ बचावै अंग॥
तहाँ बचावै अंग झपटि कुत्ता को मारै।
....
....
....................हाथ महँ लीजै लाठी॥

इस में दोहे के प्रथम चरण के केवल एक शब्द (लाठी) की ही आवृत्ति रोला के अंत में हुई है।

[४]

साईं बेटा-बाप के बिगरे भयो अकाज।
हिरनाकस्यप-कंस को गयो दुहुन को राज़॥
गयो दुहुन को राज........................।
....
....
पिता-पुत्र के बैर नफा कहु कौने पाई॥

इस में दोहे के प्रथम चरण का कोई शब्द रोला के अंत में पुनरावृत्त नहीं हुआ।

हिंदी में केवल एक प्रकार का यही कुंडलिया पाया जाता है। पर राजस्थानी भाषा के साहित्य में कई प्रकार के कुंडलिया छंद मिलते हैं। राजस्थानी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

छंद शास्त्र के ग्रंथों में उन में से कुछ एक के लक्षण तथा नाम भी मिलते हैं। राजस्थानी पिंगल में कुंडलिया किसी एक छंद का नाम नहीं किंतु वह छंदों की एक जाति है जिस के कई भेद हैं। इन भेदों का वर्णन नीचे दिया जाता है—

(१) प्रथम भेद—इस का नाम शुद्ध कुंडलिया है और इस का लक्षण हिंदी के कुंडलिया छंद से मिलता-जुलता है। इस में भी हिंदीवाले कुंडलिया की भाँति आवृत्तियाँ होती हैं और दोनों प्रकार की आवृत्तियों का होना आवश्यक है।

उदाहरण

जीव उधारे जगतरा, किता सुधारे काम।
भार उतारे भूमरो, धणी पधारे धाम॥
धणी पधारे धाम, सुजस खाटे जग सारे।
राज कियो बड़ रीत, गिणे व्रस सहस इग्यारे॥
रह्या जिते रघुराव, धरम-मरजादा धारे।
आप पधारत ओक, अवधपुर जीव उधारे॥

(२) द्वितीय भेद—इस का नाम 'झड़-उलट' कहा गया है। इस में पहले एक दोहा और फिर एक अरुण[1] छंद रक्खा जाता है। दोहे के आरंभ के एक या अधिक शब्दों की आवृत्ति अरुण के अंत में होती है तथा दोहे के चतुर्थ चरण के एक या अधिक शब्दों की आवृत्ति अरुण के आरंभ में होती है। दोहे के चतुर्थ चरण के सब शब्दों की उसी क्रम से आवृत्ति अरुण के आरंभ में नहीं हो सकती जैसी कि रोला के आरंभ में हो सकती है क्योंकि अरुण के एक चरण का पूर्वार्ध केवल १० मात्राओं का होता है और उस की गठन भी दोहे के चतुर्थ चरण की गठन से भिन्न होती है।

---

[1]अरुण २० मात्राओं का छंद है जिस में ५,५ और १० पर यति होती है और अंत में SIS या IIIS होता है।

—लेखक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उदाहरण

आठैं दिस बरतै अदल, राघववालैं राज।
सीख समापै सोहड़ा, कर मन-वंछत काज॥
काज मन-वंछता, पूर सगला किया।
धवलहरि दुरग धन, देस कितरा दिया॥
कीध अरि निकंटक, जीत रावण जिसा।
जमी पग फील जिम, दबै आठैं दिसा॥

(३) तृतीय भेद—राजस्थानी में यह कुंडलिया सब से अधिक प्रयुक्त हुआ है। इसे छंदशास्त्रों में 'कुंडलियो' ही कहा गया है और इस का कोई अलग नाम नहीं दिया गया है। इस में पहले एक दोहा, फिर रोला के दो चरण और अंत में फिर एक दोहा होता है। प्रथम दोहे का पूर्वार्ध दूसरे दोहे के अंत में पुनरावृत्त होता है अर्थात् इस कुंडलिये की प्रथम एवं अंतिम पंक्तियाँ बिलकुल एक सी होती हैं। साथ ही प्रथम दोहे के चतुर्थ चरण की आवृत्ति रोला के प्रथम चरण के आदि में होती है।

उदाहरण

कह रानी पदमावती, रतनसेन राजाँन।
नारिन दीजै आपणी, तजिये पीव पिराँन॥
तजिये पीव पिराँन, औरकूँ नारि न दीजै।
काल न छूटै कोय, सीस दै जग जस लीजै॥
कलँक लगावै आपको, मो सत खोवै जाँन।
कह रानी पदमावती, रतनसेन राजाँन॥

—गोरा-बादलरी कथा (जटमल)।

(४) चतुर्थ भेद—इस का भी कोई अलग नाम नहीं मिलता। यह तृतीय भेद से मिलता-जुलता है, अंतर केवल इतना है कि इस में रोला के दो चरणों के स्थान में चार चरणों का पूरा रोला होता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उदाहरण

रूपक यह रघुनाथरो , पिंगल गीत प्रमाँण ।
कहियो मंछाराम कवि , जोधनगर जग जाँण ॥
जोधनगर जग जाँण , वास गूँदी विसतारा ।
वगसीराम सुजाँण , जात सेवग कूवारा ॥
संवत ठारह सतक , वरस तेसठो वखाणो ॥
सुकल भादवी दसम , वार ससिहर वरताणो ।
मत अनुसारे मैं कह्यो , सुध कर लियो सुजाँण ॥
रूपक यह रघुनाथरो , पिंगल गीत प्रमाँण ।

(५) पंचम भेद—इस का नाम 'राजवट' कुंडलिया है। इस में पहले एक दोहा फिर एक रोला और अंत में एक उल्लाला होता है अर्थात् यह कुंडलिया एक दोहे और एक छप्पय के मिलने से बनता है। इस में दोहे के आदि के एक या अधिक शब्दों की आवृत्ति उल्लाला के अंत में होती है और दोहे के चतुर्थ चरण की आवृत्ति रोला के आरंभ में होती है।

उदाहरण

सियवर राज समापिया , पाट अवध लव पेख ॥
कुसने समय कुसावती , बंधव-सुताँ विसेख ।
बंधव-सुताँ विसेख , दोय सुत भरत सु दत्तिय॥
तक्षकने तखसली , पुकरने पुक्कर वत्तिय ।
अंसी लिखमण उभय , अँगदनगरी अंगदने ॥
चंद्रकेत चँद्रवती , सत्रघण-सुताँ सुखदने ।
कनवज सुवाह सत्रघात पति , पति मुथरा इम थापिया ॥
इण भाँत मंछ कह आठही , सियवर राज समापिया ।

इस प्रकार कुंडलिया के ६ भेद राजस्थानी-साहित्य में पाए जाते हैं। उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है कि कई प्रकार के छंदों के मिश्रण से कुंडलिया छंद बन सकता है और नए-नए छंदों का मिश्रण कर के हम और

५१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भी कई प्रकार के नवीन कुंडलिये बना सकते हैं। कुंडलिया की मुख्य विशेषता तो शब्दों या पदों की आवृत्ति है। कुंडलिया संस्कृत के कुंडलित शब्द से बना है जिस का अर्थ है कुंडली बनाया हुआ या गोलाकार। आद्यन्त की ये आवृत्तियाँ ही मानो इस छंद की कुंडलियाँ हैं अतः इन का होना आवश्यक है। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि सब के आरंभ में एक दोहा अवश्य होता है[1]। इसलिये हम कुंडलिया छंद का लक्षण इस प्रकार बनावेंगे—

पहले एक दोहा और पीछे कोई अन्य एक या एकाधिक छंद होना चाहिए तथा दोहे के आरंभिक शब्दों की, या समग्र प्रथम चरण की, या समग्र पूर्वार्ध की, आवृत्ति अंतिम पंक्ति में होनी चाहिए और दोहे के चतुर्थ चरण की आवृत्ति आगे आनेवाले छंद के आरंभ में होनी चाहिए।

---

[1] निरंजन पंथ में महात्मा हरिपुरुष दयाल जी (या हरीदासजी) की वाणी में एक ऐसा कुंडलिया भी प्राप्त हुआ है जिस के आरंभ में दोहा नहीं है। उस में रोला के छः चरण हैं तथा प्रथम चरण की आवृत्ति छठे चरण में है और द्वितीय चरण के अंत के कुछ शब्दों की आवृत्ति तृतीय चरण के आरंभ में है।

—लेखक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वामी रामानंद और 'प्रसंग-पारिजात'

[लेखक—श्रीयुत शंकरदयालु श्रीवास्तव, एम० ए०]

परिचय

गत वर्ष मुझे अयोध्या में 'प्रसंग-पारिजात' नामक एक विशाल काव्य-ग्रंथ का पता लगा है। इस में सब मिला कर, १०८ अष्टपदियाँ अर्थात् चार-चार चरण के ८६४ पद हैं और आदि से लेकर अंत तक अदना (अदणा) छंद का प्रयोग किया गया है। 'प्रसंग-पारिजात' के प्रणेता, चेतन-दास नाम के कोई साधु-कवि हैं। उन्हों ने वि० संवत् १५१७ में इस ग्रंथ की रचना समाप्त की थी। ये श्री चेतनदास जी कौन थे, और कहाँ के रहने वाले थे यह सब मुझे ज्ञात नहीं हो सका है। इस विषय में मैं ने खोज की, 'मिश्रबंधु-विनोद', 'शिवसिंह-सरोज', 'भक्तमाल', '८४ वैष्णवों की वार्ता' तथा '२५२ वैष्णवों की वार्ता'—आदि ग्रंथों में छान-बीन की, किंतु कहीं मुझे उन की चर्चा न मिल सकी। मूल पुस्तक 'प्रसंग-पारिजात' के पढ़ने से इतना पता लगता है कि ये महाशय स्वामी रामानंदजी की वर्षी के अवसर पर उपस्थित थे। उस समय स्वामी जी की शिष्य-मंडली ने उन से यह प्रार्थना की कि हमारे गुरु की चरितावली तथा उपदेशों को—जिन का आप ने चयन किया है—ग्रंथ-रूप में लिपिबद्ध कर दीजिए। उन की इस बात को मान कर श्री चेतनदास ने 'प्रसंग-पारिजात' की रचना प्रारंभ की और वि० संवत् १५१७, माघ कृष्ण सप्तमी, भृगुवार को उसे समाप्त कर दिया। मूल पुस्तक के इस उल्लेख से यह अनुमान करने का पूर्ण अवसर मिलता है कि कविवर चेतन-दास स्वामी रामानंद जी के आश्रम पर—अथवा उस के सन्निकट ही रहते थे और समय समय पर संघटित घटनाओं एवं चरितों को लिख कर एकत्रित करते जाते थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ग्रंथ की भाषा बड़ी विचित्र है। जिस काल में इस की रचना हुई है न तो यह उस काल की बोल-चाल की भाषा थी और न तत्कालीन कवियों ने ही इस का प्रयोग किया है। फिर श्री चेतनदासजी ने ऐसी विचित्र भाषा का आश्रय क्यों लिया ? इस से उन का क्या प्रयोजन था ? इस संबंध में भी 'प्रसंग-पारिजात' की अंतिम अष्टपदी में एक उल्लेख है जिस का आशय यह है कि स्वामी रामानंद जी के शिष्यों ने ही इस बात की इच्छा प्रकट की थी कि गुरुजी के चरित्र एवं उपदेश विचित्र छंद एवं विचित्र भाषा में लिपि-बद्ध किए जायँ—जिसे बिना समझाये कोई समझ न सके और सिद्ध जानुक द्वारा वह सुरक्षित रहे। यही कारण है कि श्री चेतनदास जी ने उक्त ग्रंथ की रचना, पैशाची भाषा के शब्दों की सहायता से, देशवाड़ी प्राकृत में की है। इस स्थल पर, 'प्रसंग-पारिजात' की अंतिम अष्टपदी के उन पदों को उद्धृत करना असंगत न होगा जिन में ग्रंथ-निर्माण विषयक उपरोक्त बातों का कथन किया गया है। वे पद इस प्रकार हैं—

धिप जिम्र चुणाचू घेस घुर।
णिपहासु चेतणदास णुर॥
वित्तान्त वारिप लेस उर।
ढिग मरसिया ले पम्भद्धर॥

वसुवीर किम्मरँस भुकै।
पघिवेरु खुर भामत रुकै॥
उचहाँ चुरुण सी जाणुकै।
हिचहुर हिम्ररथाणु पुकै॥

पलु पेभिरा सपचालुली।
मछुवेहरा गिण वाकुली॥
अझणै वुअर्रा छाभुली।
मकुम्हि कुपाट्टह धामुली॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अंजाम झणवासी लुपू।
देशवाड़ि प्राकृत सुभुतुपू॥
पैशाचि छवदा चिघु छुपू।
छंदाणु अदणा लिभुणुपू॥

❦ ❦ ❦

वासपटिसिव आसिणवुगी।
दिति औरखा हिम्मिह हुगी॥
छुपसंग पारी जातुगी।
हिह्णेपु राम जु पातुगी॥

वास्तव में भाषा इतनी अपरिचित प्रतीत होती है कि उस का भावार्थ भी बोधगम्य नहीं होता। समग्र ग्रंथ 'प्रसंग-पारिजात' को सन् १८९० ई० के लगभग, गोरखपुर के एक मौनी बाबा ने, मौखिक रूप से अयोध्या के महात्मा बालकराम विनायक जी को उन के बचपन में लिखवाया था। मूल पदों के साथ ही साथ उन्हों ने उस का अर्थ भी लिखवा दिया था। मौनी बाबा के बताए हुए उसी अर्थ के आधार पर मैं ने 'प्रसंग-पारिजात' का अध्ययन किया है अन्यथा मूल भाषा को समझना मेरे लिए असंभव था, यद्यपि लगभग प्रत्येक अष्टपदी में यत्र-तत्र हिंदी तथा संस्कृत के शब्द भी पाए जाते हैं। ऊपर उद्धृत पदों का अर्थ इस प्रकार है—

"उस महती समागम में ही इस चेतनदास को आज्ञा हुई कि संघ में रह कर जो जो वृत्तांत चयन किया है उसे सुनाऊँ। यह सुन कर सब को परम आनंद मिला—यह आश्चर्य (१) तब संतों की आज्ञा हुई कि इन गुप्त प्रकट वृत्तांतों को विचित्र छंद और विचित्र भाषा में लिखा जाय जिसे बिना समझाये कोई समझ न सके—सिद्ध जानुक द्वारा रक्षित रहे (२) क्योंकि इस में कुछ वृत्तांत ऐसे हैं जो प्रकट नहीं किए जाने चाहिए कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जिन को उस समय तक गुप्त रखना है जब तक वह घटित न हो जायँ। इस का निश्चय तत्कालीन सिद्ध ही करेगा। (३) इसी विचार से यह वृत्तांतमाला देशवाड़ी प्राकृत में पिशाच भाषा के सांकेतिक शब्दों की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सहायता से अदणा छंद में संग्रथित की गई (४) ज्ञान-भूमिका चंद शिव-मुख सच्चिदानंद (अर्थात् सं० १५१७) गुरुजन्म दिन माघ कृष्ण सप्तमी भृगुवार को यह प्रसंग-पारिजात राम नाम लेकर समाप्त हुआ (५) ।"

प्राचीन भाषाविद् विद्वानों के लिये 'प्रसंग-पारिजात' की प्रथम अष्टपदी भी नीचे उद्धृत की जाती है ताकि वे निश्चयात्मक रूप से स्थिर कर सकें कि ग्रंथ की भाषा कहाँ तक प्रमाणित हो सकती है, उस में कितना तथ्य है, वह मनगढ़ंत तो नहीं है। भाषा के स्थिर हो जाने पर ही हम इस विशाल काव्य-ग्रंथ के महत्त्व को समझ सकेंगे। प्रथम अष्टपदी के आठ पद इस प्रकार हैं—

हिम हिम हमन्ता हौलड़ी ।
मद माघ मघवा मौलड़ी ॥
तल तड़ित ताड़ण तौलड़ी ।
घर घर घुरंता घौलड़ी ॥

वत्स्या करींदी सरसई ।
गंगा गलौला गड़रई ॥
तिंगंति तलछा मदमई ।
आसार सारते वैथई ॥

मवतूल संडिम वाहुणी ।
आमुल मलेच्छ मथागुणी ॥
अणुकागुणी तनु पारुणी ।
तुरकान दल दल दारुणी ॥

सारंगधर ठिप्पण ठिया ।
वाजुन्ट विभु वैगुण विया ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माधूम मतसर मौलिया ।
चिर छैभ जारण जाजिया ॥

हाहूम देसिक तिप्पिया ।
भरदार वौड़ा किप्पिया ॥
लोलिभ नवारू लिप्पिया ।
सिविका सणारा छिप्पिया ॥

ह्वपिफाम फाता फैवड़ा ।
सरसूत तोणिस तैवड़ा ॥
ध्रुण वासडीहम्र घैवड़ा ।
हिंसक अहिंसक सैवड़ा ॥

पाल्हत पैरामू जणस ।
सावूत तैरस तोहम्भस ॥
आयूष कैवम रौंद दस ।
संकर जु सोरस वरस जस ॥

आहूम तीवर चवर सा ।
... ... वरवा हिच्छरा ॥
जैभूम केसव धम्मरा ।
सासूभ सोणित वव्वहा ॥

ग्रंथ के आदि में इस अष्टपदी द्वारा कवि ने उस काल एवं उस परिस्थिति का दिग्दर्शन कराया है जिस में स्वामी रामानंद जी अवतीर्ण हुए थे ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ग्रंथ का विषय

'प्रसंग-पारिजात' को हम आधुनिक ढंग का लिखा हुआ स्वामी रामानंद जी का जीवन-चरित नहीं कह सकते। इस में उन की जीवन-संबंधी सभी ज्ञातव्य बातों का समावेश नहीं किया गया है और न जीवन-काल का क्रमिक विकास ही दिखाया गया है। जैसा कि ग्रंथ के नाम से लक्षित होता है, इस में उन से संबंध रखने वाले विविध प्रकार के प्रसंग वर्णित हैं। ग्रंथ का अधिकांश अनेक अलौकिक कथाओं से परिपूर्ण है। पुस्तक में जितनी घटनाएँ वर्णित हैं वे प्रायः सभी रहस्यात्मक प्रसंगों अथवा तत्त्वज्ञान के दुरूह विषयों से पूर्ण हैं, किंतु इस से यह न समझ लेना चाहिए कि 'प्रसंग-पारिजात' में केवल धार्मिक तत्वों का ही निरूपण किया गया है अथवा उस में साधु-सत्संग संबंधी प्रासंगिक कथाएँ ही वर्णित हैं, वरन् १५ वीं शताब्दि के सामाजिक तथा राजनीतिक वातावरण को समझने के लिए भी इस में प्रचुर सामग्री विद्यमान है।

अपनी सुविधानुसार हम ग्रंथ को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम भाग में स्वामी जी का दिव्य जन्म, बाललीला, उपनयन, विद्याध्ययन, गुरु-दीक्षा, संन्यास-ग्रहण, तपोनिष्ठा तथा कलि-संवाद प्रभृति विषयों का वर्णन है। स्वामी जी का जन्म प्रयाग में हुआ था। 'प्रसंग-पारिजात' के इस उल्लेख से इस मत का खंडन होता है कि वे दक्षिण से उत्तरी भारत में आए थे। मध्य भाग में लगभग चार दर्जन अलौकिक कथाएँ वर्णित हैं, जिन के द्वारा हमें स्वामी रामानंद जी की अध्यात्मिक प्रतिभा का परिचय मिलता है। इन कथाओं को पढ़ कर हमारी अन्तरात्मा स्वतः इस निश्चय पर पहुँचती है कि वास्तव में स्वामी जी उच्चकोटि के एक अध्यात्मिक महापुरुष थे। इन कथाओं के अंतर्गत स्वामी जी के अनेक प्रमुख शिष्यों के संबंध में भी कुछ उल्लेख हैं। इस ग्रंथ से यह भी प्रमाणित होता है कि हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध कवि भक्तराज कबीरदास जी इन्हीं के शिष्य थे। कबीरदास जी के अतिरिक्त पीपा जी, अनंतानंद जी,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योगानंद जी, सेन नाऊ, रैदास तथा नरहर्यानंद आदि के नाम भी आए हैं। तीसरे भाग में स्वामी जी के देश-पर्यटन का वर्णन दिया हुआ है। इस के द्वारा हमें यह पता लगता है कि वे गगरौनगढ़, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्, विजयनगर, काञ्ची, श्रीरङ्गम्, वृन्दाबन, चित्रकूट, प्रयाग आदि स्थानों का भ्रमण कर के काशी जी में अपने आश्रम पर लौट आए। देश-पर्यटन की समाप्ति पर साधुओं को जो भोज दिया गया और उस अवसर पर स्वामी जी ने एकत्रित साधुओं को जो उपदेश दिए वे सब बड़े चित्ताकर्षक ढंग से वर्णित हैं। अंत में आचार्य रामानंद जी को हंस एवं कबूतर के द्वारा ब्रह्मदेव धर्मराज का कुछ सांकेतिक संदेश मिलता है। उस के पश्चात् हवनकुंड की प्रतिष्ठा होती है और उन के अंतिम शब्द शांति एवं करुण रस की वर्षा करते हैं। तदनंतर स्वामी जी का अंतर्ध्यान होता है और इस प्रकार उन की मानवी लीला का पटाक्षेप होता है।

ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्त्व

'प्रसंग-पारिजात' में दो-तीन स्थलों पर संवतों का उल्लेख है और कतिपय ऐसी घटनाओं का भी समावेश है जो कि ऐतिहासिक दृष्टि-कोण से बड़े महत्त्व की हैं। कबीरदास जी का जन्म-संवत् १४५५ तथा स्वामी रामानंद का अवसान-संवत् १५०५ दिया हुआ है। इन संवतों के उल्लेख से तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं घटनाओं के द्वारा—जिन का वर्णन 'प्रसंग-पारिजात' में है—स्वामी रामानंद जी का समय स्थिर करने में बड़ी सहायता मिलती है। यहाँ पर पहिले हम ग्रंथ में आए हुए ऐतिहासिक व्यक्तियों का उल्लेख एवं घटनाओं का उल्लेख करेंगे और फिर उन के आधार पर इस निश्चय पर पहुँचने की चेष्टा करेंगे कि स्वामी जी का जीवन-काल कब से कब तक रहा।

गजसिंह नामक एक सूर्यवंशी राजकुमार एक बार काशी जी में आया। वह म्लेच्छ-स्पर्श से धर्म-भ्रष्ट हो गया था। ग्लानि से ग्रस्त एवं प्रायश्चित्त के लिए विकल हो कर वह पंडितों की सेवा में उपस्थित हुआ और अपनी भ्रष्टता दूर करने के लिये उन से उस ने बहुत अनुनय-विनय किया किंतु अधिक काल

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्यतीत हो जाने के कारण किसी ने उस की प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। अंत में निराश होकर वह स्वामी रामानंद जी के आश्रम पर आया और दीनता-पूर्ण शब्दों में उस ने अपनी अभिलाषा प्रगट की। स्वामी जी ने करुणार्द्र चित्त से उस का करुण-क्रंदन सुना तथा समुचित सांत्वना प्रदान की।

राजकुमार ने अपना परिचय देते हुए कहा कि मैं अयोध्या के राजा हरिसिंह देव का भतीजा हूँ। हरिसिंह वैशाख सुदी दशमी दिन सोमवार संवत् १३८१ को जूना खां तुग़लक के भय से भगवद्भजन के लिए तराई की ओर भाग गए। तब से अयोध्या राज्य-सिंहासन पर कोई नहीं बैठा। उस के एक ही वर्ष बाद, छल-पूर्वक खड़े किए हुए शिविर में अपने पिता से मिलते समय तंबू गिरा कर उन की हत्या करने वाले ने बीसों हज़ार प्राणियों को बड़ी क्रूरता के साथ धर्म-भ्रष्ट किया। तब से अब तक पचास वर्ष के भीतर धर्म भ्रष्टों की निरंतर वृद्धि होती गई। ऐसा कोई रोग नहीं जिस की दवा न हो और ऐसा कोई पाप नहीं जिस का प्रायश्चित्त न हो। परंतु ऊँची पगड़ी बाँधने वाले हमारे धर्म-भीरु पंडित अधिक समय के व्यतीत हो जाने का बहाना कर के हम धर्म-भ्रष्टों की भ्रष्टता दूर करने और हमें वैदिक अधिकारी बनाने से अस्वीकार करते हैं।

स्वामी जी ने गजसिंह को समझा बुझा कर कहा कि 'वत्स! तुम घर जाओ और मेरी ओर से सब धर्मच्युत लोगों को सांत्वना दो। आज के तीसवें दिन प्रातःकाल के समय सरयू-तट पर आऊँगा और सब का उद्धार एक साथ ही करूँगा।' गजसिंह अयोध्या वापिस गया और सब को यह हर्ष-संवाद सुनाया। निश्चित दिवस पर सब धर्म-भ्रष्ट लोग सरयू-तट पर एकत्रित हुए। स्वामी जी भी ठीक समय पर पहुँचे और जयराम मंत्र से फूँक कर अपना शंख बजाया। तदनंतर सरयू जी में स्नान करते ही सब दिव्य संस्कार से भूषित हो कर वाह्याभ्यंतर शुद्ध हो गए।

एक बार काशी में किसी पुण्य-पर्व के अवसर पर बड़ा समारोह हुआ। सुदूर स्थानों से लोग एकत्रित हुए। बहुत से लोग स्वामी जी के आश्रम पर पहुँचे। भिन्न-भिन्न प्रांत के लोगों ने अपने अपने प्रांतों की दुर्दशा का वर्णन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किया और कहा कि मुसलमान अधिकारियों द्वारा हम पर विविधि प्रकार के अत्याचार किए जाते हैं। दिल्ली में तीमूर (तैमूर लंग) द्वारा किए गए नर-हत्याकांड तथा लखनौती का उपद्रव एवं अत्याचार सब धर्म के नाम पर होते हैं क्या इन अत्याचारियों को दंड-रूप उचित शिक्षा नहीं देनी चाहिए। हे दीनबंधु ! हम आप की शरण में आए हैं। आप हम पर दया कीजिए और मुसलमानों के अत्याचार से बचाइए। स्वामी जी ने परदे के भीतर अपने आसन पर से ही कहा—धैर्य्य धारण करने से ही विपत्ति के बादल फटते हैं। तुम लोग अपने-अपने घर जाओ और धैर्य्य के साथ कष्टों का सामना करो। उचित दंड की व्यवस्था कर दी गई है।

ग्रंथ के अंतर्गत एक स्थल पर विजयनगर के बुक्काराय का नामोल्लेख है और इसी प्रकार किसी दूसरे स्थल पर दक्षिण के एक गंगू ब्राह्मण की भी चर्चा है। इन के संबंध में भी कुछ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है।

आचार्य रामानंद जी जब अपने शिष्य-सेवकों सहित देश-पर्यटन करते हुए विजयनगर पहुँचे तो वहाँ के राजा बुक्काराय ने नंगे पाँव ही नगर के बाहर जा कर उन का स्वागत किया। स्वागत-दल के प्रधान विद्यारण्य स्वामी जी बनाये गए थे। स्वागत के पश्चात् जब स्वामी रामानंद जी का पीनस नगर की ओर चला तब बुक्काराय ने बड़े आग्रह एवं अनुरोध के साथ उस में अपना भी कंधा लगा दिया। नगर में धूम-धाम के साथ एक भंडारा हुआ और बुक्काराय का हृदय-रोग पायस-प्रसाद पाते ही छूट गया। रामानंद जी ने राजा को उपदेश किया कि राजयोग में भोग बहुत हानिकारक है, यदि राजा भोग-विलास में लिप्त हुआ तो वह राजकीय वंश समेत चौपट हो जाता है। अतः प्रजारञ्जन-रूपी प्राणायाम यम-नियम-पूर्वक साध कर संयम के साथ रहना चाहिए। इस उपदेश को भोज पत्र पर लिखा कर बुक्काराय ने उसे स्वर्ण-पत्र पर मढ़ा लिया और अंगूठी रूप से उसे धारण किया।

जिस प्रसंग में गंगू ब्राह्मण का नामोल्लेख है, उस में ऐतिहासिक दृष्टि-कोण से अधिक महत्त्व की बात नहीं है। हाँ, इतना अवश्य लिखा है कि वे दक्षिण के ब्राह्मण थे और उन के साथ जफ़र नामक एक सेवक भी था। गंगू अपने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सेवक के साथ अपने किसी संबंधी का फूल बहाने काशी जी आया था। फूल बहाते समय स्वयं प्रवाह में पड़ कर अथाह धारा के साथ प्रवाहित होने लगा। गंगा के किनारे खड़ा हुआ सेवक जफ़र स्वामिभक्ति के भाव से उत्तेजित हो गंगू की प्राण-रक्षा निमित्त नदी में कूद पड़ा किन्तु संयोग-वश मालिक को पकड़ कर लाते हुये स्वयं स्वामी के साथ एक भँवर में पड़ गया और दोनों चक्कर खाने लगे। तदनन्तर स्वामी रामानन्द की दिव्य शक्ति की सहायता से भँवर शान्त हो गया और गंगा माता ने थाह हो कर उन्हें निकलने का मार्ग दिया। इस दिव्य लीला की छान-बीन करते जब वे दोनों स्वामि-सेवक रामानन्द जी के आश्रम पर आए तो दर्शन पाकर संतुष्ट हुए। स्वामी जी ने गंगू को सम्बोधित कर के कहा :—"गंगू! तुम इसको (जफ़र को) गुलाम मत समझना। इस के साथ सहृदयता का व्यवहार करना यह बड़ा भाग्यशाली है और निस्सन्देह यह एक दिन बादशाह होगा।"

'प्रसंग-परिजात' में यत्र-तत्र और भी कतिपय ऐसे व्यक्तियों के नाम आए हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय हैं किन्तु ग्रन्थ के केवल ऐतिहासिक अंग पर सविस्तर दृष्टिपात करना यहाँ अभीष्ट नहीं है। विद्वान पाठकों की जानकारी के लिये इतना लिखना उचित होगा कि एक स्थल पर राणा हम्मीर के एक विश्वासपात्र सभासद की चर्चा है। उस का नाम था पुहकरसी और सिसौदिया वंशोत्पन्ना राजकुमारी शर्मी के साथ उस का कुछ प्रेम-सम्बन्ध भी था। एक कथा में यह लिखा है कि ख्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया ने खुसरो के हाथ स्वामी जी के पास एक बेल-बूटों से अलंकृत पत्र भेजा। पता नहीं कि ये ख़ुसरो कौन थे किन्तु इतना स्पष्ट है कि ये फ़ारसी के एक कवि भी थे। ख़ुसरो का सम्मान हुआ और आचार्य रामानन्द ने बड़े आदर व प्रसन्नता के साथ उस का समुचित उत्तर भी दिया और ख़ुसरो के साथ पीपा जी को भी भेजा। एक दूसरी कथा में मीमांसक चिपलूणकर का नाम भी आया है।

उपरोक्त अनेक उल्लेखों से स्वामी रामानन्द जी के जीवन-काल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। 'प्रसंग-पारिजात' के आधार पर यह सप्रमाण सिद्ध किया जा सकता है कि डाक्टर फ़ार्कुहर का यह मत कि श्री रामानन्द जी का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवन-काल १४३० से १४७० ई० तक रहा—जिसे उन्हों ने १९२० ई० में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में प्रतिपादित किया था—बिलकुल ग़लत है। उस लेख में उक्त डाक्टर साहब ने श्री रामानन्द जी का समय स्थिर करने में जिस तर्क-सिद्धान्त का अवलम्बन किया है वह वास्तव में दोषपूर्ण है। उन्हों ने केवल अनुमान से ही काम लिया है और फलतः काल-निर्णय में बड़ी अन्धा-धुन्धी हो गई है। सर्व-प्रथम तो सिक्खों के आदि ग्रन्थ के आधार पर उन्हों ने यह बतलाया है कि नामदेव रामानन्द जी के कुछ पूर्ववर्ती थे। फिर नामदेव का समय स्थिर करने में—केवल दो ग्रन्थों की भाषा-विभिन्नता के आधार पर—सौ सौ वर्षों की भिन्नता स्थापित की है। इस दोष-पूर्ण-रीति का अवलम्बन कर के निश्चित किया हुआ काल भला कैसे ठीक उतर सकता था ?

जैसा पाठकों ने ऊपर देखा होगा 'प्रसंग-पारिजात' के द्वारा यह मालूम होता है कि स्वामी रामानन्द १४ वीं शताब्दि के अधिकांश वर्षों में थे और १५ वीं शताब्दि में भी ४८ वर्ष तक जीवत रहे। उन का अवसान-सम्वत् १५०५ (सन् १४४८) दिया हुआ है किन्तु आविर्भाव-सम्वत् का उल्लेख नहीं है। ऊपर लिखे जिस कथा में अयोध्या के गजसिंह और जूना खां का उल्लेख है उस के अनुसार यह पता चलता है कि स्वामी रामानन्द सन् १३७४ ई० में विद्यमान थे।[१] विजयनगर के राजा बुक्काराय के नामोल्लेख से भी यह विदित होता है कि स्वामी जी १४ वीं शताब्दि के तृतीय चरण में भी थे। अब यदि गंगू ब्राह्मण बहमनी वंश के संस्थापक हसन गंगू ही हैं तो हमें मानना पड़ेगा कि श्री रामानन्द जी महाराज सन् १३५० ई० के पूर्व ही पर्याप्त रूप से विख्यात हो चुके थे।

इस प्रकार यदि 'प्रसंग-पारिजात' में उल्लिखित सब बातें ठीक मानी जायँ तो श्री रामानन्द जी का आयुष्काल १२० वर्ष से कम नहीं माना जा

---

[१] १३८१ सम्वत् में हरिसिंह देव तराई की ओर भागे थे और उस के ५० वर्ष पश्चात् गजसिंह स्वामी जी के पास अपनी करुण-कथा सुनाने गए थे अतः १३८१+५०=सं० १४३१=१३७४ ई०।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सकता। किन्तु आज-कल के इतिहास-मर्मज्ञ विद्वान कदाचित् इतना दीर्घ आयुष्य मानने को तैयार न होंगे। जहाँ तक मैं व्यक्तिगत रूप से सोचता विचारता हूँ, मेरे निकट स्वामी रामानन्द जी जैसे बाल-ब्रह्मचारी, योगी व्रती, संयमी संन्यासी आध्यात्मिक महापुरुष के लिये १२० वर्ष का जीवन-काल असम्भव नहीं है। यदि अगस्त्य-संहिता-उल्लिखित श्री रामानन्द जी का आविर्भाव-सम्वत् १३५६ (सन् १२९९) ठीक माना जाय और साथ ही साथ 'प्रसंग-पारिजात' के अनुसार उन का अवसान सम्वत् १५०५ समीचीन समझा जाय तो आयुष्काल १४९ वर्ष का हो जाता है। इस सम्बन्ध में इतना स्मरण रखना चाहिये कि डाक्टर ग्रियर्सन[1] तथा गोलोकवासी डा० भंडारकर[2] ने अगस्त्य-संहिता के मत को स्वीकार किया है और साम्प्रदायिक मत भी उसी सम्वत् का अनुमोदन करता है। यद्यपि किसी पुरुष का इतना दीर्घ आयुष्काल मानना इतिहास-वेत्ताओं के सामने एक दम उपहासास्पद बात होगी तथापि निश्चयात्मक रूप से इतना तो स्वीकार ही करना होगा कि स्वामी जी का जीवन-काल अधिक लम्बा था। नाभादास जी ने अपने 'भक्तमाल' में स्वामी रामानन्द जी के विषय में वर्णन करते हुये यद्यपि उन का जन्म-मरण-सम्वत् नहीं लिखा है तो भी निम्न-लिखित चरणों में उन के दीर्घ-जीवी होने का निर्देश किया है:—

बहुत काल वपुधारि कै
प्रनत जनन कों पार दियो।
श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों
दुतिय सेतु जतगरन कियो॥

नाभादास जी के इस उल्लेख से स्पष्टतया यह ध्वनित होता है कि श्री रामानन्द जी वास्तव में दीर्घ-जीवी हुए हैं। अब चाहे उन का आयुष्काल १११ वर्ष का माना जाय चाहे १२० अथवा १४९ वर्ष का। 'प्रसंग-

[1] 'इन्साइक्लोपीडिया अव् रिलीजन' भाग ११।

[2] 'वैष्णविज़्म शैविज़्म एन्ड अदर माइनर रिलीजस सिस्टम्स', पृष्ठ ६६।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पारिजात' हमें इस बात के लिये बाध्य नहीं करता कि हम स्वामी जी के जीवन-काल को १४९ वर्ष का मानें किन्तु इतना अवश्य है कि उस ग्रन्थ के समस्त तिथि-उल्लेखों तथा ऐतिहासिक महत्त्व-पूर्ण कथाओं एवं घटनाओं का सामंजस्य करने के लिए हमें कम से कम उन का आयुष्काल १२० वर्ष का मानना पड़ेगा। इस स्थल पर श्री रामानन्द जी के समय के सम्बन्ध में सविस्तर वाद-विवाद छेड़ना अभीष्ट नहीं है, ऐसा करना प्रस्तुत लेख की मर्यादा का उल्लंघन करना होगा। इस स्थान पर तो हमें केवल यह दिखा कर कि श्री रामानन्द जी १४ वीं शताब्दि के पूर्वार्ध में आविर्भूत हुये थे और १५ वीं शताब्दि में भी बहुत वर्षों तक जीवित थे डा० फ़ार्कुहर के स्थिर किए हुए काल को निराधार सिद्ध करना ही था। श्री एच० एच० विल्सन महोदय का मत भी ग्राह्य नहीं है उन के अनुसार स्वामी जी १४ वीं शताब्दि के अन्त में आविर्भूत हुए थे।[1]

यहाँ पर इतना और कह देना असंगत न होगा कि मान्यवर डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी जी ने प्रस्तुत पत्रिका के गताङ्क में 'कबीर जी का समय' शीर्षक अपने गवेषणा-पूर्ण लेख में जो परिणाम निकाला है उस का 'प्रसंग-पारिजात' के साथ पूर्ण सामञ्जस्य नहीं है। 'प्रसंग-पारिजात' में जैसा कि ऊपर एक स्थान पर निर्देश किया गया है कबीर जी का जन्म-समय लगभग सन् १३९८ ई० दिया हुआ है। फलतः कबीर जी का समय १५ वीं शताब्दि ही मानना पड़ेगा १४ वीं शताब्दि के उत्तरार्ध में वे अधिक वर्ष तक नहीं रहे जैसा त्रिपाठी जी ने लिखा है। जनरल कनिंगहम द्वारा निर्धारित पीपा जी का समय (१३६०—१३८५) भी 'प्रसंग-पारिजात' से सामञ्जस्य नहीं खाता, कारण कि उस में एक स्थल पर यह इंगित किया हुआ है कि पीपा जी एवं कबीर जी दोनों समकालीन थे।

---

[1] 'ए स्केच अव् दि रेलीजस सेक्ट्स अव् दि हिन्दूज़', पृ० ३१।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धार्मिक उदारता

'प्रसंग-पारिजात' का सम्यक् अध्ययन करने से यह परिणाम निर्धारित होता है कि श्री रामानन्द जी महाराज एक समदर्शी पुरुष थे, सब पर उन की करुणा की धारा समान रूप से प्रवाहित थी। उन्हों ने सब पर दया की, सब को अपनाया और सब के कल्याण का पथ प्रशस्त किया, भगवद्भक्ति की मधु-मन्दाकिनी में सब को निमज्जित किया। अपने दिव्य ज्ञान के चिन्मय प्रकाश की किरणमाला से ऊँच-नीच सब के अन्तःकरणों के मोहान्धकार को दूर किया। ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक भगवद्भक्ति का द्वार सब के लिये समान रूप से खोल दिया। महात्मा कबीरदास, रैदास, सेन तथा धना जो कि क्रम से जोलाहे, चमार, नाऊ एवं जाट के कुल में उत्पन्न हुए थे स्वामी के द्वादश प्रधान शिष्यों में थे।

आचार्य रामानन्द वास्तव में भागवत धर्म के ही आचार्य थे। उन्हों ने उसी का विशेष रूप से प्रचार किया। भगवद्भजन में अखण्ड रूप से निरत रहना और उस में मनुष्यों को प्रवृत्त करना यही उन के सुदीर्घ जीवन-काल का व्यवसाय था। सभी जीव भगवान के ही हैं और उन की भक्ति का सभी योनि एवं जाति के प्राणियों को समान रूप से अधिकार है यही उन का विश्वास था। किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदाय से चाहे वह हिन्दू हो वा अहिन्दू वैदिक हो अथवा अवैदिक (जैन आदि) उन का किञ्चित विरोध नहीं था। इसी धार्मिक सहिष्णुता का फल है कि सभी मत और सम्प्रदाय के अनुयायी उन के आश्रम पर आते तथा उन के पूज्य चरणों में अपनी श्रद्धा प्रगट कर परमार्थ की भिक्षा प्राप्त करते और कृतार्थ होते थे। ऐसे उदात्त, उदारशील आचार्य संसार में शायद बिरले ही हुए होंगे। उन के सरल, निश्छल, निर्वैर और प्रशान्त जीवन का मनन करने से यह अवगत होता है कि पवित्र सन्त पद के महत्त्व को बढ़ाने वाले वे सन्तों में सम्राट् थे।

श्री रामानन्द जी द्वारा हीन वर्ण के लोगों में भी योग, ज्ञान, भक्ति-वैराग्य तथा सदाचार का—जो भागवत धर्म के मुख्य अङ्ग हैं—अच्छा प्रचार

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हुआ । स्वामी शंकराचार्य तथा आचार्य रामानुज ने संस्कृत भाषा का अवलम्बन कर केवल उच्चवर्ण के लोगों को ही अपना धार्मिक संदेश सुनाया परन्तु इन महानुभाव ने अपने उपदेश सर्व-साधारण लोगों तक—पंडित, शूद्र सब तक—पहुँचाने के लिए बोलचाल की भाषा का अवलंबन किया और उन्हीं का प्रभाव है कि कबीरदास तथा रैदास आदि उन के शिष्यों ने भी प्रचलित बोलचाल की भाषा में ही अपनी सन्त-वाणियाँ कहीं और लिखीं। स्वामी रामानंद जी साम्प्रदायिक झगड़े अथवा धार्मिक खंडन-मंडन में नहीं पड़े। उन के लिए भगवान् ही प्रधान ध्येय है और सब धर्म गौण हैं। वे सदैव निर्लिप्त मन से अपने इष्ट की ध्यान-धारणा, पूजा-अर्चा में संलग्न रहते थे और आश्रम पर जो साधु-संत वा गृहस्थ परमार्थ भिक्षा के लिए आते थे उन को संतुष्ट करते थे।

उन को सारा संसार राममय दीख पड़ता था। उन्हों ने अपने समय में सनातनधर्म के शैव वैष्णव आदि सभी संप्रदायों में परस्पर मेल करा दिया था। संपूर्ण साधुवेष को उन्हों ने एकता के सूत्र में ग्रथित कर दिया था, श्रुति को आश्रम, भक्ति को जीवन और विरक्ति को उन से बल मिला।

हीन वर्ण वालों के प्रति स्वामी जी ने जिस उदारता का प्रदर्शन किया और जिस सहृदयता का परिचय दिया उस के अनेक उदाहरण, प्रसंग-पारिजात' में लिखित कथाओं में स्थल स्थल पर उपलब्ध होते हैं। एक दिन जब काशी के कतिपय विद्वानों ने स्वामी जी के आश्रम पर आकर यह निवेदन किया कि "कबीर जुलाहे ने कंठी-माला, तिलक-छाप सब कुछ धारण कर लिया है और अपने को आप का शिष्य बतलाता है। क्या यह बात सत्य है ?" तब इस के उत्तर में श्री रामानंद जी ने कहा कि "हाँ यह बात बिल्कुल सत्य है और वह मेरा शिष्य है। भगवान् सब के हैं और भगवत्-शरणागति का अधिकार सदा से सब को है। भगवान् अपनी कृपा से किसी को भी वंचित नहीं करते। ईश्वर-संबंधी वस्तुओं पर सब का समान अधिकार है।"

एक दूसरे प्रसंग के अंतर्गत यह लिखा है कि एक दिन स्वामी जी ने रैदास तथा कबीरदास को संबोधित कर के यह बतलाया कि इस युग में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हीन वर्ण वाले ही वास्तव में उपदेश के अधिकारी हैं। संतों ने भी इस कर्म-भूमि में, शांति-पूर्वक भजन करने के लिए हीन वर्ण वाले कुलों में जन्म लेना उचित समझा है। हम देखते हैं कि निम्न-कोटि की प्रजा में भी सामान्य वृत्ति से स्थित संत हैं। उन्हें गुरुमुख की अत्यंत आवश्यकता है। कुलीनों के गुरु उन्हें उपदेश देते नहीं। उन की आध्यात्मिक पिपासा के शांत करने का कोई साधन न होने पर 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' की वृत्ति उन में कैसे और कब तक टिकी रह सकती है। अस्तु हे हमारे प्यारे शिष्यो! इस लोक-संग्रह कार्य में प्रवृत्त हो जाओ। इस शिक्षा को दोनों शिष्यों ने शिरोधार्य किया और वे उस पंथ में प्रवृत्त हुए और इस प्रकार त्रयीधर्म से तिरस्कृत, सब प्रकार से हीनदीन प्राणियों को अविकल आधार मिल गया।

अपनी दिव्य मानवी लीला के अंतिम समय में श्री रामानंद जी ने अपने शिष्यों, तथा एकत्रित संतों को संबोधित कर के जो उपदेश दिया वह उन की उदारता एवं सहृदयता का पूर्ण परिचायक है। स्वामी जी ने उन लोगों से कहा, "देखो सब शास्त्रों का सार भगवत्स्मरण है जो सच्चे संतों का जीवनाधार है। शिखा-सूत्र के अधिकारी पादज और अंत्यज हैं। भाई! पैरों को काटकर समाज को पंगु मत बनाना।"

उपरोक्त कतिपय उदाहरणों में मैं ने केवल यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि स्वामी जी हीन वर्ण वाले लोगों के साथ भी कितनी अधिक सहानुभूति रखते थे। इन के अतिरिक्त मूल ग्रंथ में अन्य अनेक कथाएँ मिलती हैं जिन में उन की धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता का पूरा आभास मिलता है। उन सब कथाओं का इस स्थल पर वर्णन करना असंगत तथा अनुपयुक्त होगा।

देश-भ्रमण

'प्रसंग-पारिजात' के पढ़ने से ज्ञात होता है कि श्री रामानंद जी ने देश-पर्यटन अपनी वृद्धावस्था में किया था। उन के साथ साधुओं की पूरी जमात थी। कबीर, योगानंद, नरहर्यानंद तथा अनंतानंद आदि शिष्य भी साथ ही

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साथ भ्रमण के लिए गए थे। सर्व-प्रथम वे गागरौन गढ़ गए, जहाँ उन के शिष्य भक्तराज पीपा जी की राजधानी थी। वहाँ चार मास तक रह कर जगन्नाथ पुरी पहुँचे। वहाँ से चल कर दक्षिणधाम रामेश्वरम् पहुँचे। वहाँ वैष्णव-शैव-द्रोह को शांत करने के लिए श्री योगानंद जी को छोड़ दिया और समाज सहित विजयनगर की ओर प्रस्थान किया। वहाँ के राजा बुक्काराय ने खूब आदर सत्कार पूर्वक आप का स्वागत किया। विजयनगर से स्वामी जी की जमात कांची नगर को गई। यहाँ के लोग वर्ण-विचार-जनित भेद-बुद्धि के कारण उन के बड़े विरोधी थे। फलतः उन लोगों ने सेवा-सत्कार के बदले दुर्वचनों से ही साधु-मंडली का स्वागत किया।

कांचीपुरी से स्वामी जी को जमात श्रीरंगम गई। वहाँ से सब लोग पद्मनाभ, जनार्दन और वेङ्कटेश जी की यात्रा करते हुए द्वारिका पहुँचे फिर वहाँ से मथुरा, वृन्दाबन होते हुए स्वामी जी मायापुरी गए। तत्पश्चात् चित्रकूट में चतुर्मास व्यतीत कर के तीर्थराज प्रयाग पहुँचे और फिर अंत में अपने स्थान काशी को लौट गए। आश्रम पर पूर्ववत् फिर प्रसंग और साधु-सत्संग होना प्रारंभ हुआ। इस प्रकार से स्वामी जी का भ्रमण समाप्त हुआ। मार्ग में अनेक अलौकिक घटनाएँ घटीं।

उपसंहार

यद्यपि 'प्रसंग-पारिजात' में अनेक बातें और कथाएँ अतिरंजित तथा अस्वाभाविक सी प्रतीत होती हैं—जैसे स्वामी जी का अवतार लेना, अन्तर्ध्यान होना, शव को जीवित करना, शंखध्वनि से अद्भुत चमत्कार उत्पादन करना, इत्यादि इत्यादि—तथापि इस से समग्र ग्रंथ का महत्त्व नष्ट नहीं होता। कवि की लेखनी में कुछ न कुछ अत्युक्ति रहती ही है। इस के अतिरिक्त अध्यात्मवाद स्थूल जगत के परे अपनी सत्ता रखता है अतः उस में अलौकिकता का होना स्वाभाविक ही है। आध्यात्मिक जीवन वाले संतों के चरित्रों में कुछ न कुछ लोकोत्तरता होती ही है। वास्तव में ग्रंथ की उपादेयता तभी सिद्ध होगी जब कि भाषा-तत्ववेत्ता भाषा की परीक्षा कर उसे प्रमाणित ठहरा दें।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऊपर हम बता चुके हैं कि धार्मिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि-कोण से परीक्षा करने पर 'प्रसंग-पारिजात' एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक जान पड़ती है। यहाँ पर यह बतला देना चाहिए कि साहित्यिक दृष्टि-विंदु से भी यह एक अनूठा काव्य-ग्रंथ है। इस के कर्त्ता चेतनदास एक अनुभवी और सिद्धहस्त कवि मालूम होते हैं। नीरस धार्मिक तत्वों को साहित्यिक रूप से निरूपण कर उन में कवि ने सरसता उत्पन्न कर दी है।

मान्यवर प्रोफ़ेसर रामप्रसाद त्रिपाठी जी की यह इच्छा है कि मैं प्रस्तुत लेख में, 'प्रसंग-पारिजात' में आए हुए व्यक्तियों के नाम की एक तालिका भी जोड़ दूँ। बहुत से व्यक्तियों के नाम तो ऊपर लेख में आ ही गए हैं, शेष नाम नीचे दिए जाते हैं किंतु पाठकों को इतना स्मरण रखना चाहिए कि ग्रंथ में आए हुए सब के सब व्यक्ति आवश्यक रूप से स्वामी रामानंद जी के समकालीन नहीं थे। इस बात पर ध्यान न देने से भ्रम होने की संभावना है।

राघवानंद—मुनिपुंगव पाचर जी—योगी कृपाशंकर—विश्वनाथ जी—भीटा पंडित—काशी के त्र्यंबक शास्त्री तथा उन की पुत्री जांबवती—फ़ातिमा—साधु अन्तोलियो—पितर व्यवपारी—लिउटा वैश्य—लुंबवाहन—चंद्रप्रभ—यज्ञेशदत्त—योगी गोहिणनाथ—विप्रकन्या बीनी—मीमांसक चिपलूणकर—दूधनाथ ब्राह्मण—भाऊजी शास्त्री—विट्ठल ब्राह्मण—मासको पंडित—विनयी मुनि—पाद्मतेश्वर—क्षीरेश्वर भट्ट—ओंकारेश्वर त्रिवेदी (स्वामी जी के मामा लगते थे)—कुमारिल भट्ट—ताँतिया शास्त्री—कम्भेठ—शृङ्गेरीमठ के श्री शंकराचार्य तथा उन के अनुज माधवाचार्य—नीरु—नीमा—पश्चिमी आर्यों (मगी जाति) के गुरु करोबिया जी—इब्न नूर—तक़ी तथा ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया इन के नाम पुस्तक में आते हैं।

———

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राचीन भारत में तोल

[लेखक—डाक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार, पी-एच्० डी० (वियना), डी० एस्-सी० (लंदन)]

किसी देश के आर्थिक संगठन में प्रचलित तोल-माप का बड़ा भारी भाग होता है। यहाँ तक कि विद्वानों का मत है कि इन चीज़ों की स्थिति सभ्यता की ऊँचाई को मापने के काम में लाई जा सकती है।

प्राचीन काल के तोल माप के संबंध में, संस्कृत के भिन्न भिन्न ग्रंथों में प्राप्त सामग्री अधिक है। इस संबंध में प्राप्त शिलालेख भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यदि हम प्राचीन भारत-संबंधी क़ीमतों तथा अन्य विषयों पर अन्वेषण करना चाहें तो इस सब सामग्री का एकत्रित करना तथा उस को क्रम-रूप से तालिकाओं में अंकित करना बहुत ही आवश्यक है।

इस लेख में मैं तोल के संबंध में कुछ विचार प्रकट करूँगा।

तोल के बट्टों तथा उन के छोटे बड़े भेदों के संबंध में पहिला प्रश्न यह उठता है कि, इन का आधार क्या है? इन का प्रारंभ कैसे हुआ? सब के सब बट्टे क्या भारत ने ही निकाले या इन में कुछ बाहर के भी हैं? हमारे पास इतनी सामग्री नहीं है कि वैज्ञानिक दृष्टि से हम बट्टों के प्रारंभ के प्रश्न को उठा सकें। जो कुछ किया जा सकता है वह यही है कि हम विश्लेषण कर देखें तथा उसी से किसी एक परिणाम पर पहुँचें। निम्न-लिखित तालिका का यदि सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण किया जाय तो स्पष्ट हो सकता है कि क्या अपना है और क्या दूसरों का है :—

तालिका—(१)

[क]

प्राचीन काल के आधारभूत छोटे बट्टे

१ रत्ती=१·८ ग्रेंज (लगभग)=१ माषक

२ रत्ती=३·६ ,, ,, =१ माषक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[ख]

सोना, ताँबा तथा चाँदी के तोलने के बट्टे

सोने ताँबे के बट्टे	चाँदी के बट्टे
५ रत्ती= ९ ग्रेंज=१ माषक	२ रत्ती=३·६ ग्रेंज=१ माषक
८० रत्ती=१४४ ग्रेंज=१ कर्ष	३२ रत्ती=५७·६ ग्रेंज=१ कर्ष

सोना, ताँबा तथा चाँदी
का पल
३२० रत्ती=५७६ ग्रेंज=१ पल

प्रश्न उठता है कि पल से पहिले जितने बट्टे हैं उन में ताँबे सोने के बट्टे एक क्यों हैं ? और चाँदी के बट्टे भिन्न क्यों हैं ? पल पर आ कर सोने, ताँबे, चाँदी के बट्टे एक क्यों हो गये ? जहाँ तक हमारा ख़्याल है ताँबे सोने के बट्टों का आविष्कार भारत में हुआ। चाँदी का कर्ष उन लोगों का बट्टा है जो कि भारत में चाँदी बेच कर भारत से कपड़ा आदि अपने अपने देशों में बेचने के लिए ले जाते थे।

हम को तो डाक्टर एफ़० डबल्यू० टॉमस (F. W. Thomas) का मत युक्त मालूम पड़ता है। उन्हों ने रॉयल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में अपना एक नोट लिखा है जिस का संक्षेप इस प्रकार दिया जा सकता है :—

"शब्द कर्ष एक बट्टे के अर्थ में—जिस से कार्षापण, पण नामक सिक्कों का घनिष्ट संबंध मालूम पड़ता है—हिंदुस्तान का अपना है। इस का कृष् धातु से संबंध है ऐसा कनिंगहम का मत तथ्य नहीं प्रतीत होता। ईरानी कोश में कर्ष शब्द बट्टे के अर्थ में दिया है। डाक्टर एल० एच्० ग्रे ने (जर्नल अव् दि ओरियंटल सोसाइटी, जिल्द २०, पृ० ५४-५५) में ईरानी कर्ष का भारतीय कर्ष

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से मिलान किया है। छठी सदी ईसा से पूर्व मिश्र देश के अरामेक् उपनिवेश में कर्ष बट्टा कर्ष के नाम से चलता था। (देखो : Professor Sachau's Aramäische Papyrus und Ostraka, Leipzig, 1911, Index तथा E. Meyer's Der Papyrusfund Von Elephantine, Leipzig, 1912, p. 56)। कर्ष का जो भी उद्गम-स्थान हो इस में संदेह नहीं है कि यह भी वैदिक मन या मीन के सदृश पच्छिमी एशिया से भारत में प्रविष्ट हुआ।"[1]

कर्ष, मन, मीन के सदृश धानक नामक बट्टा भी बाहर का मालूम पड़ता है। नारद तथा बृहस्पति स्मृति के अनुसार यह चार ताँबे के पण के बराबर था। चाँदी में इस की क़ीमत १४ ग्रेंज होती है। आश्चर्य की बात है कि, ईरानी दानक (dānaq) नामी सिक्के से यह भार में बिल्कुल मिलता जुलता है। सारांश यह है कि चाँदी के बट्टे बाहर से आए मालूम पड़ते हैं। ताँबे सोने के बट्टे भारतीय हैं।

प्राचीन भारत में बट्टों का विकास कैसे हुआ यह प्रश्न बहुत ही पेचीदा मालूम पड़ता है। इस पर बहुत सामग्री नहीं मिलती। जो कुछ मिलता है वह यही है कि नंद के जमाने में बट्टे चले ('नंदोपक्रमाणि हि मानानि')। हमारा विचार है कि कदाचित् भट्टोजी दीक्षित के इस वाक्य का आधार किसी प्रथा पर है। इस में संदेह भी नहीं है कि मौर्य-काल में कलिंग तथा मगध के बट्टे सरकारी तौर पर, प्रामाणिक समझे जाते थे। कौटल्य अर्थशास्त्र में 'तुलामान पौतवम्' शीर्षक एक प्रकरण है जो कि कौटल्य के समय में प्रचलित बट्टों पर बहुत ही अधिक प्रकाश डालता है। कौटल्य लिखता है कि:—

पौतवाध्यक्ष तोल माप के बट्टे के बनाने आदि के कामों को करे।

धान्य के दस दाने या पाँच रत्ती का एक सोना तोलने का मासा होता है। ऐसे सोलह का सोना तोलने का कर्ष होता है।

चार कर्ष का पल होता है।

---

[1] १९१६, पृ० ३६६।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अस्सी सफ़ेद सरसों का चाँदी तोलने का मासा होता है।

उन सोलह का या बीस शैव्य का चाँदी तोलने का धरण होता है।

बीस चावल का हीरे का धरण होता है।

आधा मासा, मासा, दो, चार, आठ मासा, दो सुवर्ण, आठ सुवर्ण, दस, बीस, तीस, चालीस, सौ इत्यादि।

इस के द्वारा सब धरणों की व्याख्या कर दी।

पत्थर के बट्टे प्रतिमान कहलाते हैं। मागध बट्टे एक ऐसे पत्थर के होते हैं, जो कि पानी आदि से बढ़ते नहीं और गरमी से घटते नहीं।[1]

बट्टों के सदृश कौटल्य ने लोहे की तराजू बनाने का संपूर्ण क्रम दिया है।[2] इस के बाद उसी प्रकरण में उस ने बड़े बड़े बट्टों के संबंध में जो

---

[1] पौतवाध्यक्षः पौतवकर्मान्तान् कारयेत्।

धान्यमाषा दशसुवर्णमाषकः पञ्च वा गुञ्जाः।

ते षोडष सुवर्णः कर्षो वा।

चतुः कर्षं पलम्।

अष्टाशीतिर्गौर सर्षपा रूप्य माषकाः।

ते षोडश धरणम्। शैव्यानि वा विंशतिः।

विंशति तण्डुलम् वज्रधरणम्।

अर्धमाषकः, माषकः, द्वौ, चत्वारः, अष्टौ माषकाः, सुवर्णौ द्वौ, चत्वारः, अष्टौ सुवर्णाः, दश विंशतिः त्रिंशत् चत्वारिंशत्, शतमिति।

तेन धरणानि व्याख्यातानि।

प्रतिमानान्यायो मयानि मागधमेकशैलमयानि, यानिवा, नोदक प्रदोहाभ्यां वृद्धिं गच्छेयुरुष्णेन वा ह्रासम्।

(कौटल्य अर्थशास्त्र, मैसूर, २ संस्करण, पृ० १०३, प्रकरण ३७)

[2] षडङ्गुलादूर्ध्वमष्टाङ्गुलोत्तराः दशतुलाः कारयेल्लोहपलादूर्ध्वमेकपलोत्तराः यन्त्रमुभयतः शिक्यं वा।..........तस्याः शतपदादूर्ध्वं विंशतिः, पञ्चाशत्, शतमिति पदानि कारयेत्। (पूर्वोद्धृत ग्रंथ। पृ० १०३-१०४)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कुछ बातें लिखी हैं वह बहुत ही आवश्यक हैं। क्योंकि उन्हीं के सहारे भारत के बट्टों का इतिहास मुसलमानी काल तक पहुँच जाता है। वह लिखता है कि—[1]

२० तोले का १ भार।

१० धरण का १ पल।

१०० पलों का १ आयमानी।

पाँच पल घटाते हुए व्यावहारिकी, भाजिनी, अंतःपुरभाजिनी नामक बट्टे (बनाए जायँ)।

उन का पल भी आधा धरण कम होता है।

इस के बाद वह उस समय के प्रचलित धातु के मापों को देता है। उस के अनुसार—

---

[1] विंशति तौलिको भारः।
दशधरणिकं पलम्।
तत्पल शतमायमानी।
पञ्चपलावरा व्यावहारिकी भाजन्यंतःपुरभाजिनी च।
तासामर्धधरणावरं पलम्। द्विपलावरमुत्तरलोहम्।
पडङ्गुला वराश्चायामाः।......................
....
अथ धान्यमाषद्विपलशतं द्रोणमायमानम्।
सप्ताशीति पलशतमर्धपलंच व्यावहारिकम्।
पञ्चसप्तति पलशतं भाजनीयम्।
द्विषष्टि पलशतमर्धपलं चान्तःपुरभाजनीयम्।
तेषामाढकप्रस्थकुडुम्बाश्चतुर्भागावराः।
षोडशद्रोणा वारी।
विंशति द्रोणिकः कुम्भः।
कुम्भैर्दशभिर्वहः।
(पूर्वोद्धृत ग्रंथ। पृ० १०४)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२०० पल का १ द्रोण (आयमान)
१८७½ " " (व्यावहारिक)
१७५ " " (भाजनीय)
१६२½ " " (अंतःपुरभाजनीय)
इन के आढ़क, प्रस्थ, कुड़ब क्रमशः एक एक चौथाई होते हैं।
१६ द्रोण का १ वारी।
२० द्रोण का १ कुंभ।
१० कुंभ का १ वह।

ऊपर लिखे बट्टों में २००, १८७½, १७५ तथा १६२½ पलों का द्रोण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इन चारों द्रोणों में एक दूसरे के अंदर १२½ पल का अंतर है। यह अंतर इतना क्रमबद्ध है कि स्वाभाविक है कि यह प्रश्न उठे कि ऐसा क्यों ? क्या उद्देश्य था जिस से चार प्रकार के द्रोण चलाए गए और उन में भी १२½ का भेद रक्खा गया। हमारी समझ में तो इस का संबंध उस समय की कर-प्रणाली से था। गेहूँ तथा अनाज पर जो टैक्स था वह दूसरे बट्टों को काम में ला कर इकट्ठा कर लिया जाता था। मध्यस्थ, दलाल, तोलने वाले आदि भी अपना अपना हिस्सा इसी तरह ले लेते थे। दृष्टांतस्वरूप बनारस को लो। शहर के लोग जब कभी दशाश्वमेध में आलू खरीदते हैं उन को उसी भाव में आलू मिलता है जो कि कमच्छा तथा विश्वेश्वरगंज की सट्टी में है। प्रश्न उठता है कि कुँजड़े ने कहाँ से कमाया। होता क्या है कि कुँजड़ा कमच्छा या विश्वेश्वरगंज की सट्टी से एक आना सेर आलू ख़रीदता है और दिखावे में इसी भाव पर दशाश्वमेध में बेच देता है। कमच्छा तथा विश्वेश्वरगंज का सेर तोल में बड़ा है और दशाश्वमेध का बहुत छोटा। परिणाम इस का यह है कि दोनों सेरों में जो भेद है वही उस को आमदनी के रूप में मिलता है। यही प्रणाली भारत के प्राचीन काल में प्रचलित थी— कौटल्य ने जो द्रोणों का भेद दिया है, हम को तो यही मालूम पड़ता है।

यह ऊपर कहा जा चुका है कि आढ़क, प्रस्थ, कुड़व—द्रोण के क्रमशः एक दूसरे के चौथाई थे (४ कुड़व=१ प्रस्थ; ४ प्रस्थ=१ आढ़क; ४ आढ़क=

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तालिका–२

क दाम. पाउंड	ख दाम. पाउंड	ग दाम. पाउंड	घ दाम. पाउंड	ङ दाम. पाउंड	च दाम. पाउंड													
१·१ —	१·२ —	१·३ —	१·४ —	१·६ —	२·१ —	= १ पल या मुष्टि या ⅝ शे विडु।												
२·२ —	२·४ —	२·६ —	२·८ —	३·५ —	४·३ —	= २ ”	= १ प्रष्टि या ½ अंजुलि।											
४·४ —	५ (४·८)–	५·२ —	५·६ —	७ —	८·६	= ४ ”	= २ ”	= १ कुडुम्ब या अरक्कु या अंजुलि।										
९ (८·८)–	१० —	१०·४ —	११·२ —	१४ —	१७·२ —	= ८ ”	= ४ ”	= २ ”	= ½ प्रस्थ, कुंचि, उरक्कु, माणक, शराव।									
१८ — (१७·३)	२० — (१९·४)	२१ — (२०·८)	२२ (२२·२) १	२८ (२८·४) १·३	३४·५ —	= १६ ”	= ८ ”	= ४ ”	= २ (½ प्रस्थ)	= १ प्रस्थ या ऊरी								
३५ —	३९ - १¾	४२ —	४४ २	५६ २·६	६९ ३¼	= ३२ ”	= १६ ”	= ८ ”	= ४ ”	= २ ”	= १ नारी, पड़ी, तरक							
७० ३¼	७७·८-३½	८३·३-३¾	८८८ ४	११३·७-५·२	१३८·८ ६½	= ६४ ”	= ३२ ”	= १६ ”	= ८ ”	= ४ ”	= २ ”	= १ आढ़क						
२७७·७ १३ (१६२½ पल)	३११·१-१४ (१७५ पल)	३३३·३-१५ (१८७½ पल)	३५५·५-१६ (२०० पल)	४५५·१-२०·५ (२५६ पल)	५५५·५ २६	= २५६ ”	= १२८ ”	= ६४ ”	= ३२ ”	= १६ ”	= ८ ”	= ४ आढ़क	= १ द्रोण या मरक्काल या करूणी					
— २६	— २८	— ३०	— ३२	— ४१	— ५२	= ५१२ ”	= २५६ ”	= १२८ ”	= ६४ ”	= ३२	= १६ ”	= ८ ”	= २ ”	= १ पड़क्कु, शूर्प, खरवार, कड़ि ?				
— ५२	— ५६	— ६०	— ६४	— ८२	— १०४	= १०२४ ”	= ५१२ ”	= २५६ ”	= १२८	= ६४	= ३२	= १६ ”	= ४ ”	= २ ”	= १ तूणि, खारी			
— १५६	— १६८	— १८०	— १९२	— २४६	— ३१२	= ३०७२ ”	= १५३६ ”	= ७६८ ”	= ३८४	= १९२	= ९६	= ४८ ”	= १२”	= ६ ”	= ३”	= १ भार, कलम		
— २६०	— २८०	— ३००	— ३२०	— ४१०	— ५२०	= ५१२० ”	= २५६० ”	= १२८० ”	= ६४०	= ३२०	= १६०	= ८० ”	= २०	= १० ”	= ५”	= १⅔”	= १ कुंभ	
—२६००	—२८००	—३०००	—३२००	— ४१००	—५२००	= ५१२०० ”	= २५६०० ”	= १२८०० ”	= ६४००	= ३२००	= १६००	= ८०० ”	= २००	= १००”	= ५०	= १६⅔	= १०”	= १ वह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१ द्रोण) इस के अतिरिक्त एक और द्रोण था जिस का वर्णन प्रायः आयुर्वेद शास्त्र में तथा स्मृतियों में मिलता है। यह तोल में २५६ पल का था।[1] इसी प्रकार दक्खिनी भारत में बट्टे चलते थे। उन में भी उत्तरी भारत का क्रम था इस पर अब तक किसी ने भी प्रकाश नहीं डाला। भारत के बट्टों के अंदर एक प्रकार की एकता थी— चाहे वह बट्टे दक्खिन भारत के हों और चाहे उत्तरी भारत के। यह सब के सब बट्टे मुसलमानी काल तक चलते रहे या नहीं इस को जानने के लिये यह आवश्यक है कि उन को अकबरी दाम में परिवर्तित किया जाय। प्राचीन भारत के बट्टों के तुल्य आजकल कौन से बट्टे हैं इस का जानना भी आवश्यक है। इस के लिये यह आवश्यक है कि उन को आंग्ल पाउंड में परिवर्तित किया जाय।

तालिका २ में ६ खाने बनाए हैं। क, ख, ग, घ, ङ, च,। उन में ६ प्रकार

---

[1] चतुः कर्षैः पलं प्रोक्तं दशषण्मितं बुधैः।
चतुः पलैश्च कुड़वं प्रस्थाद्या पूर्ववन्मताः॥
पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्चनिगद्यते।
प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुड़वोर्ध शरावकः॥
अष्टमानञ्च संज्ञेयम् कुडवाभ्यांच मानिका।
शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः॥
शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुष्प्रस्थैस्तथाढ़कम्॥
भाजनं कंसपात्रंच चतुःषष्टिपलं च तत्॥
चतुर्भिराढ़कैर्द्रोणः कलशोनल्वणोन्मतौ।
उन्मानश्च घटो राशि द्रोण पर्यायसंज्ञकाः॥
द्रोणाभ्यां शूर्प कुम्भौ च चतुःषष्टि शरावकाः।
शूर्पाभ्यां च भवेद् द्रोणी वाहो गोणी च सास्मृता॥
द्रोणी चतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः।
चतुः सहस्र पलिका षण्णवत्यधिका च सा॥
(शार्ङ्गधर संहिता, वेङ्कटेश्वर प्रेस, संस्करण संवत् १९७६, पृ० १०-१२)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के बट्टे जो कि प्राचीन भारत में प्रचलित थे दिए गए हैं। प्रत्येक ख़ाने को दो भागों मे विभक्त किया है। एक में प्राचीन बट्टे का तोल अकबरी दाम में और दूसरे में उस का तोल आंग्ल तोल (पाउंड) में दिया है। हर एक तोल के सामने उस का नाम दे दिया है। हर एक बट्टे में जो भेद है और उन का एक दूसरे के साथ जो संबंध है वह पल आदि के नीचे दे दिया है।

उपरोक्त तालिका के अकबरी दाम का भार ३२४ ग्रेंज है। दक्खिनी भारत के मापों का वर्गीकरण तथा उन का उत्तरी भारत के बट्टों के साथ मिलाना सुगम काम नहीं है। मरक्काल का भार भी हम ने अंदाज से दिया है। महाशय एच० एच० विल्सन के अनुसार "मरक्काल वह तोल है जो कि मद्रास में ८ 'पदी' के बराबर समझा जाता है। यह एक कलम का बारहवाँ भाग है। पुराने ज़माने में यह ७५० वर्गीय इंच (cubic inches) था और आज कल ८००। ४०० मरक्काल का एक गरीसा या गर्सें होता है। एक मरक्काल भार में ९०० रुपये के बराबर या १२ सेर या २४ पाउंड तथा ६ आउंस होता है।" महाशय विल्सन के इस कथन से स्पष्ट है कि पुराने ज़माने के ७५० वर्गीय इंच वाले मरक्काल का तोल २२[१] पाउंड के बराबर था। महाशय मोरलैंड का कहना है[१] कि १६ वीं सदी में दक्खिनी मन २५ पाउंड से २७ पाउंड के लगभग था। संस्कृत ग्रंथों का द्रोण ऊपर लिखी तालिका के अनुसार २१ पाउंड के लगभग था। प्राचीन काल की क़ीमतों के तथा मज़दूरी में दिए गए मेहनतानों के अध्ययन से मैं तो इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि प्राचीन काल का द्रोण तथा दक्खिनी भारत का मरक्काल किसी भी रूप में भिन्न भिन्न बट्टे न थे। अकबरी दाम को यदि हम ३२४ ग्रेंज या १८० रत्ती के बराबर मान लें तो प्राचीन भारत के बट्टों का मध्यकालीन तथा नवीन बट्टों में परिवर्त्तित करना कुछ कुछ सुगम हो जाता है।

उपर्युक्त तालिका से यह भी सिद्ध है कि भिन्न भिन्न तोल का प्रस्थ या सेर पुराने ज़माने में प्रचलित था। इस का भार १८, २०, २१, २२, तथा २८

---

[१] मोरलैंड, 'फ़्रम अकबर टु औरंगज़ेब,' १९२३, पृ० ३३६।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दाम था। आइन-ए-अकबरी से यह मालूम पड़ता है कि इस भार का प्रस्थ १६ वीं सदी तक प्रचलित था। अबुलफ़ज़्ल लिखता है कि "पुराने ज़माने में हिंदुस्तान में सेर का भार १८ दाम था और कहीं कहीं पर यह २२ दाम के भी बराबर था। सम्राट् अकबर के समय के आरंभ में इस का भार २८ दाम था। आजकल इस को बढ़ा कर ३० दाम तक कर दिया गया है— प्रत्येक दाम ५ टंक के बराबर होता है।[1] इसी प्रकार महाशय मोरलैंड का कहना है कि १६३४-५ तक गुजरात में १८ दाम का सेर प्रचलित था। आगे इस को २० दाम के बराबर कर दिया गया[2]। हमारी समझ में तो यह सेर बहुत ही प्राचीन है। कौटल्य के अनुसार उन में से एक तो रणवास में चलता था और दूसरा नौकरों को भत्ता देने में काम आता था। यह अंतःपुरभाजनीय तथा भाजनीय नाम से पुकारे जाते थे।[3] ऊपर लिखी तालिका में यह दोनों क तथा ख खाने में दिए गए हैं। ३६ दाम का प्रस्थ, जो कि गुजराती सेर का दोगुना था, बंगाल में १६४२ तथा उस के बाद तक चलता रहा।[4] २८ दाम का प्रस्थ जिस का संपूर्ण शास्त्रों में वर्णन है अकबर के ज़माने तक ज्यों का त्यों प्रामाणिक बना रहा। अकबर ने आगे चल कर उस का भार बढ़ा दिया तथा उस को ३० दाम का कर दिया।[5]

इस स्थिति को सामने रखते हुए यह कहना स्वाभाविक है कि मुसलमानी शासकों ने तोल तथा बट्टों के संबंध में कुछ भी नया काम नहीं किया। जिस प्रकार उन्हों ने पुराने ज़माने के ज़मीनों के माप को लिया उसी प्रकार

---

[1] आईन-ए-अकबरी, जिल्द २, पृ० १२५।

[2] मोरलैंड, 'फ़्रम अकबर टु औरंगज़ेब' पृ० ३३६।

[3] पञ्चसप्तति-पल-शतं भाजनीयम्।

द्विषष्टि पल शतं अर्धपलं चान्तःपुर-भाजनीयम्॥

(कौटल्य अर्थशास्त्र, पृ० १०४)

[4] मोरलैंड 'फ़्रम अकबर टु औरंगज़ेब' पृ० ३३६।

[5] वही, पृ० ३३३-३७।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

उन्हों ने बाज़ार में चलते बट्टों तथा तोलों को। इस में संदेह भी नहीं है कि भारत के शासक होते हुए उन का यह कर्त्तव्य था कि वह राज्य प्राप्त करने के बाद बाज़ारी बट्टों की देख रेख करें तथा उन को प्रामाणिक करें जिस से कारोबार बंद न हो। उस कर्त्तव्य को उन्हों ने निभाया। कोई ऐसा नया काम उन्हों ने इस संबंध में नहीं किया जिस से उन को तोल तथा बट्टों के विषय में महत्त्व मिले।

जहाँ तक तोल माप के निरीक्षण का प्रश्न है प्राचीन काल के हिंदू राजे इस को सदा से ही करते रहे हैं। कौटल्य के अनुसार तो बट्टों तथा मापों के बनवाने तक का सरकार का काम था।

उस ने बट्टों तथा तोलों का जो सरकारी दाम दिया है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।[1] और वह नीचे लिखी तालिका में इस प्रकार दिखाया जा सकता है:—

तालिका—(३)

धान मापने के माप	तांबे के मासे तथा पण में कीमत
कुड़व (=४ पल; १ पल=५७६ ग्रेंज)	१ माषक
प्रस्थ (=४ कुड़व)	६ माषक
आढ़क (=४ प्रस्थ)	३/४ पण (=९ माषक)
द्रोण (=१६ प्रस्थ या ४ आढ़क)	१ १/४ पण
प्रतिमान (लोहे के बट्टे)	२० पण
तुला (तराज़ू)	६ २/३ पण

[1] सपादपणो द्रोण मूल्यम्।
आढकस्य पादोनः।
पण्मापकाः प्रस्थस्य।
मापकः कुडुवस्य।
द्विगुणं रसादीनां मान मूल्यम्।
विंशति पणाः प्रतिमानस्य।
तुला मूल्यं त्रिभागः।
(कौटल्य, अर्थशास्त्र, मैसूर, द्वितीय संस्करण, पृ० १०५।)

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कौटल्य ने जो सरकारी हस्तक्षेप बट्टों तथा मापों के संबंध में आवश्यक माना उस का मुख्य कारण यही मालूम पड़ता है कि वह जनता को बनियों की बेईमानी से बचाना चाहता था। व्यापार-व्यवसाय की वृद्धि में ईमानदारी का बड़ा भारी भाग होता है। यदि बट्टों तथा मापों में जाल-साज़ी चलने लगे तो लेन देन में असुविधा का अंत न रहे। कौटल्य के अनुसार संस्थाध्यक्ष तोल माप का नियमपूर्वक निरीक्षण करे। द्रोण तथा परिमाणी नाम के बट्टे में आधे पल का भेद कोई अपराध नहीं है। परंतु यदि उन में एक पल का भेद हो तो दूकानदार पर १२ पण का जुरमाना किया जाय। ज्यों ज्यों बट्टों तथा मापों में भेद बढ़े उन पर जुरमाना भी बढ़ाया जाय। तराज़ू (तुला) में एक कर्ष का फ़रक कोई अपराध नहीं है। परंतु यदि तराज़ू में दो कर्ष का फ़रक हो तो तोलनेवाले पर छ पण का जुरमाना किया जाय। ऊपर लिखे नियम के अनुसार तोल मापने में जैसा ज्यादा कम फ़रक हो वैसा ही जुरमाना भी ज्यादा कम होना चाहिए।[1]

---

[1] संस्थाध्यक्षः पण्यसंस्थायां पुराणभाण्डानां स्वकरणविशुद्धाना माधानं
विक्रयं वा स्थापयेत् ॥
तुलामान भाण्डानि चावेक्षेत, पौतवापचारात् ।
परिमाणी द्रोणयोरर्धपलहीनातिरिक्तमदोपः;
पलहीनातिरिक्ते द्वादशपणो दण्डः; । तेन पलोत्तरा
दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ।
तुलायाः कर्ष हीनातिरिक्त अदोपः; द्विकर्ष हीनातिरिक्ते
षट्पणो दण्डः । तेन कर्षोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता ।
आढकस्यार्धं कर्ष हीनातिरिक्तमदोषः; कर्ष हीनातिरिक्ते
त्रिपणो दण्डः । तेन कर्षोत्तरादण्ड वृद्धिर्व्याख्याता ।
(कौटल्य, अर्थशास्त्र, मैसूर संस्करण, पृ० २०४-२०५)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चित्रकार "कवि" मोलाराम की चित्रकला और कविता

[लेखक—श्रीयुत मुकंदीलाल, बी० ए० (आक्सन), बार-एट्-लॉ]

[१]

हिंदी ग्रंथकर्ताओं के नामों का अभाव

संस्कृत भाषा में लिखने वाले ग्रंथकारों में अपने रचे ग्रंथों पर अपने नाम लिखने की प्रथा न थी। इस का कारण यही प्रतीत होता है कि संस्कृत में लिखने वाले प्रायः संन्यासी व आचार्य लोग होते थे, जो कि त्यागी पुरुष थे और निष्काम कार्य करते थे। अपने कर्म के फलों के इच्छुक नहीं थे। आत्म-त्याग की मात्रा उन में बहुत अधिक थी। वे अपने विचारों को मानव जाति की भलाई के लिए छोड़ना चाहते थे। इसी लिए संस्कृत में लिखी पुस्तकों पर ग्रंथकर्ताओं के नाम नहीं मिलते हैं। जहाँ कहीं नाम मिले हैं, वे परोक्ष रूप से व प्रसंगवश, अनायास ही मिले हैं।

संस्कृत ग्रंथकर्ताओं के नामों का अभाव

प्राचीन हिंदी लेखक, प्रायः सब ही संस्कृत में लिखने वालों का अनुकरण करते थे। प्राचीन हिंदी में जो ग्रंथ हैं उन के ग्रंथकर्ता भी अपने नाम ग्रंथों पर नहीं लिखते थे। जहाँ कहीं हिंदी के बड़े बड़े कवियों के नाम उन के ग्रंथों पर मिले हैं वे परोक्ष रूप से मिले हैं। यथा तुलसीदास जी ने अपना नाम अपनी "सतसई" के २९ वें दोहे के पहिले पद में लिखा है—

प्राचीन हिंदी के ग्रंथकर्ताओं के नाम कहाँ तक व कैसे पाए जाते हैं

तुलसी हर हित वरन सिसु संपति सहज सनेह।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विहारी ने अपनी "सतसई" के ७१३ वें दोहे के दूसरे पद में लिखा है।

करी विहारी सतसई भरी अनेक सवाद॥

रसनिधि ने अपनी "सतसई" के ३६ वें दोहे के दूसरे पद में लिखा है—

रसनिधि मन में नित बसैं चरन कमल अभिराम।

यदि ये दोहे इन सतसइयों की नक़ल करने वाले हटा देते और असली उन के हाथ की सतसई न मिलती तो आज हम यह न कह सकते कि किस ने उन को रचा था। हाल में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से हस्त-लिखिति हिंदी पुस्तकों की छान-बीन की गई है। इस सिलसिले में पता लगा है कि आधे हस्त-लिखित, अप्रकाशित ग्रंथों में कहीं भी उन के रचने वालों का नाम नहीं। इस से यह मानना पड़ेगा कि नाम लिखने की प्रथा हिंदू लेखकों में नहीं या बहुत कम थी।

[२]

चित्रकारों के नामों का अभाव

यदि भारतवर्ष के सब चित्रकारों के नाम हमें मिलते तो कम से कम दस लाख से कम नाम न होते। संसार का कोई देश नहीं जहाँ भारतीय चित्र हज़ारों की संख्या में, राज-प्रासादों में, अमीरों के महलों में, चित्रशाला व अजायब-घरों में, न हों। उन के बनाने वालों के नामों का पता नहीं लगता। यदि इस समय संसार में बिखरे हुए सब भारतीय चित्र देखे जायँ तो अधिक से अधिक सौ नाम मिल सकेंगे। वे नाम भी प्रसंगवश या किसी कोने पर यों ही लिखे मिलेंगे। जो नाम मिलते भी हैं उन की बाबत यह नहीं कहा जा सकता है कि वे नाम चित्रकारों के हैं, या उन के जिन के लिए वे चित्र बनाए गए हों, या जिन्हों ने उन्हें ख़रीदा हो, या जिन के पास वे चित्र रहे हों। तथापि ऐसे कुछ लक्षण कहीं कहीं पाए जाते हैं, जिन से यह कहा जा सकता है कि कम से कम कुछ नाम तो चित्रों पर अवश्य चित्रकारों के हैं। तथापि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विदित होता है कि हिंदू ग्रंथ-कर्ताओं की तरह हमारे चित्रकार लोग भी अपने नाम चित्रों पर नहीं लिखते थे। अजंता की गुफाओं की दीवारों पर जो अलौकिक चित्र बने हैं उन के बनाने वालों के नामों का कहीं पता नहीं। वहाँ आख़िरी चित्र द्वितीय पुलिकेशिन के समय में (६०८-६४८) बने थे। इस का सबूत तो अवश्य है। जैसे कि सितन्नवासल के शिलामंदिरों की दीवारों पर बने चित्र जो अजंता व बाग़ के गुफा-मंदिर के चित्रों से मिलते हैं। उन के बनाने वालों का तो पता नहीं लगता है। किंतु इस बात का पता है कि वे राजा महेन्द्रवर्मन् (६००-६२५ ई०) के बनवाए हुए हैं। कहते हैं कि वह स्वयं भी चित्रांकण करते थे। वह अपने को "चित्रकार-पुलि" (चित्रकारों में सिंह), चित्रकारों का बादशाह अथवा चित्रकारों का शिरोमणि कहते थे। भारतीय चित्र जो दुनिया के सभ्य देशों में पाए जाते हैं उन में बिरले ही ऐसे चित्र हैं जिन पर चित्रकारों के नाम पाए जाते हैं। लंदन के ब्रिटिश म्यूज़ियम में कुछ भारतीय चित्रों पर प्रसिद्ध चित्रालोचक श्रीयुत नानालाल चमनलाल मेहता आइ० सी० एस० को निम्नलिखित नाम मिले हैं।

रामबिहारी, उद्योतसिंह, सीतलसहाय, कोविदसिंह, बिशनदास, बन्दी, मनोहरदास और रामसहाय। यह संभव है कि वे स्वयं चित्रकार थे। किंतु यह तो प्रायः ठीक मालूम होता है कि भैरवराम का चित्र शीतलदास ने बनाया और इबू हस्सन की किताब के लिये चित्र मूलचंद ने मुसलमानी साल १०९७ हिजरी संवत् में बनाए। ये दोनों ब्रिटिश म्यूज़ियम में हैं। बिशनदास का नाम एक इंडो-इरानियन चित्र (बाबर का बाग़ बनाना) पर भी मिला है। इस लिए यह संभव है कि बिशनदास अवश्य कोई विख्यात चित्रकार थे, जो हिंदुस्तान में आगंतुक सब से पुराने मुग़ल बादशाह बाबर के दरबार में चित्र बनाया करते थे। मोलाराम के एक पूर्वज का नाम भी बिशनदास था। क्या यह संभव नहीं कि ये बिशनदास उन के ही पूर्वज थे ? इस के विषय में उपयुक्त स्थान पर आगे चल कर कुछ कहा जायगा।

इंडो-परशियन या हिंदी-ईरानो चित्रों पर कुछ चित्रकारों के नाम पाए

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाते हैं। इन के विषय बादशाहों के जीवन से संबंध रखते हैं और इन के मालिक बादशाह ही रहे होंगे, इसलिए इन नामों को

हिंदी-ईरानी चित्रकारों के नाम

बाबत हम यह कह सकते हैं कि जिन चित्रों पर उन के नाम पाए जाते हैं उन के बनाने वाले वही लोग हैं जिन के उन चित्रों पर नाम हैं। एक पोलो खेल के चित्र पर साँवला का नाम है। हुमायूँ की एक तस्वीर पर भगवती का नाम है। क़ासिम ने क़िले की दीवार के बनने का चित्र बनाया है। "बाबर के बाग़" पर नन्हा और बिशनदास के नाम हैं। अबुल हसन ने बैलों की जोड़ी के रथ का अति उत्तम चित्र बनाया है। मंसूर विख्यात चित्रकार था।

मुग़ल चित्रकारों के नाम

कुछ मुग़ल चित्रों पर नादिर (शेर मुहम्मद का चित्र) चित्रमन (आला-उल-मुल्कतूनी) गोवर्धन (सादिक़ खाँ) हूनहार (चार फ़क़ीर), अनूप चत्तर (औरंगजेब) चित्रकारों के नाम हैं। अकबर के दर्बार के विख्यात चित्रकारों के नाम हैं— बसावन, दसवंत और केसूदास।

राजपूत चित्रकारों के नाम

राजपूत (हिंदू) चित्र-कला जिस की दो शाखाएँ हैं—राजस्थानी और पहाड़ी—उस के निर्माण-कर्ताओं में से बहुत कम के नाम मिलते हैं। जैपुर के दर्बार में एक बड़ा चित्र रास-मंडल का है। उस पर लिखा है—सवी "साहिबराम" चेतेरे बणाई। 'सवी' छबि के लिये प्रयोग किया गया है और 'चेतेरे' के मानी मारवाड़ी बोली में चित्रकार के हैं। बणाई स्पष्ट है। वहाँ एक दूसरा बड़े आकार का चित्र "गोवर्धन" का है। उस पर पारस का नाम लिखा है। संभवतः उस का चित्रकार पारस था।

गढ़वाली चित्रकार माणकू और चैतू

गढ़वाली चित्रकारों में से केवल तीन के नाम अबतक मिले हैं। मोलाराम, माणकू और चैतू। माणकू का नाम उन दो चित्रों में मिला है जो इस समय टेहरी (गढ़वाल)-नरेश, सर नरेंद्रसाह के० सी० एस० आइ० के चित्र-संग्रह में हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(१) 'कृष्ण व गोपों की आँख मिचौनी खेल' एक अच्छा चित्र है। चित्र में अति रमणीय वन में एक ओर गायें कुछ आराम कर रही हैं कुछ चर रही हैं। दूसरी ओर एक गोप-बालक कृष्ण की आँखें बन्द कर रहा है। चार गोपाल छिपने के लिए भागे जा रहे हैं। आँख मींचने वाले के पीछे एक गोपाल छिप गया है, दो पेड़ों के बीच छिपे हैं; और एक ग्वाला पेड़ पर चढ़ा हुआ शाखों के बीच में छिपा है। यह चित्र गढ़वाली (पहाड़ी) राजपूत चित्रकला का एक अच्छा उदाहरण है। इस चित्र की दूसरी ओर लिखा है—"मानक की लिखी"। चित्र बनाने को चित्र-लेखन कहते हैं। इस लिए लिखी के माने हैं अंकित की।

(२) 'राधा-कृष्ण' का एक चित्र, जो कि चित्रकला के लिहाज़ से निम्नकक्षा का चित्र है। उस पर एक संस्कृत श्लोक लिखा है। इस श्लोक को श्री नानालाल चमनलाल मेहता ने अपनी पुस्तक ('स्टडीज़् इन् इंडियन पेंटिंग') के ४९ वें पृष्ठ पर उद्धृत किया है।

मुनिगिरिसोमैः सश्मिते विक्रमाब्दे।
गुणगणितगरिष्टा मालिनी वृत्तवित्ता॥
व्यचरदजभक्ता माणकू चित्रकर्त्ता।
ललितलिपिविचित्रं गीतगोविन्द चित्रम्॥

पहली पंक्ति में संख्या संकेत करने वाले शब्दों में चित्र के बनने का विक्रम संवत् (१८८७) दिया है (मुनि=७; गिरि=८; वसु=८; सोमै=१=१८८७)[१] मालिनी शब्द के प्रयोग के कारण इस श्लोक के अर्थ में कुछ मतभेद है। मि० मेहता ने मालिनी के चार अर्थ बताए हैं। (१) मालन अथवा मालिन; (२) स्थान का नाम; (३) किसी महिला का नाम; (४) मालिनी छन्द। हम "मालिनी" को नाम के अर्थ में लेना उचित समझते हैं। मालूम होता है कि तत्कालीन टेहरी-नरेश राजा सुदर्शन के दर्बार में कोई उनकी लाड़ली महिला थी जिसको वे बहुत चाहते थे। चित्रकार माणकू

[१] संवत् १८८७=सन् १८३० ई०।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ने इन्हीं विष्णु की भक्त, गुणवती, रूपवती, मालिनी के मनोरंजन के लिए गीत-गोविंद जो सुन्दर अक्षरों में लिखा था उसमें (राधा-कृष्ण के जीवन से संबंध रखने वाली घटनाओं के) विचित्र चित्र बनाए। यह चित्र उन चित्रों में से एक अथवा पहिला चित्र प्रतीत होता है। कई चित्र गीत-गोविंद के आधार पर बने हैं। जिनके विषय में यह कहा जा सकता है कि वे माणकू ने अंकित किए होंगे। यह भी मुमकिन हो सकता है कि इस चित्र में जो राधा व कृष्ण अटारी पर बैठे दिखाए गए हैं उन से चित्रकार का मतलब राजा सुदर्शन शाह व मालिनी से हो।

चैतू का नाम एक चित्र, यादव-महिला-हरण पर है जो टेहरी महाराज के संग्रह में है। यह चित्रकार का नाम प्रतीत होता है। माणकू की तरह चैतू भी पहाड़ी नाम है। ये दोनों नाम अब भी गढ़वाल में पाए जाते हैं। मालिनी (माणकू), यादव-महिला-हरण (चैतू) की चित्रांकण शैली मोलाराम की चित्रकला से बहुत मिलती है। इसलिए माणकू व चैतू का मोलाराम का शिष्य होना सम्भव है।

यहाँ पर हम यह कह देना ज़रूरी समझते हैं कि गढ़वाल के राजा श्रीनगर छोड़ कर सन् १८०३ में टेहरी में जा बसे थे। अस्तु उस के बाद का टेहरी का इतिहास किसी से छिपा नहीं होना चाहिये। हम ने टेहरी के योग्य इतिहास-लेखक पं० हरिकृष्ण रतूड़ी से पूछा कि वे चैतू, माणकू और मालिनी की बाबत टेहरी के पुस्तकालय या हस्तलिखित पुस्तकों अथवा दन्त-कथाओं के आधार पर कुछ बता सकते हैं। २६ मई १९३२ के पत्र में उन्हों ने उत्तर में लिखा कि मानकू, चैतू व मालिनी की बाबत उन को कोई पता नहीं लगा, न इन नामों के कोई चित्रकार व महिला सुदर्शन शाह[1] के समय में टेहरी में थी। मोलाराम की बाबत वे भी लिखते हैं कि उस के

[1] सुदर्शनशाह अपने पिता प्रद्युम्नशाह के साथ १८०३ ई० में श्रीनगर छोड़ कर चले गए थे। सन् १८०५ से वे राज्य टेहरी में शासन में भाग लेने लगे थे, यद्यपि उन का राज्य-काल सन् १८१५ से सन् १८५९ है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हाथ के चित्र टेहरी दर्बार में भी हैं। और उसे कवि और चित्रकार टेहरी के लोग भी मानते हैं। मोलाराम के ऐतिहासिक काव्य को पं० हरिकृष्ण जी ने भी देखा है।

[३]

चित्रकार 'कवि' मोलाराम का नाम कैसे मिला

ललितशाह ने गढ़वाल में सन् १७८० ई० से १७९१ ई० तक राज्य किया। उन की राजधानी श्रीनगर थी। उन के चार पुत्र थे—जयकृतशाह, पराक्रमशाह, प्रद्युम्नशाह और प्रीतमशाह। उन की यह इच्छा थी कि वे अपने चारों लड़कों के लिये राज्य सिंहासन छोड़ जायँ। बड़े लड़के के लिए गढ़वाल की गद्दी थी। बाक़ी तीन के लिए वह राज्य तलाश करने लगे। वे अपने पड़ोसी राजाओं पर हाथ साफ़ करने लगे। कमाऊँ को पराजय कर वहाँ का राज्य ललितशाह ने प्रद्युम्नशाह के सिपुर्द किया। ७—८ वर्ष प्रद्युम्नशाह ने कमाऊँ में राज्य किया। ललितशाह के लालची होने के कारण मंत्रि-मण्डल को षड़यन्त्र रचने व राजा का कृपा-पात्र बनने का ख़ूब मौक़ा मिला। वे एक दूसरे के ख़िलाफ़ हो गए। वैमनस्य और ईर्ष्या ख़ूब बढ़ती गई। राजा को अपने हाथ का कठ-पुतला बनाने की ग़रज़ से मंत्री लोग एक दूसरे के ख़ून के प्यासे बन गए। रामा व धरणी दो सकलानो भाई उस समय के मुख्य राज-कर्मचारी व सेनानायक थे। वास्तव में वे गढ़-वाल के कर्ता धर्ता थे। विपक्षी मंत्रियों ने दोनों भाइयों को मरवा डाला। उन में से एक की स्त्री (बेवा) नैपाल (गोर्खा) राजा के पुरोहित की बेटो थी। वह नैपाल गई, और गढ़वाल के राजकर्मचारियों के अत्याचार की बाबत नैपाल के राजा से कहा। उस ने १८०३ के फ़रवरो मास में अमरसिंह पापा और अपने चचा हस्तिदल चौतरिया को सेना लेकर गढ़वाल में आक्रमण करने को भेजा। कमाऊँ पर इस से पहिले ही गोर्खाओं ने क़ब्जा कर लिया था। एक बार पहिले भी सन् १७९१ में गोर्खा गढ़वाल पर चढ़ाई कर

गढ़वाल में गोर्खाओं का आक्रमण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चुके थे। किन्तु उस समय वे लैन्सडौन के पास लंगूर गढ़ी तक पहुँच पाए थे कि वहीं से गढ़वाली सेना ने उन्हें मार भगाया।

गढ़-राज्य में स्वार्थी राजकर्मचारी ऊधम मचाने लगे। गढ़-राज्य की शक्ति गोर्खाओं का सामना करने को संगठित न हो सकी। गढ़वाली सिपाही हारते गए। गोर्खाओं ने श्रीनगर पर चढ़ाई की। प्रद्युम्नशाह अपने भाई प्रीतमशाह और पुत्र सुदर्शनशाह व अन्य कुटुम्बियों और कुछ नौकर व दर्बारियों को साथ लेकर, श्रीनगर छोड़ कर, अलकनंदा पार हो गए। और पहाड़ के रास्ते देहरादून (जो उस समय गढ़वाल राज्य के अन्तर्गत था) चले गए। श्रीनगर में गोर्खा गवर्नर हस्तिदल चौतरिया ने अपना राज्य-शासन आरम्भ किया। बारह वर्ष तक गोर्खा-शासन गढ़वाल में रहा।

मोलाराम राज-परिवार के साथ श्रीनगर छोड़ कर अलकनंदा के उस पार, टेहरी-गढ़वाल, नहीं गए। श्रीनगर में हस्तिदल चौतरिया को मोलाराम सन् १८०३ में मिले। किन्तु मालूम होता है कि मोलाराम की चित्रकला की ख्याति नैपाल की राजधानी कान्तिपुर तक पहुँच चुकी थी। मोलाराम अपने काव्य में लिखते हैं कि हस्तिदल ने उन को "कवि बीर" कह कर उन से कहा—

मोलाराम के हस्तलिखित काव्य की रचना कैसे हुई

कान्तिपुर में किरति तुहारी सुनत रहे।
अब आँख निहारि चित्र विचित्र तुम्हारे देखे॥

हस्तिदल ने मोलाराम से गढ़वाल के पराजय के कारण पूछे—

हस्तिदल सुनि के इहे रीझे अत मन माँहि।
कहो कवि गढ़राज की अब उतपति देहो सुनाई॥
क्यों कर राज हाथ न आयो, अपनो कैसे करहिं गंवायो।
विद पूर्वक अब देहो सुनाई, मोलाराम कहो समझाई॥
हस्तिदल बूझे तुम सौं, कहो तहाँ की बातहि हमसौं।

गढ़वाल के राजाओं का इतिहास व गढ़वाल के राजाओं ने तिब्बत सरमोर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और कमाऊँ पर जो आक्रमण किए उन का उल्लेख करते हुए, प्रसंगवश, मोलाराम ने अपने पूर्वजों के गढ़वाल में आने के विषय में और अपनी चित्रशाला की बाबत अपने "काव्य" में लिखा है। मोलाराम के अपने हाथ के लिखे काव्य के आगे के १९ दोहे चौपाई खो गये हैं शेष दोहे, चौपाई, छन्द १२७ पृष्ठों में मौजूद हैं। पीछे के २-४ पृष्ठ और भी खो गए प्रतीत होते हैं।

मोलाराम ने अपना काव्य हस्तिदल चौतरिया के कहने पर रचा था। उस समय गढ़वाल के राजा प्रद्युम्नशाह देहरादून से टेहरी चले गए थे। मोलाराम को अपने पुराने राजा का भय नहीं था। पुराने राजा व उन की संतति के, अलकनन्दा के इस पार श्रीनगर गढ़वाल में फिर राज्य स्थापित करने की कोई आशा नहीं थी। उन की पतंग की डोर कट चुकी थी। इस लिए जो कुछ उन्हों ने अपने पूर्वजों से सुना था वह सब हस्तिदल से निर्भयता पूर्वक अपने काव्य द्वारा कह दिया।

सुलैमान शिकोह का गढ़वाल में आगमन

औरंगजेब के भाई दारा शिकोह का पुत्र सुलैमान शिकोह प्राणरक्षा के लिए गढ़वाल के राजा पृथिवीशाह (पृथिविपतशाह) जो तब श्रीनगर में रहते थे, के पास आया और उन का मेहमान बनकर रहने लगा। जब औरंगजेब को इस का पता लगा तो उस ने पृथिवीशाह को धमकी दी कि अगर वे सुलैमान शिकोह को बादशाह के हवाले न करें तो उन के हक़ में अच्छा नहीं होगा। कैसे अथवा क्यों पृथिवीशाह सुलैमान शिकोह को औरंगजेब के हवाले करने पर राजी हुए, इस के विषय में मोलाराम ने जो लिखा हो उस के दोहे चौपई खो गए हैं। जो दोहे चौपाई अब मौजूद हैं वे यह हैं—

इह अरजी लिखि तहाँ पठाई।
बाँची जब अतिही मन आई॥
नौरंजेब भये अति राजी।
कह्यो वेग तुम जाओ काजी॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पकड़ सलेमा को इत लाओ।...

[४]

सुलैमान शिकोह किस तरह औरंगजेब के हाथ आया

औरंगजेब की सेना पातली[1] (दूण) सुलैमान को लेने के लिए आई। इस की ख़बर जब गढ़वाल में आई राजा पृथिवीशाह (मोलाराम ग़लती से पृथिविपतशाह को फ़तेशाह कहते हैं) ने—

(चौपाई)—सब मंत्री तब पास बुलाये।
... ...
राजा कहे कहा अब कीजे।
कौन भाँत सैजादा दीजे॥
... ...
खसिया[2] कहिं बाँध ले जैहै।
वहाँ पकरि कै सौंप जो देहैं॥
विप्र कहै यह मत ठहरावो।
जुगत जतन करिके ले जाओ॥

(दोहा)—राजमंत्रि मिलहीं सबै, गये सैजादे पास।
झूटे मीठे बचन तहँ, लोग करन हि ब्यास॥

(चौपाई)—हाथ जोड़ सब कहनहि लागे।
खड़े खड़े सैयजादे आगे॥

---

[1]पातली दूण नगीना से २५ मील कोटद्वार से ३६ मील रामगंगा के तट-पर ५००० एकड़ लम्बा मैदान गढ़वाल की तराई में है। पहिले वहाँ बस्ती (आवादी) थी। अब यह स्थान कालागढ़ बंद जंगल के अन्तर्गत एक विशाल शिकारगाह है।

[2]खसिया=क्षत्री अथवा राजपूत।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हजरत फौजें मुकति आई।
चलिये जल्दी करैं लड़ाई॥
... ...

मोलाराम ने गढ़वाली सैनिकों का वर्णन अपने काव्य में किया है जो कि बड़ा रोचक एवं पढ़ने लायक़ है। उस से विदित होता है कि उस समय के गढ़वाली सैनिकों के पास शस्त्र क्या होते थे, उन की पोशाक क्या थी और क्या क्या सामान वे अपने साथ रण-क्षेत्र में ले जाते थे। मोलाराम की कविता के दृष्टान्त देते हुए गढ़वाली सेना का विवरण मोलाराम के शब्दों में अन्यत्र दिया जायगा।

शाहज़ादे सुलैमान शिकोह के सामने गढ़वाली सेना खड़ी कर युवराज मेदिनीशाह ने सुलैमान शिकोह से कहा—

कुली पाछे जिनस लावै।
संग दिवान जू तिनके आवै॥
तुमहूँ बैठो डाक के माहीं।
हमहूं संग चलत है ताहीं॥
श्यामदास जू के हरदास।
पिता पुत्र रहे माल के पास॥
कुली मुलक सै पाछे आवे।
माल असबाब सभी ओ लावे॥
... ...

इस तरह सुलैमान को गढ़वाली सेना के साथ उस का सेनापति बनाकर—

इनसों साह सलेम ले गये।
जलदी सौंप जो तिन पै दये॥
पकड़ सैजादा सलेम ले गये।
जल्दी सौंप जो तिन पै दये॥
पकड़ सैजादा उनहूँ लीना।
... ...

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गढ़ महि जाके जपति कीनी ।
जिनस सब हजरत की लीनी ॥
जौ सैजादे को गढ़ छूव्यो ।
माल बादसाही सब लूव्यो ॥
जपद दिवान मुसद्दी कीने ।
राखे कैद लूट सब लीने ॥
श्यामदास अरु हरदास ही ।
पिता पुत्र दोउ राखे पास ही ॥

मोलाराम के पूर्वज गढ़वाल में कैसे रह गए ?

अस्तु मोलाराम के पूर्वज सुलैमान शिकोह के साथ श्रीनगर गढ़वाल में आए थे। उन का नाम था श्यामदास और हरदास (पिता-पुत्र) और सुलैमान शिकोह के औरंगज़ेब के हाथ आजाने पर वे श्रीनगर में रह गए। मोलाराम कहते हैं कि राजा पृथिविपतशाह ने—

लूँवर जान दिवानहि जाने ।
राखे हित सौ अत मन माने ॥
तब सौ हम गढ़ माँझ रहाये ।
हमरे पुरखा या विद आये ॥
तिनके वंस जनम हम धारा ।
मोलाराम नाम हमारा ॥
सुनो चौतरा साहब काजी ।
तब सौं गढ़महि रहे वे राजी ॥
... ...
पाँच रुपैया रोज लगायो ॥
साठ गाँउ जागीर ही दीने ।
अपने वह उस्तादहि कीने ॥
पढ़ी पारसी तिन के पास हि ।
रहे होय जो तिन के दास हि ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नजर बंद करि राखे पासा।......

हरदास के पुत्र हीरालाल, उन के मंगतराम और मंगतराम के मोलाराम हुए। मोलाराम का जन्म-सन् १७६० ई० में हुआ। और उन का देहान्त सन् १८३२ ई० में अपने जन्म-स्थान, श्रीनगर, गढ़वाल, में अलकनन्दा (गंगा की मुख्य शाखा) के तट पर हुआ।

[५]

मोलाराम का काव्य और उसमें उल्लिखित ऐतिहासिक घटनाएँ

मोलाराम ने अपने काव्य की रचना गोर्खा-गवर्नर हस्तिदल चौतरिया के अनुरोध करने पर की। यह काव्य अपने व अपने वंश की प्रशंसा अथवा अस्तित्व के लिये नहीं लिखा गया था। जो कुछ मोलाराम ने अपने पूर्वजों के गढ़वाल में आने के विषय में उन से सुना वही हस्तिदल से दोहा चौपाइयों में (तुकबन्दी द्वारा) कह दिया। इस काव्य में गढ़वाल के राजाओं का संक्षिप्त इतिहास है और उन के पराक्रम व गढ़वाल पर जो आक्रमण और गढ़वालियों ने अन्य देशों पर जो चढ़ाइयां कीं वह सब लिखी हैं। मोलाराम के काव्य की घटनाएँ इतिहास से मिलती हैं।

सुलैमान शिकोह जब (सन् १६५८ ई०) श्रीनगर (गढ़वाल) आए थे उस समय पृथिवीशाह गढ़वाल के राजा थे। उन का राज्यकाल सन् १६५४ ई० से १६७८ ई० तक है। यद्यपि उन के पुत्र, युवराज मेदिनीशाह राज्य सिंहासन पर सन् १६७८ ई० में बैठे थे और उन्हों ने सन् १७८४ तक राज्य किया, किन्तु मालूम होता है कि, युवराज मेदिनीशाह की, राज्य-शासन में, बहुत चलती थी। सुलैमान शिकोह को औरंगज़ेब के हवाले करना वास्तव में उन के ही षड्यंत्र का फल था। मोलाराम ने घटनाओं की तारीख़ व साल अपने काव्य में नहीं लिखा है।

प्रोफ़ेसर सरकार औरंगज़ेब के सब से बड़े इतिहास-लेखक माने जाते हैं। उन्हों ने अपने इतिहास के द्वितीय काण्ड के २२ वें अध्याय में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विस्तार-पूर्वक सुलैमान शिकोह के गढ़वाल के राजा के पास आने के विषय में लिखा है। सन् १६५८, मई मास में सुलैमान

सर यदुनाथ सरकार के अनुसार सुलैमान शिकोह का गढ़वाल में आगमन

शिकोह अपने पिता दारा शिकोह के दल में सम्मिलित होने के लिये अपनी सेना को लेकर लाहौर जाना चाहते थे। औरंगज़ेब की फ़ौज ने उन का पीछा किया। तब सुलैमान शिकोह गढ़वाल के राजा पृथिवीशाह[1] के राज्य में शरण लेने को उत्सुक हुए। राजा पृथिवीशाह स्वयं श्रीनगर से सुलैमान के स्वागत के लिये कुछ पड़ाव आगे रास्ते में आए और इस शर्त पर उन्हें अपना अतिथि बनाना स्वीकार किया कि वे केवल थोड़े से नौकर और अपने परिवार के लोगों को ही अपने साथ लावें; और अपनी सेना, घोड़े, हाथी सब वापिस भेज दें। क्योंकि पहाड़ की सड़क तंग थी। मुल्क ग़रीब होने के कारण खाने पीने की दिक़्क़त होती। एक दफ़े सुलैमान ने अपना इरादा बदल दिया। किन्तु फिर अपने दल को नगीने के आस पास छोड़ दिया। अपनी कई बेगमों को लोगों को दे दिला कर सिर्फ़ अपनी एक बेगम और कुछ और स्त्रियों, १७ नौकरों, व मुसाहिबों, और अपने सौतिया भाई (धाई के पुत्र) मुहम्मदशाह को साथ लेकर श्रीनगर पहुँचे। वहाँ पृथिवीशाह ने उन के लिए अपने पुराने महल की मरम्मत कराई और शाहज़ादे को वहीं रक्खा, उन की बड़ी ख़ातिर की। मासूम के आधार पर प्रोफ़ेसर सरकार लिखते हैं, "राजा ने दिल्ली के शाही ख़ान्दान के साथ रिश्ता जोड़ने की ग़रज से अपनी लड़की सुलैमान को ब्याह दी।" इस के विषय में मोलाराम कुछ नहीं लिखते हैं। किन्तु मोलाराम के यह लिखने से कि औरंगज़ेब ने

सुलेमान जब बन्द में डारे।
राम कृष्ण अल्लाह पुकारे॥

यह संकेत होता है कि सुलैमान शिकोह की हिन्दू धर्म पर श्रद्धा हो गई थी।

---

[1] पृथिवीशाह को पृथिविपतशाह भी कहते हैं। प्रोफ़ेसर सरकार उन को पृथिविसिंह कहते हैं और उन के पुत्र मेदिनीशाह को वे मेदिनीसिंह कहते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस का कारण क्या था। क्या सुलैमान हिन्दू बन गए थे! या हिन्दू राजा के साथ रिश्ता जोड़ने से यह परिवर्तन हुआ।

एक साल तक सुलैमान श्रीनगर में आराम से एकान्तवास में रहा। मासूम के कथनानुसार सुलैमान ने मुग़ल राज्य के दो चार गाँवों पर धावा किया किन्तु फिर ग़रीबी हालत में गढ़वाल में लौट आया। औरंगज़ेब ने गढ़वाल के राजा पृथिवीसिंह को डराया धमकाया कि यदि अपने राज्य को नष्ट नहीं करना चाहते हो तो सुलैमान को हमारे पास वापिस भेज दो। अन्त में २७ जुलाई १६५५ को औरंगज़ेब ने जम्मू के राजा राजरूप को सुलैमान को लेने के लिए भेजा। तब भी पृथिवीशाह ने अपने अतिथि सुलैमान को उस के ख़ून के प्यासे शत्रु (औरंगज़ेब) के हवाले नहीं किया। तब औरंगज़ेब ने गढ़राज्य के मन्त्री को कहा कि यदि तुम सुलैमान को हमारे हवाले करदो तो गढ़वाल का राज्य तुम्हें दे देगें। मन्त्री ने सुलैमान के खाने में ज़हर मिलवा दिया। सुलैमान को इस का पता लग गया। सुलैमान ने यह बात राजा से कही। राजा ने उस मन्त्रो का सिर कटवा दिया। तब औरंगज़ेब ने जैसिंह द्वारा कुटिल नीति का अवलम्बन किया, जैसिंह की कूटनीति व साम, दाम, दंड, भेद से भी पृथिवीशाह सुलैमान के साथ विश्वासघात करने को तैयार नहीं हुआ किन्तु युवराज मेदिनीशाह जो ज़्यादा दुनियादार था देहली के बादशाह से पारितोषिक पाने की लालच में आकर अतिथि-धर्म को भूल गया। मेदिनीशाह को अपने राज्य को खो बैठने का भय भी हुआ। क्योंकि औरंगजेब गढ़वाल के पड़ोसी राजाओं को गढ़वाल पर आक्रमण करने के लिए भड़काने लगा था। गढ़वाल राज्य के दूण (देहरादून) के इलाके पर औरंगज़ेब ने क़ब्ज़ा कर लिया था। अस्तु मेदिनीशाह ने पृथिवीशाह को भी सुलैमान को दे देने के लिए राज़ी कर लिया। १२ दिसम्बर १६६० को औरंगज़ेब ने जैसिंह को पहाड़ की तराई पर सुलैमान को पकड़ने के लिए भेजा। यह सुन कर सुलैमान बर्फ़ानी पहाड़ों को पार कर लदाख जाने के लिए निकल भागा। गढ़वाल के राजा के सिपाहियों ने उस का पीछा किया। इस लड़ाई में सुलैमान

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu. Trust. Funding by MoE-IKS

खुद ज़ख़्मी हुआ। उस का सौतिया भाई (धाई का लड़का) मारा गया। और कुछ साथी भी मारे गए। ता० २७ दिसम्बर १६६० को सुलैमान देश भेज दिया गया। वहाँ वह रामसिंह के हवाले कर दिया गया। २ जनवरी १६६१ को वह दिल्ली सलीमगढ़ किले में बन्द कर दिया गया। ता० १५ जनवरी को सुलैमान ग्वालियर के किले में कैद कर दिया गया। वहाँ "पुस्ता" (विष) के द्वारा धीरे धीरे मई के महीने में सुलैमान मरवा दिया गया।

पं० हरिकृष्ण रतूड़ी के गढ़वाल के इतिहास में सुलैमान शिकोह का गढ़वाल आगमन

पं० हरिकृष्ण रतूड़ी को टेहरी दरबार के इतिहास इत्यादि हस्तलिखित लेखों को देखने का अवकाश मिला है। उन का गढ़वाल का इतिहास प्रामाणिक है। उन्हों ने प्रोफ़ेसर सरकार के इतिहास को भी देखा है। और बर्नियर, हारडीक, विलियम्स इत्यादि अंग्रेज़ यात्रियों के लेखों को भी देखा है। पं० हरिकृष्ण मोला-राम व यदुनाथ सरकार के लेखों में जो थोड़ा भेद है उसी का ज़िक्र यहाँ किया जायगा। रतूड़ी जी सुलैमान का एक बार पहिले आना व पहिलो बार राजा का रास्ते में उन के स्वागत के लिए कई पड़ाव आगे जाने का ज़िक्र नहीं करते हैं। वे लिखते हैं कि सुलैमान अपनी स्त्री और कुछ और दास-दासियों और अपने दूधभाई (धाई के पुत्र) मुहम्मद को साथ लेकर कोटद्वारा के रास्ते श्रीनगर पहुँचा और राजा से मिला।[1] अपनी विपत्ति और श्रीनगर आने का सब कारण राजा से कहा। राजा सुलैमान से बड़ी इज़्ज़त और प्रेम से मिला। उस की इज़्ज़त के अनुकूल उस का सत्कार किया। उस को अपने यहाँ निर्भय रहने का वचन दिया और पुत्र के समान प्रेम से उस से बर्ताव करने लगा। एक अलग महल सुसज्जित करके उस के रहने को दिया। औरंगज़ेब ने जम्मू के राजा राजस्वरूप को शाही सेना का एक बड़ा सा भाग देकर गढ़वाल के

---

[1] 'गढ़वाल का इतिहास', पृष्ठ ३८४।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

राजा के पास भेजा कि लड़कर अथवा खुशामद से सुलैमान को ले लेवे। राजा पृथिवीशाह एक वर्ष तक उस सेना के साथ लड़ता रहा। राजस्वरूप के पास सेना और तोप भेजी गई। परन्तु गढ़वाल के पर्वतों में युद्ध करना उन के लिए टेढ़ी खीर थी। औरंगज़ेब जब लड़ाई से अपना अभीष्ट सिद्ध न कर सका तब वह एक चाल चला। उस ने राजा के मंत्री को लालच दिया...... एक दिन सुलैमान के भोजन में विष डलवा दिया।......राजा ने मन्त्री को तुरन्त मरवा डाला। इस के बाद औरंगज़ेब ने एक ओर तो मन्त्रि-मंडल और युवराज मेदिनीशाह को सुलैमान के विरुद्ध अपने पक्ष में कर लिया और दूसरी ओर सरमोर और कमाऊँ के पड़ोसी पहाड़ी राजा को भड़काया कि वे शाही ख़र्चे से पृथिवीशाह से युद्ध करें और उस के राज्य को अपने राज्य में बाँट लें। सरमोर की सेना एक दम गढ़वाल पर आक्रमण करती हुई माली देवलग्राम तक पहुँच गई जो श्रीनगर से ४५ मील पश्चिम को गंगा नदी के किनारे पर है और टेहरी से पश्चिम ओर चार मील पर है। गढ़वाल के राजा ने सरमोर की सेना से युद्ध करके उस को यमुना नदी के पार कर दिया। कमाऊँ के राजा की सेना का आक्रमण सीमा पर ही रोक दिया गया।......तब उस (औरंगज़ेब) ने सहारनपुर की ओर से शाही सेना भेज कर दूण पर आक्रमण किया......तब भी राजा ने कुछ परवाह नहीं की......तब उस ने जयसिंह के पुत्र कुमार रामसिंह को सुलैमान को लेने के लिए राजा के पास श्रीनगर भेजा।[1]

रामसिंह ने मंत्रि-मंडल व कुछ गढ़वाली थोकदार और मेदिनीशाह को अपने क़ाबू में कर लिया। कुमार रामसिंह और मेदिनीशाह के षड्यन्त्र की सूचना जब सुलैमान को मिली तो वह कुछ विश्वासी नौकरों को साथ ले कर तिब्बत को भाग जाने के इरादे से रात्रि में श्रीनगर से भाग चला। परन्तु पहाड़ों में मार्ग भूल गया। इधर उस की तलाश में जासूस लगे हुए थे। चट्टान में छिपा हुआ उस को एक ग्वाले ने देखा। उस ने राजकुमार को ख़बर दी।

---

[1] 'गढ़वाल का इतिहास', पृष्ठ ३८६-७।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

राजकुमार के आदमी उसे पकड़ ले गए और षड्यंत्रियों ने मिल कर राजा को सुलैमान के दे देने पर विवश किया। और अभागे सुलैमान को उस के राज्य-लोलुप निर्दयी चचा औरंगज़ेब के पास कुमार रामसिंह के साथ भेज दिया।[1]

[६]

सुलैमान शिकोह का गढ़वाल में आना—ऐतिहासिक घटना

सर यदुनाथ, पंडित हरिकृष्ण रतूड़ी और मोलाराम तीनों के लेखों से सुलैमान का गढ़वाल (श्रीनगर) आना पूरी पूरी तौर साबित है। ज़ाहिरा सुलैमान प्राणरक्षा के लिए गढ़वाल के राजा की शरण आया। यदुनाथ सरकार संकेत करते हैं कि सुलैमान का इरादा पहाड़ों के रास्ते अपने पिता दारा शिकोह के पास पहुँचने का था। उन्हों ने यह भी लिखा है कि सुलैमान ने गढ़वाल में आ जाने के बाद भी औरंगज़ेब के राज्य के कुछ (मुग़ल) गाँवों पर हमला किया। किन्तु गढ़वाल की भौगोलिक स्थिति के लिहाज़ से ज़ाहिर है कि सुलैमान कभी पहाड़ के रास्ते अपनी सेना लाहौर नहीं पहुँचा सकता था। न वह गढ़वाल से मुग़ल सम्राट् पर हमला ही कर सकता था। वह अपनी प्राणरक्षा व एकान्तवास के लिए ही गढ़वाल में आया होगा।

पं० हरिकृष्ण जी लिखते हैं कि "सुलैमान ने अपने किसी मुसलमानी त्योहार पर श्रीनगर में छिप कर गऊ की कुर्बानी दी थी" इस लिए शायद श्रीनगर के लोग उस के विरुद्ध हो गए हों। हमारी राय में यह मिथ्यावाद कृतघ्न मंत्रियों ने इरादतन सुलैमान के ख़िलाफ़ जनता को भड़काने के इरादे से किया। अतिथि और शरणागत को उसके शत्रु के हवाले कर देना नीच कर्म है। इस अपने निन्दनीय कर्म की सफ़ाई में मंत्रि-

सुलैमान के विरुद्ध मेदिनीशाह व मंत्रि-मंडल क्यों होगए थे?

[1] 'गढ़वाल का इतिहास', पृष्ठ ३८८।

५७

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मंडल व युवराज का सुलैमान पर यह दोष लगाना प्रतीत होता है। पृथिवीशाह तो अंत तक सुलैमान को औरंगज़ेब के हवाले करने के विरुद्ध थे। यदि सुलैमान ने ऐसा कुत्सित कर्म किया होता तो धर्मपरायण महाराज पृथिवीशाह भी उस के ख़िलाफ़ हो जाते। हमारी राय में मंत्रि-मंडल और युवराज मेदिनीशाह दुनियादार लोग थे। वे औरंगज़ेब से डर गए और लालच में भी आ गए। औरंगज़ेब गढ़वाल के राजा को काफ़ी तंग कर चुका था और लालची भी बता चुका था। उस ने दूण (देहरादून) का इलाक़ा जो अपने क़ब्जे में कर लिया था उसे गढ़वाल के राजा को वापिस देने का बचन दिया था। और सुलैमान को क़ैद कर लेने पर देहरादून का इलाक़ा वापिस दे भी दिया।

सुलैमान शिकोह वास्तव में कैसे औरंगज़ेब के पास पहुँचाया गया

तीनों लेखकों ने सुलैमान का औरंगज़ेब के पास पहुँचाया जाना बताया है। यह बात सिद्ध है कि सुलैमान औरंगज़ेब के पास अवश्य भेज दिया गया था। यदुनाथ सरकार सुलैमान का लदाख़ की तरफ़ भागना बताते हैं। लदाख़ तो काश्मीर के उस तरफ गढ़वाल से पहाड़ के रास्ते से भी २०० मील की दूरी पर है। मुमकिन है उन का अभिप्राय तिब्बत से हो। तिब्बत गढ़वाल के उत्तरी भाग से मिला है। किंतु तिब्बत की सीमा श्रीनगर से १०५ मील है। पं० हरिकृष्ण लिखते हैं कि सुलैमान तिब्बत जाने के इरादे से रात को भाग निकला और चट्टानों में छिपा हुआ एक ग्वाले को मिला। यह भी ग़लत मालूम होता है। श्रीनगर से तिब्बत की सीमा के लिए कम से कम बद्रीनाथ तक छोटा मोटा रास्ता गंगा (अलकनंदा) के किनारे किनारे तब भी मौजूद था। पहाड़ों में मार्ग भूलने का क़िस्सा ग़लत मालूम होता है। एक शाहज़ादा ऐसी ग़लती न करता कि इस तरह पहाड़ों पर रात को भाग कर जाना चाहता। अस्तु लदाख़ व तिब्बत की तरफ़ जाने का क़िस्सा ग़लत है। यह दंत-कथा मंत्रि-मंडल की गाथा मालूम होती है।

यह बात सही और स्वाभाविक है कि औरंगज़ेब ने सुलैमान को पकड़ कर मँगवाने की बड़ी कोशिश की। सुलैमान ही असल में दारा के बाद

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
...NA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 2966

वास्तव में कैसे सुलैमान औरंगज़ेब के हाथ आया

गद्दी का मालिक था। औरंगज़ेब दारा से छोटा था। इस लिए सुलैमान को अपने हाथ करना उसका मुख्य उद्देश्य था। अगर औरंगज़ेब से कोई यह कह भी देता कि सुलैमान मार दिया गया है तब भी वह यक़ीन न करता, जब तक कि सुलैमान के सर को न देख लेता। सुलैमान को अपने हाथ में करने का कोई भी उपाय औरंगज़ेब ने नहीं छोड़ा होगा। औरंगज़ेब ने गढ़वाल पर ख़ुद अपनी सेना व सरमोर व कमाऊँ के राजाओं से चढ़ाई करवाई। मेदिनीशाह व मंत्रि-मंडल ने जैसा कि मोलाराम कहते हैं सुलैमान को सेना-नायक बना कर गढ़वाली सैनिकों के साथ अवश्य इस वहाने से भेजा होगा कि औरंगज़ेब की सेना से लड़ कर तुम्हें राज्य दिलवावेंगे। गढ़वाली सिपाहियों की वीरता सुलैमान देख चुके होंगे। उन्हों ने सरमोर व कमाऊँ की फौज़ को मार भगाया था। औरंगज़ेब की सेना भी आगे नहीं बढ़ पाई थी। इस लिये गढ़वाली सिपाहियों के बल दिल्ली के तख्त को प्राप्त करने की इच्छा सुलैमान में होनी स्वाभाविक थी। और इस तरह रण-क्षेत्र में होने से पकड़ा जाना नितांत स्वाभाविक मालूम होता था।

यदुनाथ सरकार ने मासूम के आधार पर लिखा है कि पृथिवीशाह ने अपनी कन्या सुलैमान को ब्याह दी थी। इस को पंडित हरिकृष्ण बिलकुल असत्य बात बताते हैं और लिखते हैं कि "इस पुस्तक के अतिरिक्त अन्य किसी इतिहास में ऐसा नहीं लिखा गया है।" मोलाराम ने भी इस का जिक्र नहीं किया। गढ़वाल के राजा बड़े कट्टर हिंदू थे। यहाँ की प्रजा भी इस संबंध को पसंद न करती इस लिए इस प्रकार का संबंध असाधारण और अस्वाभाविक प्रतीत होता है, किंतु असंभव नहीं।

सुलैमान को गढ़वाल के राजा का अपनी कन्या का देना

पुराणों व महाभारत के अनुसार भारतवर्ष के राजाओं का उत्तर व पश्चिम के अन्य अहिंदू देशों के राजाओं से विवाह-संबंध था। राजा लोग राज-वंश की खोज करते थे न कि जाति व धर्म को। उसी प्रथा के अनु-

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc. No. ....
CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सार बड़े बड़े राजपूत राज-वंश मुसलमान बादशाहों से विवाह संबंध कर चुके थे। अम्बर के राजा विहारीमल ने सन् १५६२ ई० में अपनी जेष्ठ कन्या का विवाह अकबर के साथ कर के राजपूत राजाओं के लिए प्राचीन समय की प्रथा फिर से आरम्भ कर दी थी। अस्तु प्रो० यदुनाथ सरकार का यह लिखना कि गढ़-नरेश की एक कन्या का विवाह दिल्ली के एक युवराज से हो गया था असंभव व नितांत असत्य बात नहीं मालूम देती। पृथिवीशाह ने सुलैमान से पुत्र का सा बर्ताव किया। पृथिवीशाह का सुलैमान से बड़ा प्रेम हो गया था। मेदिनीशाह सुलैमान के दरबारी हरदास से फ़ारसी पढ़ने लगे थे। मेदिनीशाह पर मुसलमानी सभ्यता का बहुत प्रभाव पड़ चुका था। पृथिवीशाह ने डेढ़ वर्ष तक औरंगज़ेब की शक्ति और अपने पड़ोसी राजाओं के आक्रमण का सामना करते हुए सुलैमान को औरंगज़ेब के हवाले नहीं किया। इस से यह अवश्य संकेत होता है कि सुलैमान और पृथिवीशाह के बीच कोई घना संबंध हो गया था। मासूम (जिस के आधार पर यदुनाथ सरकार ने लिखा है) को यह लिखने की क्या आवश्यकता थी कि गढ़वाल की राज-कन्या का विवाह शाहज़ादे, जिसे कि औरंगज़ेब की मृत्यु पर दिल्ली अथवा उत्तरीय भारतवर्ष के सिंहासन पर बैठना था, से हुआ। मुग़लों के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। मासूम को झूठी बात लिखने की क्या आवश्यकता थी?

(अपूर्ण)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उमर ख़ैयाम

[लेखक—श्रीयुत इक़बाल वर्मा, 'सेहर']

उमर ख़ैयाम के जीवन के संबंध में हमारी जानकारी बहुत थोड़ी है। वह अपनी जगत्प्रसिद्ध रुबाइयों का रचयिता था—इस के या अन्य कुछ बातों के अतिरिक्त उस महाकवि के जीवन-काल की अन्य घटनाओं का कुछ भी ठीक और सिलसिलेवार पता नहीं चलता। उस का पूरा नाम ग़यासुद्दीन अबुल-फ़तेह उमर था और उस के पिता का नाम इबराहीम। उस ने अपना उपनाम "ख़ैयाम" रक्खा। कारण, वह उस के ख़ीमा बनाने के पैत्रिक व्यवसाय का परिचायक था। यद्यपि वह अपने व्यवसाय का संचालन बहुत दिनों तक न कर सका, पर उस का उपनाम तो साहित्य-संसार में चिरजीवी हो कर ही रहा। ऐसे उपनाम में कोई नवीनता न थी। फ़ारस के कतिपय कवियों ने व्यवसाय-सूचक उपनाम ग्रहण किए थे। उदाहरण-स्वरूप वीररस के आचार्य और जगत्प्रसिद्ध फ़ारसी पुस्तक "शाहनामा" के रचयिता "फ़िरदौसी" का नाम लिया जा सकता है। यह उपनाम इस कारण था कि "फ़िरदौसी" के पिता का पेशा ज़मींदारी और बाग़बानी था।

हमारे चरितनायक का जन्म-संवत् निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो सका। हाँ, अनुमानतः वह १०२३ ई० कहा जा सकता है। जन्मस्थान ख़ुरासान का मशहूर शहर नीशापुर कहा जाता है, जो वर्तमान नीशापुर की पूर्व ओर बसा हुआ था। उस के भग्नावशेष अब भी उस के अतीत वैभव का पता देते हैं। यही नीशापुर न केवल ख़ैयाम, प्रत्युत अनेक महान आचार्यों, उद्भट विद्वानों और ख्यातनामा कवियों का जन्मस्थान एवं निवासस्थान था। वह विविध विद्याओं का प्रसिद्ध केंद्र भी था और वहाँ कई बड़े बड़े विद्यालय भी खुले हुए

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

थे, जिन से ज्ञान की अविरल धाराएँ प्रवाहित हो कर तृषित जनता की प्यास बुझाने का प्रयास कर रही थीं।

उन्हीं विद्यालयों में से एक में उमर ख़ैयाम भी लगभग १६ वर्ष की आयु का हो कर, पढ़ने के लिए प्रविष्ट हुआ। अबुल क़ासिम और हसन बिन सब्बाह उस के समकक्ष थे। उन के गुरु इमाम मुवफ़्फ़क़ के विषय में यह बात प्रसिद्ध थी कि उन के शिष्य साधारणतया सफलजीवी हुआ करते थे। इसी विश्वास पर इन तीनों छात्रों ने आपस में समझौता किया कि उन में से जिस किसी को भी अपने सांसारिक जीवन में किसी उच्च पद पर प्रतिष्ठित होने का सौभाग्य प्राप्त हो वह विद्यालय की इस समकक्षता को ध्यान में रखते हुए उस समृद्धि की दशा में भी अपने शेष दो साथियों को अवश्य ही अपना समकक्ष बनाए। बात पक्की हो गई और तीनों उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में विद्योपार्जन करने लगे।

सर्वप्रथम अबुल क़ासिम पढ़ाई से निवृत्त हो नौकरी की तलाश में इसफ़हान गया, जो सुलतान अलम अरसलान सलजूकी की राजधानी थी। वहाँ उस को कोई जगह मिल गई। पर आदमी था ईमानदार, मेहनती, शरीफ़ और ख़ुशक़िस्मत, अतः जल्द जल्द तरक्क़ी पाता गया—यहाँ तक कि वह सुलतान का प्रधान मंत्री बन गया और निज़ामुल्-मुल्क की उपाधि से विभूषित हुआ। शनैः शनैः उस के दोनों पुराने साथी भी वचनपूर्ति की आशा में उस के पास पहुँचे। निज़ामुल्-मुल्क ने उन के साथ साथियों का सा ही बर्ताव कर उन की बड़ी आवभगत की और अपना वादा पूरा करने पर तैयार हुआ। हसन को तो उस ने उसी की इच्छानुसार किसी उच्च सरकारी पद पर नियुक्त करा दिया जिस पर वह अपनी स्वाभाविक नीचता के कारण अंत तक न टिक सका। परंतु ख़ैयाम तो था प्रकृत कवि, उसे सांसारिक वैभव की कब परवा हो सकती थी? उस ने केवल यही इच्छा प्रकट की कि "मुझे गुज़र बसर के लिए नीशापुर में ही कोई जागीर मिल जाय कि निश्चिंत हो कर एकांत विद्या-व्यसन में समय बिता सकूँ।" तदनुसार ख़ैयाम को १२०० तूमान (३००० रुपए) सालाना की जागीर मिल गई और नीशापुर में ही, उस ने अपने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पूर्व निश्चय के अनुसार अपनी सारी आयु पुस्तकावलोकन और काव्य-प्रणयन में समाप्त कर दी। फिर वह आयु भी आजकल की कोई अल्पकालीन आयु न थी, प्रत्युत पूरे १०९ वर्ष की। यद्यपि आज उस की रुबाइयों के सिवा और कुछ भी उपलब्ध नहीं, पर सोचने की बात है कि उस ने अपने दीर्घकालीन अध्ययन एवं अध्यवसाय की बदौलत अपने अभ्यस्त हाथों से साहित्योद्यान की कितनी क्यारियों को कितने प्रकार के पुष्पों से न भर दिया होगा। कदाचित् प्रत्युपकार-स्वरूप ही नीशापुर में उस की समाधि पर प्रकृति की ओर से अब तक बराबर फूल बरसाये जा रहे हैं। यह कवि की भविष्य-वाणी थी जो आज भी सच उतर रही है।[1]

यों तो ख़ैयाम भाषा-संबंधी साहित्य के अतिरिक्त दर्शन, इतिहास, गणित, ज्योतिष, खगोल इत्यादि कई विद्याओं का ज्ञाता था। अपने इसलामी धर्म-ग्रंथों से भी पूर्णतः अभिज्ञ था। पर यह सब होते हुए भी उस की वर्तमान विश्वव्यापी ख्याति की निर्माणकर्त्री तो केवल उस की रुबाइयाँ ही हैं जो फ़ारसी क्या, संसार के किसी भी साहित्य में अपना जवाब नहीं रखतीं। ख़ैयाम कवि का हृदय रखता था और कवि की भावुकता भी। वह अपने सूक्ष्म विचारों को सूक्ष्म रीति से ही प्रगट करना चाहता था जिस के लिए रुबाइयाँ बहुत मौज़ूँ हैं। उस की एक एक रुबाई एक एक सूत्र है जिस में काव्य है, कल्पना है, रस है और रहस्य है। वह अपनी थोड़ी बात को थोड़े में कह देता है और फिर वह अपने पाठकों की रुचि पर छोड़ देता है कि चाहे वे उसे थोड़े में समझ लें या बहुत में। उभय प्रयोजनों की दृष्टि से ही, कुशल कवि ने अपने कथन में बेहद सफ़ाई लाने की कोशिश की है। फ़ारसी भाषा के नैसर्गिक माधुर्य ने तो मानों इन रुबाइयों के निमित्त "सोने पर सुहागे" का काम किया है। अतिरिक्त आकर्षण का यह भी एक कारण है।

---

१ कहते हैं कि उमर ख़ैयाम ने बलख़ में किसी अवसर पर यह फ़र्माया था कि मेरी क़ब्र ऐसे स्थान पर होगी जहाँ कम से कम साल में दो बार वृक्षों द्वारा पुष्प वर्षा हुआ करेगी—ले०।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

परंतु जो बात हमें सब से अधिक आकृष्ट करती है वह है ख़ैयाम के अपरिमित मदिरा-प्रेम का प्रस्फुटन। कदाचित् ही कोई ऐसा विषय हो जो उस की रुबाइयों में समाविष्ट न हो। ईश्वर, धर्म, नीति, जीवन, मरण, पृथिवी, आकाश, स्वर्ग, नरक, सुख, दुःख, अमीरी-ग़रीबी, दोस्ती-दुश्मनी, मदिरा, प्रेमिका, इत्यादि, इत्यादि सभी पर कवि ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। पर मदिरा की चर्चा से उस की तृप्ति नहीं होती। तद्विषयक रुबाइयों की न केवल संख्या ही अधिकतम है, प्रत्युत उस का भाव इतना व्यापक है कि कोई भी विषय उस से अछूता नहीं बचा। उदाहरणार्थ हम यहाँ केवल ऐसी तीन रुबाइयाँ उद्धृत करना पर्याप्त समझते हैं, जिन में विषयों की विचित्रता कवि को अपना रंग दिखलाने से बाज़ नहीं रख सकी—

मेरे दुःख भरे हुए सीने पर दया कर। मेरे बंदी जान व दिल पर दया कर। मेरे पग जो शराबख़ाने की तरफ़ जा रहे हैं, उन पर भी करुणा कर और मेरे उन हाथों पर भी करुणा कर जो शराब का प्याला लिए हुए हैं।

यह जो कुछ लौकिक रचना है सभी कल्पना और चित्र है। वह विज्ञ नहीं जो इस स्थिति को नहीं जानता। बैठ, शराब का प्याला पी और प्रसन्न रह। यह जो गूढ़ चिंता है इस से निवृत्त हो जा।

यह दुनिया न तो फिरने की जगह है, न बैठने की। इस में जो बुद्धिमान हैं वही खोटे हैं और जो मस्त हैं खरे बने हुए हैं। जो दुःख की अग्नि है उस पर सुरारूपी जल डाल—इस से पहिले कि तू धूल में, अपनी मुट्ठी में हवा भरे हुए, मिल जाय।[1]

بر سینهٔ غم پذیر من رحمت کن   بر جان و دل اسیر من رحمت کن[1]
بر پاے خرابات رو من بخشایے   بر دست پیاله گیر من رحمت کن
این صورت کون جمله نقشے ست و خیال   عارف نبود هر که نداند این حال
بنشین قدح باده بنوش و خوش باش   فارغ شو ازین نقش خیالات محال
دنیا نه مقام گشت و نه جاے نشست   فرزانه درو خراب و ادنیٰ تر مست
بر آتش غم زیاده آبے میزن   زان پیش که در خاک روی باد بدست

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बात यह है कि कवि अपने सहृदय पाठकों को, उस मस्ती से महरूम नहीं रखना चाहता जिस में उसे स्वयं मज़ा आता है। फिर मज़ा भी कैसा ? फ़र्ज़ी नहीं, बल्कि जो ठोस वस्तु से मिला करता है। कोई कुछ कहे परंतु हम यह मानने को तैयार नहीं कि ख़ैयाम शराब नहीं पीता था। हम यह नहीं कहते कि उस में ईश-प्रेम की न्यूनता थी या उस की बहुत सी रुबाइयों से ईश-प्रेम संबंधी मदिरा का अर्थ नहीं निकाला जा सकता। परंतु कुछ रुबाइयाँ इतनी स्पष्ट हैं कि उन का कोई दूसरा अर्थ हो नहीं सकता।

फ़्रेडरिक रोज़ेन कृत 'रुबाइयात उमर ख़ैयाम' की भूमिका में लिखा है कि बर्लिन की स्टेट लाइब्रेरी में उमर ख़ैयाम कृत 'नौरोज़ नामा' नामी फ़ारसी की गद्य-पुस्तक है।

इस में लिखा है कि—

"सुक़रात, बूअली सीना, मुहम्मद ज़करिया जैसे नामी हकीम इस पर सहमत हैं कि मानवी शरीर के लिये कोई चीज़ इतनी मुफ़ीद नहीं जितनी शराब—ख़ास कर वह शराब जो अंगूर से खींची गई हो। ग़म दूर हो कर दिल ख़ुशी से भर जाता है। शरीर में शक्ति और मुख पर लालिमा आती है। बुद्धि में निखार और स्मरण-शक्ति में बल पैदा होता है। कृपण उदार हो जाता है, और कायर वीर। विद्वानों के कथनानुसार शुद्ध सुरा पीने से मानवी प्रकृति के असली जौहर खुल जाते हैं········।"

हमारा यह मतलब नहीं कि ख़ैयाम बेदीन था। लोग तो उसे प्रायः बेदीन ही कहा करते थे, इस लिए कि वह स्वच्छन्द था और महान दार्शनिक था पर वह ऐसा था नहीं। कवि की कविताएँ प्रायः उस के आंतरिक विचारों की द्योतक हुआ करती हैं। उन्हीं से इस बात का पता चलता है कि वह मुसलमान था। लेकिन उस में किसी प्रकार का कट्टरपन न था। इस रुबाई से उस की अन्य मतों के प्रति सहिष्णुता प्रकट होती है—

मंदिर हो या काबा, दोनों पूजा के घर हैं। शंख का नाद पूजा का संगीत है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मस्जिद हो या गिरजाघर, तस्बीह हो या सूली का चिह्न, ईश्वर साक्षी है कि सभी पूजा की निशानियाँ हैं।[1]

उस की स्वाभाविक विशालहृदयता इस कारण और बढ़ गई थी कि उस का संबंध सूफ़ी सम्प्रदाय से था जिसे हम अपने शब्दों में अद्वैतवाद कह सकते हैं। प्रमाण उस की यह रुबाई है—

कभी तो परदे में छिप कर किसी को मुख नहीं दिखलाता और कभी तू सृष्टि के इन रूपों में प्रकट हो जाता है। यह अपना प्रकाश तू अपने को ही दिखाता है। अर्थात् तू स्वयं प्रकट होने वाला और स्वयं दर्शक है।[2]

और सब से बड़ा प्रमाण उस की वह मस्ती है जिस पर सूफ़ी सम्प्रदाय का एकाधिकार ही समझना चाहिए और जो उस के शब्द शब्द से टपकी पड़ती है। उस के विचार कितने विशद एवं विशुद्ध थे, इस का पता उस की नीति-विषयक रुबाइयों से लगेगा जिन की संख्या बहुत अधिक है।

उदाहरण के लिये केवल दो रुबाइयाँ दी जाती हैं—

ऐ दिल ज़माने से उपकारों की आशा न कर। पदार्थों के लिये तू आस्मान की गर्दिश का भरोसा न कर। तू दवा चाहता है और तेरा दर्द बढ़ जाता है। जो दर्द है उसे सहन कर और किसी से दवा न माँग।

अगर तेरे पास घोड़े, अस्त्र और जवाहिरात हैं तो इस दस रोज़ की दौलत पर घमंड न कर। आस्मान के क्रोध से अपनी जान कोई न बचा सका। आज उस ने घड़ा तोड़ डाला; कल प्याला तोड़ डालेगा।[3]

بتخانه و کعبه خانهٔ بندگي است ناقوس زدن ترانهٔ بندگي است[1]
محراب وکلیساے وتسبیح وصلیب حقا که همه نشانهٔ بندگي است

گه گشته نهان روے بکس نه نمائی گه در صور کون و مکان پیدائی[2]
این جلوهگري به خویشتن بنمائی خود عین عیاني و خودی بینائی

اے دل ز زمانه رسم احسان مطلب وز گردش دوران سروسامان مطلب[3]
درمان طلبی درد تو افزون گردد بادرد بساز وهیچ درمان مطلب

گر اسپ و عراق است دگر فیروزه مغرور مشو به دولت ده روزه
از قهر فلک هیچ کسے جان نبرد امروز سبو شکست و فرداد کوزه

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऐसी भी अनेक रुबाइयाँ हैं जिन से यह विदित होता है कि ख़ैयाम 'पुनर्जन्म' के विषय में भी विचार कर रहा था। वह किस निश्चय पर पहुँचा, हमें यह पता नहीं। इतना अवश्य मालूम होता है कि वह उस दशा में है जिसे हम संदिग्धता की दशा कह सकते हैं। दो रुबाइयाँ उस की इस द्विविध दशा को दिखाती हैं—

वह लोग जो कि आकाश के रहस्यों के ज्ञाता हैं और इस संसार को अलंकृत करते हैं—वह आते हैं और चले जाते हैं और फिर इस दुनिया में आते हैं। आस्मान के दामन में और पृथ्वी के नीचे एक जनता है जिसे ईश्वर से शांति प्राप्त होती है।

सवेरे का समय है। ऐ! आनवान वाले उठ! धीरे धीरे मदिरा पी और चंग बजा। इसलिये कि जो लोग यहाँ हैं वह अधिक समय तक यहाँ न रहेंगे और जो चले गए हैं फिर यहाँ न आएंगे।[1]

एक शब्द में हम ख़ैयाम के धर्म को 'प्रेम-धर्म' कह सकते हैं। उस प्रेम की केवल आध्यात्मिक अभिव्यक्ति नहीं होती प्रत्युत भौतिकता से भी उस का घनिष्ट संबंध है। दोनों ही प्रवृत्तियाँ पराकाष्ठा तक उन्नत होती हैं। परिणाम-स्वरूप प्रेमी का प्रेम एक ओर तो इश्वर को अपना लक्ष्य बनाता है और दूसरी ओर वह साधारण मनुष्यों से गुज़र कर प्रेमिका के सौन्दर्य से सम्बद्ध हो जाता है। ख़ैयाम सिर्फ़ शराब की मुहब्बत का दम नहीं भरता, वह माशूक़ की भी पूजा करता है। उस की वे रुबाइयाँ भी पढ़ने के योग्य हैं।

ख़ैयाम में एक ख़ूबी और भी है जो उस की रुबाइयों में प्रायः सर्वत्र देखी जाती है। वह एक ही बात को बार बार कहता है परन्तु इस रीति

آنہا کہ فلک دیدہ و دہر آرایند   آیند و روند و باز با دہر ایند[1]
در دامن آسمان و در زیر زمین   خلقے است کہ با خدایے دہر آسایند
وقت سحراست خیز اے مایہ ناز   نرمک نرمک بادہ خور و چنگ نواز
آنہا کہ بجایند نیایند دراز   و آنہا کہ شدند کس نمي آید باز

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पर कि वह पुनरुक्ति सी दिखती हुई भी उस के कथन को पुष्ट करे और नीरस होने के बजाय अधिकाधिक प्रभावोत्पादक हो।

ख़ैयाम की कुल रुबाइयों की ठीक तादाद का अब तक पता नहीं; वह कमोबेश एक हज़ार बतलाई जाती हैं। उस की रुबाइयों में यदा-कदा अन्य फ़ारसी कवियों की रुबाइयाँ भी शामिल हो गई हैं। कदाचित् इस कारण कि रुबाइयों का संग्रह कवि की मृत्यु के पश्चात् किया गया। जैसा कि बहुधा होता है, कवि की कीर्ति भी उस की मृत्यु के पश्चात् ही फैली और सारे संसार में फैल गई। उसे पश्चिमी जगत में फैलाने का श्रेय फ़िट्ज़जेरल्ड नामी अंगरेज़ कवि को प्राप्त है जिस ने सर्व-प्रथम ख़ैयाम की ७५ रुबाइयों का अँगरेज़ी कविता में अनुवाद किया था। यह अनुवाद सन् १८५८ ई० में केवल २०० प्रतियों के संस्करण द्वारा प्रकाशित हुआ था जिन पर अनुवादक का नाम भी न था। उस समय पुस्तक को किसी ने न पूछा। उस का मूल्य ५ शिलिंग से घटा कर १ पेनी कर दिया गया, फिर भी बात ज्यों की त्यों रही। शनैः शनैः पुस्तक गुणग्राहियों के हाथ पड़ी और फिर उस की क़द्र बढ़ चली। जहाँ पहले १०-५ वर्षों में नवीन संस्करण की नौबत आती थी वहाँ सन् १८८९ ई० के बाद यह हालत हुई कि पुस्तक वर्ष में कई-कई बार छपने लगी और ख़ैयाम के साथ फ़िट्ज़जेरल्ड का नाम भी साहित्य-संसार में अमर हो गया। अंगरेज़ी में और अनुवाद भी हुए परंतु सर्व-प्रियता का सेहरा फ़िट्ज़जेरल्ड ही के सिर रहा। उस की भाषा इतनी सिजिल समझी गई कि अन्य कवियों ने भी उस का अनुकरण किया। और सच पूछिए तो भाषा-सौंदर्य के कारण ही उसे यह शुहरत नसीब हुई, अन्यथा न तो उस ने अपने अनुवाद में मूल रुबाइयों का ही ख़्याल रक्खा है और न उस ने अनूदित रुबाइयों का चयन ही अच्छा किया है। हाँ, फ़िट्ज़जेरल्ड ही ने अनुवाद में ग़लती की हो, सो बात नहीं है; बल्कि जितने भी अनुवाद अँगरेज़ी फ़रांसीसी, जर्मन इत्यादि भाषाओं में छपे हैं उन सभों में यही दोष कमोबेश पाया जाता है—भले ही उन में रुबाइयों की संख्या अधिक हो। मगर तारीफ़ की बात तो यह है कि ऐसा होते हुए भी ख़ैयाम अपनी मनोमुग्धकारी मौलिकता की बदौलत सभी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पाठकों से बरबस अपनी प्रशंसा करा लेता है और साथ ही उस प्रशंसा का कुछ अंश अपने अनुवादकों को भी दे देता है। फ़िट्ज़जेरल्ड को तो इतना बड़ा अंश मिला है कि उस का प्रभाव समूची अँगरेज़ जाति पर भी पड़े बिना नहीं रहा। लंदन में तो उमर ख़ैयाम के नाम पर क्लब तक क़ायम हैं जिन के सदस्य साप्ताहिक अधिवेशनों में ख़ैयाम की रुबाइयों का पाठ करते हैं। यह है एक साहित्य प्रेमी जाति के साहित्य प्रेम का बढ़िया नमूना !

सभ्य संसार की बीसियों भाषाओं में इन रुबाइयों के अनुवाद हो चुके हैं और यही क्रम अब भी बराबर जारी है। हमारे देश की कई भाषाओं में अनुवाद हुए और हो रहे हैं। रुबाइयाँ आज क्यों इतनी सर्वप्रिय हो रही हैं, इस का कारण उन की वह विशेष रचना-शैली है जिसे आधुनिक संसार अपनाता चला जा रहा है। अधिक स्पष्ट शब्दों में, उन में उस रहस्यवाद की पुट का होना है जिसे संसार की वर्तमान एवं आगामी कविता का लक्ष्य समझना चाहिए और जिस लक्ष्य की प्राप्ति पर ही कविता अपनी सार्थकता प्रकट करने—अपने को चित्रित करने—में पूर्णतः सफल हो सकेगी।

———

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संपादकीय

इस अंक के साथ हमारी पत्रिका का दूसरा वर्ष समाप्त होता है। इतना थोड़ा समय हमारे प्रयास की सफलता का निर्णय करने के लिए यद्यपि पर्याप्त नहीं है तथापि हम यह कह सकते हैं कि अपने सहयोगियों के बीच 'हिंदुस्तानी' ने अपने लिए एक आदर का स्थान प्राप्त कर लिया है। हमें हिंदी के विभिन्न विद्वानों से सदा प्रोत्साहन मिला है और हम इस कृपा के लिए उन के आभारी हैं। हम आशा करते हैं कि भविष्य में भी वह इसी प्रकार कृपा बनाए रहेंगे।

प्रचार की दृष्टि से, हम स्वीकार करते हैं, कि पत्रिका उतनी सफल नहीं रही है। हमें आशा है कि आगामी वर्ष में हमारी यह शिकायत भी दूर हो जायगी। अपनी ओर से हम ने यथाशक्य इसे अपने प्रांत की एक बड़ी साहित्यिक संस्था की प्रतिष्ठा के उपयुक्त ही बनाने का प्रयत्न किया है। अगले वर्ष के लिए हमारे पास कई नए विचार हैं, और हम सब प्रकार से पत्रिका की उपयोगिता के बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे।

❧ ❧ ❧

यह वर्ष हमारे वयोवृद्ध साहित्यिकों के लिए बहुत बुरा सिद्ध हुआ है। अभी पिछले अंक में हम पंडित पद्मसिंह शर्मा, श्रीयुत शिवनंदन सहाय, गोस्वामी किशोरीलाल तथा श्रीयुत जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की मृत्यु पर अपनी शोक-श्रद्धांजलि समर्पित कर चुके हैं। इस बार अत्यंत शोक के साथ हमें पंडित नाथूराम शंकर शर्मा जी की मृत्यु का स्मरण करना पड़ता है। यह दुःखद घटना विगत २१ अगस्त की है। आप हिंदी के खड़ी बोली के प्रतिष्ठित कवियों में बहुत ऊँचा स्थान रखते थे और 'कविता-कामिनी-कांत' कर के प्रसिद्ध थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पंडित नाथूराम शंकर शर्मा का जन्म संवत् १९१६ वि० की चैत्र शुक्ला पंचमी को हरदुआ गंज, जिला अलीगढ़ में हुआ था। आप गौड़ ब्राह्मण थे। आप के पिता का नाम पंडित रूपराम जी शर्मा था।

बाल्यावस्था से ही स्वर्गीय पंडित जी ने कविता करने में प्रतिभा प्रदर्शित की। कहा जाता है कि आप अपने पाठों को कविता का रूप दे कर, उन्हें याद कर लिया करते थे। सं० १९३७ में कानपुर में नहर-विभाग में आपने नौकरी कर ली थी और वहीं पर आप को घनिष्टता स्वर्गीय पंडित प्रतापनारायण मिश्र से हो गई थी। आप उस समय मिश्र जी के 'ब्राह्मण' पत्र के संपादन में सहायता भी करने लगे थे। कानपुर में ही आप का स्वामी दयानंद जी से साक्षात्कार हुआ था। उन के व्याख्यानों से नाथूराम जी बहुत प्रभावित हुए। उन्हें गुरु स्वीकार कर नाथूराम जी आर्य-समाज के सदस्य हो गए थे। और आजन्म उसी मत का समर्थन करते रहे। आप ने आर्य-समाज की बड़ी सेवा की है। आप का इस समाज के प्रति प्रेम आप की कविताओं में भी बराबर लक्षित होता है।

लगभग ६ साल तक नौकरी करने के उपरांत आप का जी उस में न लगा। आप अपने जन्म-स्थान में लौट आए और चिकित्सक का कार्य करने लगे। इस कार्य में भी आपने ख्याति लाभ की। आयुर्वेद में आप ने बड़ा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

आप कई भाषाएँ जानते थे। संस्कृत और हिंदी के अतिरिक्त बँगला और फ़ारसी में भी आप की गति थी। उर्दू में भी आप ने सफल कविता की है। आप के प्रकाशित ग्रंथों में 'शंकर-सरोज', 'अनुराग रत्न', 'वायस-विजय', और 'गर्भरंडारहस्य' विशेष प्रसिद्ध हैं। आप बड़े विनोद-प्रिय और निर्भीक व्यक्ति थे।

इधर कई वर्षों से आप पर गृहस्थी-संबंधी अनेकों आपत्तियाँ आईं और आप कई निकट प्रिय-जनों के वियोग से दुखी रहते थे।

हम आप के पुत्र पंडित हरिशंकर शर्मा जी से उन के दुःख में समवेदना प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि अपने प्रतिष्ठित पिता की सुकृति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थायी करने के निमित्त उन की सभी प्रकाशित और अप्रकाशित रचनाओं को एकत्र कर के प्रकाशित करने का उद्योग करेंगे। ऐसे संग्रह-ग्रंथ से हमारी भाषा की प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से द्विवेदी-अभिनंदन ग्रंथ के प्रकाशित होने की जो योजना हो रही है उस के संबंध में सभा के प्रधान मंत्री श्री राय कृष्णदास जी ने नीचे लिखी सूचना भेजी है। हम इस सूचना को सहर्ष प्रकाशित करते हुए सभी हिंदी-सेवियों से यह आशा करते हैं कि इस योजना को सफल बनाने में पूर्ण रूप से सहयोग प्रदान करेंगे और अपने एक ऐसे वयोवृद्ध साहित्य-सेवी का आदर करेंगे जिस की कृतियों की आधुनिक हिंदी पर पग पग पर छाप है—

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के लिए जो कुछ किया है, वह लोक-विश्रुत है। वे एक व्यक्ति नहीं, एक संस्था हैं। उन के द्वारा आधुनिक हिन्दी की गद्य-पद्य शैली का यथोचित निर्माण एवं निर्धारण हुआ है। हिन्दी के इस शैली-निर्माण पर द्विवेदीजी महाराज की अमिट छाप है।

आगामी वैशाख शुक्ल ४ को वे सत्तरवें वर्ष में पदार्पण करेंगे। हिन्दी-संसार का यह कर्तव्य है कि उस अवसर पर ऐसे संमाननीय आचार्य का समुचित समादर करे। अतएव काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने निश्चय किया है कि उस समय एक विराट उत्सव एवं समारोह कर के उन्हें एक अभिनन्दन-ग्रन्थ अर्पित किया जाए। यह ग्रन्थ कला एवं साहित्य का अद्वितीय निदर्शन होगा। इस में भारत के श्रेष्ठ चित्रकारों के उत्तमोत्तम चित्र रहेंगे; एवं इस के साहित्यिक अंश में हिन्दी के सभी प्रमुख तथा यशस्वी साहित्यिकों की रचनायें तो रहेंगी ही—देश तथा विदेश की अन्यान्य भाषाओं के प्रमुख विद्वानों के लेखादि प्राप्त करने का प्रबन्ध भी किया जा रहा है कि यह सुयोग भारत तथा संसार की उन्नत भाषाओं का हिन्दी के साथ साहित्यिक सम्बन्ध-स्थापना का निमित्त बन जाय। यह सर्वाङ्ग सुन्दर ग्रन्थ लगभग ६०० पृष्ठ का होगा। इस के चित्रों की संख्या पचास के ऊपर होगी, जिन में अधिकांश रंगीन होंगे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सभा की हार्दिक कामना है कि उस की इस योजना में अभूत-पूर्व सफलता हो; किंतु यह सफलता देश के श्रीमानों की कृपा-दृष्टि पर ही अवलम्बित है; क्योंकि इस के लिये ५०००) के व्यय का अनुमान किया गया है, पर सभा में यह व्यय-भार उठाने का सामर्थ्य नहीं है, अतः गुणज्ञ तथा विद्या-प्रेमी श्रीमानों से प्रार्थना है कि इस कार्य के लिये यथोचित सहायता प्रदान कर के इस योजना को सु-संपन्न कराने के यशोभागी हों। सभा आशा करती है कि देश के उदार दाता इस आयोजन की सिद्धि में अग्रसर हो कर सभा को चिर आभारी करेंगे।

अभिनंदन ग्रंथ को सर्वाङ्ग पूर्ण बनाने के लिये साहित्यिकों का पूर्ण सहयोग भी वांछित है। हम उन से साग्रह अनुरोध करते हैं कि वे यह सहयोग प्रदान कर के सभा को कृतज्ञ करें। हमें पूर्ण आशा है कि आचार्य के प्रति श्रद्धा-भक्ति-भावना से प्रेरित हो कर हिंदी के सभी कोविद तथा साहित्यिक अपनी उत्कृष्ट रचना हमारे पास भेजने की कृपा करेंगे। इस संबंध में उन से निवेदन है कि—

१—उन की रचना उन के इच्छानुसार गद्य वा पद्य के किसी भी अंग में हो।

२—वह उन की रुचि के अनुकूल किसी भी विषय की हो। सभा चाहती है कि ग्रन्थ विभिन्न विषयों से पूर्ण कर के आचार्य द्विवेदीजी को समर्पित किया जाय। हाँ, इन विषयों का संबंध वर्तमान धार्मिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक प्रश्न से न हो।

३—रचना यथासम्भव बड़ी न हो।

अभिनन्दन ग्रन्थ को सभा जिस रंग-ढंग से निकालना चाहती है, उस के लिए यह आवश्यक है कि वह अविलंब प्रेस में दे दिया जाय। इस बात पर ध्यान देते हुए लेखक समुदाय शीघ्र ही अपनी कृति हमारे पास भेजने का अनुग्रह करे।

नागरी प्रचारिणी सभा के प्रधान मंत्री द्वारा भेजी हुई हम यह दूसरी सूचना भी सहर्ष प्रकाशित करते हैं। हमें यह जान कर बड़ी प्रसन्नता है कि रत्नाकर जी की कृतियों की अब सुचारु रूप से रक्षा हो सकेगी। श्री राधेकृष्ण दास की उदारता सराहनीय है। सभा रत्नाकर जी की रचनाओं को भी ११

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिल्दों में शीघ्र ही प्रकाशित करने वाली है। सभा को भी उस की तत्परता के लिए हम बधाई देते हैं। सूचना यह है—

हिन्दी संसार को यह बात भली भाँति विदित है कि स्वर्गीय बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर बड़े परिश्रम और मनोयोग से "सूरसागर" का सम्पादन नागरी प्रचारिणी सभा के लिए कर रहे थे। इस कार्य में उन्हों ने अपना कई हज़ार रुपया व्यय किया था और इस में उन की इतनी लगन थी कि ज्यों ज्यों उन का स्वास्थ्य बिगड़ता जाता था और जीवन से निराशा होती जाती थी त्यों त्यों वे द्विगुण परिश्रम से इस महान कार्य को पूरा करने का उद्योग करते थे। जीवन के अन्तिम दिन भी उन्हों ने इस में इतना परिश्रम किया कि उन की कुछ सुधरी हुई बीमारी फिर बिगड़ गई जिस से दो ही तीन घंटे के उपरान्त उन का देहान्त हो गया और इस ग्रंथ-संपादन को, जिस के लिये वे इतने लालायित थे, पूर्ण न कर सके। "सूरसागर" का कोई $\frac{3}{4}$ अंश रत्नाकर जी ने संपादित किया है और शेष अंश अब उन्हीं के निर्दिष्ट पथ पर सम्पादित हो रहा है। हिन्दी-प्रेमियों को यह जान कर हर्ष होगा कि रत्नाकर जी के सुयोग्य पुत्र श्रीयुक्त राधेकृष्ण दास जी ने सूरसागर का यह सब सम्पादित अंश, इस संबंध में एकत्र की हुई सारी सामग्री के सहित, नागरी-प्रचारिणी सभा को प्रदान कर दिया है। सभा ने इसके प्रकाशन में हाथ लगा दिया है। और इस का पहला भाग शीघ्र ही हिन्दी-प्रेमियों को उपलब्ध हो जायगा। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से जो लाभ होगा उस का आधा अंश, सभा "रत्नाकर-स्मारक" में व्यय करेगी और वह रत्नाकर जी के सब ग्रन्थों को भी "रत्नाकर कवितावली" के नाम से प्रकाशित कर रही है।

इस के अतिरिक्त रत्नाकर जी ने घनानन्दकृत सुजान सागर को पूर्णतः सम्पादित किया था और उन्हों ने अपने पुस्तकालय में कई हजार बहुमूल्य ग्रंथों का संग्रह किया था। इस में लगभग चार पाँच सौ ग्रंथ हस्तलिखित हैं और अनेक दुष्प्राप्य हैं। यह सारा संग्रह भी श्रीयुक्त राधेकृष्ण दास ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा को उदारतापूर्वक प्रदान कर दिया है। "बिहारी रत्नाकर" के सम्पादन के लिए तथा अष्ट छाप के जो ग्रंथ रत्नाकर जी निकालना चाहते थे उन के लिए उन्हों ने जो बहुमूल्य सामग्री एकत्र की थी वह भी इस संग्रह में सम्मिलित है। ये समस्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ग्रंथ सभा के पुस्तकालय में एक विशिष्ट स्थान में 'रत्नाकर संग्रह' के नाम से सजा कर रक्खे गए हैं और हिंदी-प्रेमियों को इन ग्रंथों से लाभ उठाने के लिये सभा द्वारा विशेष प्रबन्ध किया गया है।

श्री राधेकृष्ण दास की इस सराहनीय उदारता की सभा अत्यन्त आभारी है। इस अनुकरणीय दान के द्वारा उन्हों ने केवल अपने स्वर्गीय पिता की सदिच्छा की पूर्त्ति ही नहीं की है अपितु हिन्दी साहित्य को चिर कृतज्ञता के पाश में आबद्ध कर लिया है। वे योग्य पिता के सुयोग्य पुत्र हैं और उन की सदिच्छा तथा उदाराशयता से हिन्दी को बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

हमें खेद है कि पिछले अंक में दो स्थलों पर (पृष्ठ ३६३ पंक्ति ७ और पृष्ठ ३६४ पंक्ति १४) 'नंद' के स्थान पर 'पूज' छप गया है। दोनों स्थलों पर श्री शिवनंदन सहाय पढ़ना चाहिए। पाठक कृपया सुधार कर लें।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समालोचना

उपन्यास और कहानियाँ

गढ़कुंडार—लेखक, श्री वृन्दावन लाल वर्मा। प्रकाशक, गंगा-पुस्तक-माला कार्यालय, लखनऊ। १९८६। मूल्य सजिल्द ३) सादी २॥)। पृ० ४५२।

कंकाल—लेखक, श्री जयशंकर 'प्रसाद'। प्रकाशक, भारती-भंडार, रामघाट, बनारस सिटी। १९८६। मूल्य ३)। पृ० ३६९।

परख—लेखक, श्री जैनेन्द्र कुमार। प्रकाशक, हिंदी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई। मूल्य १)

अप्सरा—लेखक, श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'। प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ। १९८८। मूल्य सजिल्द १॥) सादी १)। पृ० १८५।

मंच—लेखक, श्री राजेश्वरप्रसाद सिंह। प्रकाशक, श्री नन्दकिशोर जी, ३१५ कटरा, इलाहाबाद। मूल्य १।)। पृ० २५२।

कसौटी—लेखक, श्री विश्वनाथ सिंह शर्मा। प्रकाशक, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता। १९२९। मूल्य २।)। पृ० २९५।

अछूत—लेखक, श्री चतुरसेन शास्त्री। प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ। १९८८। मूल्य सजिल्द १॥) सादी १)। पृ० १४५।

आकाशदीप—लेखक, श्री जयशंकर 'प्रसाद'। प्रकाशक, भारती भंडार, काशी। १९८६। मूल्य सादी १॥।) सजिल्द २)। पृ० २२०।

वातायन—लेखक, श्री जैनेन्द्रकुमार। प्रकाशक, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बंबई। १९८८। मूल्य सजिल्द का २) सादी १॥)। पृ० २६१।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ग़बन—लेखक, श्री प्रेमचन्द। प्रकाशक, सरस्वती प्रेस, बनारस सिटी। १९३१। मूल्य ३), पृ० ४३८।

चन्द्रकला—लेखक, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार। प्रकाशक, हिन्दी-ग्रंथ-कार्यालय, बंबई। १९२९ ई०, मूल्य ॥।=) सजिल्द का १।=)। पृ० १२२।

हृदय के आँसू—लेखक, श्री विश्वप्रकाश। प्रकाशक, कला प्रेस, प्रयाग। १९३१। मूल्य १)। पृ० ९७।

हार—लेखक, श्री यादवेन्द्र सिंह। प्रकाशक, गाँधी हिन्दी पुस्तक भंडार, प्रयाग। पृ० २५७।

अनाख्या; सुधांशु—लेखक, श्री राय कृष्णदास। प्रकाशक, भारती भंडार, काशी। १९८६, मूल्य १।)। पृ० १६२; और मूल्य ॥।)। पृ० ९७।

मुसल्मानी काल में, हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश में, हिंदू राष्ट्रीयता का अवशेष बुंदेलखंड में रह गया था। हिंद के शिवाजी महाराज छत्रसाल यहाँ ही हुए, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई यहाँ ही हुई, गढ़कुंडार की कथा का क्षेत्र भी यहाँ ही है।

प्रस्तुत उपन्यास सन् १२८८ ईस्वी के लगभग के बुंदेलखंड के इतिहास के आधार पर लिखा गया है। एक ऐतिहासिक उपन्यास की दृष्टि से ग्रंथ पूर्ण रूप से सफल है। १३ वीं शताब्दी का बुंदेलखंड आँखों के सामने नाचने लगता है। क्षत्रियों में गिने जाने की लालसा गढ़कुंडार के रखने वाले खंगार राजा तथा उन के समकालीन चंदेल तथा बुंदेल क्षत्रिय सरदारों का आपस में वैमनस्य तथा ऊँच नीच का भाव और उस का परिणाम चतुर लेखक ने बहुत सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। बुंदेलखंड-वासियों की कथा के पीछे बुंदेलखंड देश के प्राकृतिक सौंदर्य का पट कथा के सौंदर्य को और भी बढ़ाता है। लेखक ने इस का पूर्ण रूप से उपयोग किया है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी अनेक चरित्र अत्यन्त आकर्षक चित्रित किए गए हैं। समस्त चरित्र जीते जागते हैं, इस में तो कोई संदेह ही नहीं। देश के लिए यह सौभाग्य की बात है कि हमारे लेखकों का ध्यान अपने देश के निकट भूत काल के अक्षय ऐतिहासिक भंडार की ओर जाने लगा है। हिंदी प्रदेश में न मालूम कितने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गढ़कुंडार पड़े हैं जिन के इतिहास के एक एक दिन पर कदाचित् एक एक उपन्यास लिखा जा सकता है।

सुप्रसिद्ध लेखक के नाम से आकर्षित होकर जिस आशा से 'कंकाल' हाथ में लिया गया वह आशा पुस्तक समाप्त करने पर पूर्ण नहीं हुई। पुस्तक में तीन भाग हैं—कथानक, समाज-संबंधी लेखक की विचारमाला तथा जहाँ तहाँ बिखरी हुई काव्यछटा। काव्यछटा आकर्षक है, समाज-संबंधी विचार ठीक खप नहीं पाए हैं, कथानक विचित्रता से पूर्ण है।

उपन्यास की कथा का वातावरण आद्योपान्त अस्वाभाविक है। उपन्यास पढ़ कर ऐसा मालूम होता है, जैसे देश में साधारण गार्हस्थ्य-जीवन तो कहीं शेष ही नहीं रह गया हो। समाज के किसी एक अंग को चित्रित किया जा सकता है, किन्तु उस में इतनी अति न हो जानी चाहिए कि पाठक को समाज का संपूर्ण वातावरण अस्वाभाविक जँचने लगे। उपन्यास में हृदय को प्रभावित कर सकने वाले अनेक अवसर आए हैं किन्तु वे हृदय को प्रभावित करने में सफल हो सके हैं इसमें संदेह है। कथा-वर्णन तथा चरित्र-चित्रण में कुछ ऐसा उपसंयम है जिस से पाठक उन के साथ बहकर तन्मय नहीं हो पाता। साधारणतया कथानक अत्यन्त रोचक है यद्यपि आकर्षक बनाने के लिए भिन्न भिन्न काल तथा अनेक स्थानों का सहारा लिया गया है जिस से कला की प्रौढ़ता में बाधा पड़ती है।

समाज-संबंधी विचार वाले अंशों को पढ़ते समय टैगोर की 'गोरा' जैसी कृतियों का स्मरण हो आता है, किन्तु ये अंश 'कंकाल' में प्रायः लंबे लंबे व्याख्यानों के रूप में अलग से निकले पड़ते हैं। 'भारत-संघ' की स्थापना 'सेवा-सदन' की स्थापना का स्मरण दिलाता है। शायद हिंदी उपन्यासकारों की प्रथम कृति का अन्त किसी 'सदन' 'संघ' या 'आश्रम' की स्थापना किए बिना ठीक नहीं बन पाता।

जहाँ तहाँ लेखक का ऐतिहासिक नाटककार तथा भावुक कवि का व्यक्तित्व झलक पड़ता है। ये अंश ही तिनके के सहारे का काम देते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जैनेन्द्र कुमार की 'परख' लेखक के हृदय से निकली हुई कहानी मालूम पड़ती है।

छोटा होने पर भी उपन्यास हृदय को स्पर्श करने वाला है। चुने हुए चरित्रों की मानसिक परिस्थिति तथा उथल पुथल का अत्यन्त मार्मिक और सजीव चित्र लेखक ने खींच कर सामने रख दिया है। साम्यवाद के उपदेश से पूर्ण अन्तिम पृष्ठ को छोड़ कर शेष संपूर्ण कृति कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। ऐसी ही मौलिक रचनाओं से अपने साहित्य का मस्तक ऊँचा हो सकेगा। पुस्तक में दिए हुए चित्र बिलकुल बेमेल हैं। अजंता की चित्रकला की भद्दी नक़ल वाली ये बंगाली शकलें हिंदी के उपन्यास में कुरुचि ही उत्पन्न करती हैं। इन के हटा देने से पुस्तक का मूल्य घटने के बजाय बढ़ जावेगा।

❦ ❦ ❦

सूर्यकांतत्रिपाठी 'निराला' की 'अप्सरा' पढ़ कर मुझे हिंदी की प्रसिद्ध कहावत 'नाम बड़े और दर्शन थोड़े' की सहसा याद आ गई। ऐसी शिथिल, कला-विहीन, उपन्यास नाम रखने वाली भद्दी रचना मेरी नज़र से शायद ही कोई दूसरी गुज़री हो। कथा, चरित्र-चित्रण, शैली, कहीं पर भी सौंदर्य का नाम नहीं। वास्तव में पुस्तक को पढ़ कर अत्यन्त निराशा हुई। मेरी समझ में 'सुन्दर सुकुमार कवि-मित्र श्रीसुमित्रानंदन पंत' को समर्पित कर के लेखक ने अपने सुन्दर सुकुमार मित्र का अनजाने अपमान किया है। नाम को छोड़ कर हिंदी के इस 'गंधर्व' में और इस अप्सरा में किसी प्रकार का भी साम्य नहीं है। आशा इतनी ही है कि कुछ दिनों में यह 'अप्सरा' इस लोक को छोड़ कर अपने लोक को चली जावेगी और मेनका की तरह फिर संसारी लोगों को भुलावे में डालने के लिये कभी नहीं लौटेगी।

❦ ❦ ❦

'मंच' एक साफ़ सुथरा गार्हस्थ्य-जीवन संबंधी उपन्यास है। कल्पना की अपेक्षा वास्तविकता का सहारा लेखक ने विशेष लिया है। इस का सब से बड़ा गुण यह है कि विचित्रता लाने का लेखक ने बिलकुल भी प्रयत्न नहीं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किया है, जैसे सच्ची घटनाओं को बिना निमक मिर्च मिलाए लेखक लिख रहा हो। भाषा-शैली भी बहुत सुथरी है। लेखक में उपन्यास लिखने की शक्ति मौजूद है। कुछ माँजने से यह चमक उठेगी। कथानक, भाषा, चरित्रचित्रण तथा शैली की अकृत्रिमता इस पुस्तक की सब से बड़ी विशेषताएँ हैं।

श्री विश्वनाथ सिंह शर्मा के 'कसौटी' नामक उपन्यास की सब से बड़ी विशेषता इसका अशृंगारी होना है। सामयिक राजनीतिक तथा सामाजिक अवस्था का इसमें सच्चा चित्र खींचने का उद्योग किया गया है, साथ में इस बात पर भी ध्यान रक्खा गया है कि अन्त में भले लोग सुखी और बुरे लोग दुखी सिद्ध हों—घरेलू कहानियों की तरह अन्त में यह कहा जा सके कि 'जैसे उनकी हुई वैसी सब किसी की हो'। 'सेवासदन' वाली आदर्शवादिता नवीन उपन्यास लेखकों का पीछा ही नहीं छोड़ती। 'सेवासदन' तथा 'प्रेमाश्रम' के समान इस में भी एक 'प्रेममंदिर' स्थापित किया गया है। यदि साहित्य समाज के भविष्य का प्रतिबिंब है तो निश्चय है कि शीघ्र ही अनेक 'सेवासदन' और प्रेममंदिर हमारे गाँवों में दिखलाई पड़ने लगेंगे। समाज की गार्हस्थ्य-संबंधी समस्याओं को चित्रित करने वाले साधारण उपन्यासों की अपेक्षा यह कहीं बेहतर है। समाज के एक भिन्न पहलू की तरफ़ यह हमारा ध्यान आकर्षित करता है और वह भी काफ़ी सफलता-पूर्वक।

प्रेमचंद की क़लम में जो सफ़ाई है वह अभी तक किसी भी अन्य हिन्दी उपन्यास-लेखक को नसीब नहीं हो पाई है। कथा का बहाव, शैली का सुथरापन, भावों की चुस्ती इन सब में प्रेमचंद अपना सानी नहीं रखते। 'ग़बन' प्रेमचंद की कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। मुझे तो यह उन के प्रारंभ के छोटे तथा बीच के बड़े उपन्यासों से भी अधिक सुंदर जँचा। एक बात जो प्रेमचंद की रचनाओं में, विशेषतया उपन्यासों में, खटकती है वह उन में वास्तविकता होते हुए भी वास्तविकता का न होना है। यों तो सब बातें सच्ची

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सी लगती है लेकिन ज़रा ध्यान देने पर कहानी कहानी ही रह जाती है। यह सच है कि उपन्यास किन्ही व्यक्तियों का जीवन-चरित्र नहीं है किन्तु तो भी इस तरह की काल्पनिक रचनाएँ हो सकती हैं जिन में सच्चे जीवन की ऐसी नक़ल मिलती है कि असल और नक़ल को बराबर बराबर रखने पर भी असल और नक़ल में धोखा हो जाता है। इस तरह का धोखा प्रेमचंद की अधिकांश रचनाए देर तक दे सकती हैं, इस में मुझे संदेह है।

यह सब होते हुए भी 'ग़बन' हिन्दी के उपन्यासों में प्रथम श्रेणी की रचना है—अत्यन्त रोचक, अत्यन्त आकर्षक, अत्यन्त सजीव और अत्यन्त उपदेश-जनक।

❦ ❦ ❦

श्री चतुरसेन शास्त्री की 'अक्षत'-शीर्षक पुस्तक की 'आठ अमर कहानियों' में कुछ कहानियाँ सुन्दर हैं, शेष साधारण। 'फूलवाले की सैल' शायद सब से अधिक आकर्षक कहानी है। श्री चतुरसेन की 'पान वाली' तो काफ़ी प्रसिद्धि पा चुकी है। "दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी ?" कहानी भी अत्यन्त मार्मिक है। अन्य कहानियों में मुझे विशेष कला या आकर्षण नहीं दिखलाई पड़ा। लेखक को अपनी क़लम पर भरोसा भी कदाचित् आवश्यकता से अधिक है। इस लिए अपने लिखे हुए को माँजना-सँवारना वे शायद अनावश्यक समझते हैं।

❦ ❦ ❦

'आकाशदीप' की उन्नीस कहानियों के रूप में 'प्रसाद' जी की कला का नमूना उन के 'कंकाल' से कहीं अधिक उत्कृष्ट है। कुछ कहानियाँ सचमुच बहुत सुंदर हैं, कुछ साधारण और कुछ की कला ऐसी है कि हम जैसे परिमित बुद्धि, और ज्ञान रखने वाले मनुष्यों की पहुँच वहाँ तक नहीं हो पाती। कलियुग के प्रारंभ में व्यास जी ने अपने अमर संस्कृत ग्रंथ में कूट श्लोक लिखे थे, व्रजभाषा के सागर में महाकवि सूरदास कूट पद रच कर रख गए हैं फिर आजकल के हिन्दी लेखक नवीनता के उपासक होते हुए भी इस सनातन प्रणाली को कैसे छोड़ सकते हैं ? लेकिन इस बीसवीं सदी में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ये कूट रचनाएँ कविता तक ही सीमित नहीं हैं। विकसित होकर अब ये कहानी जैसी गद्यरचनाओं तक पहुँच गई हैं। इस का पता 'आकाशदीप' पढ़ने से लगता है। ध्वनिकाव्य उत्तमकाव्य है। ध्वनिकाव्य वह है जिस में संकेत से बात कही जाय। अतः आजकल की ये सांकेतिक गद्यपद्यात्मक रचनाएँ उत्तम काव्य की श्रेणी में आप ही पहुँच जाती हैं। यह मोटा तर्क तो मोटी बुद्धि वाले व्यक्तियों की अक़ल में भी समा जाना चाहिए।

आजकल की छायावादी कविताओं तथा 'आकाशदीप'-वादी गद्यरचनाओं की व्यंजना मुझे एक सज्जन का स्मरण दिला देती हैं। आजकल के नए हिंदी कवियों की तरह मेरे एक रिश्तेदार को भी कभी कभी कम सखुनी का दौरा हो जाता है। रात को दस बजे नौकर को बुलाया और एक मिनट घूर कर कहा 'कपड़े'। बड़े वकील हैं। मिज़ाज के सख़्त हैं। दुबारा बात लौटने की नौकर की हिम्मत कहाँ? विचारा घर में आकर बाबू साहब की पहेली सब के सामने पेश करता है और उस के बूझने में सारा घर लग जाता है। कहीं जाना तो नहीं है जो पहनने को 'कपड़े' मँगाये हैं? दर्ज़ी के यहाँ तो 'कपड़े' सिलने नहीं गए जो उन को पूछ रहे हैं। घर में किसी से कहीं 'कपड़े' भेजने को तो नहीं कहा था जो यह जानना चाहते हैं कि कपड़े भेज दिए गए या नहीं? अरे कहीं मुझ से तो 'कपड़े' पहन कर आने को तो नहीं कहा है, शायद कहीं भेजना हो? कहिए, कैसा उत्कृष्ट ध्वन्यात्मक काव्य है? हम साधारण बुद्धि वालों की तो भगवान ऐसे लोगों से रक्षा करे। मेरे सामने तो जब ऐसी रचनाएँ आती हैं तो किसी लाल बुझक्कड़ को ढूँढने की इच्छा होने लगती है।

'आकाशदीप' की कुछ कहानियाँ इसी श्रेणी की हैं। मेरी समझ में न आने के कारण उनकी उत्कृष्टता में कोई फ़र्क न आना चाहिए। अगर उन्नीसवीं सदी में पैदा हुए व्यक्ति की समझ में बीसवीं सदी की शैली न आए तो उस में उस शैली का दोष कैसे हो सकता है?

लेकिन जैसा मैं ऊपर कह चुका हूँ कुछ कहानियाँ सचमुच सुंदर हैं और भावपूर्ण हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री जैनेन्द्रकुमार का 'वातायन' ऊँची श्रेणी की उत्कृष्ट कहानियों का संग्रह है। प्रायः सब की सब कहानियाँ सुंदर, भावपूर्ण तथा हृदय पर चोट करने वाली हैं। लेखक जानता है कि किस बात को कैसे लिखने से वह आकर्षक बना सकेगा और अनायस ही वह उसे वैसे ही लिखता है। 'खेल' तथा 'चलित-चित्त' जैसी कहानियों में विशेष कथानक न होते हुए भी कला है। कुछ कहानियों को पढ़ कर पश्चिमी कहानियों का स्मरण हो आता है लेकिन यदि इस तरह का कोई प्रभाव हो भी तो वह जुगाली किया हुआ भोजन मालूम होता है, निगला हुआ नहीं। अपने पात्रों की मानसिक अवस्था की उथल पुथल की जिस गहराई तक श्री जैनेन्द्रकुमार पहुँचते हैं वहाँ प्रेमचंद भी अक्सर नहीं पहुँचते।

श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकर की 'चंद्रकला' में संगृहीत कहानियाँ बुरी नहीं हैं—रोचक हैं, जहाँ तहाँ कला की छटा है किन्तु उनके वातावरण में स्पष्ट या अस्पष्ट रूप में विदेशी प्रभाव दिखलाई पड़ता है। 'मौलिक' कहानियों में यह प्रभाव किस तरह आया है इस संबंध में लेखक महोदय ही ठीक बतला सकेंगे। लेखक को 'अपने भविष्य की उज्वलता पर पूर्ण विश्वास है' इससे पाठक भी असहमत न होंगे।

'हृदय के आँसू' की अधिकांश कहानियों का विषय प्रेम—अतृप्त प्रेम है। शैली में अभी प्रौढ़ता नहीं है—कुछ बचकानापन है। वैसे कहानियाँ रोचक हैं। परिश्रम करने से लेखक महोदय कदाचित सचमुच उत्कृष्ट कहानियाँ लिख सकेंगे यह बात इस बानगी से अवश्य स्पष्ट होती है। दो एक कहानियों का विषय भी भिन्न है और विवेचन भी अधिक विकसित है। ये कहानियाँ कदाचित् लेखक की कुछ प्रौढ़ रचनाएँ हैं।

यादवेन्द्रसिंह के 'हार' की मौलिक कहानियों के इस संग्रह में अधिकांश का विषय प्रेम है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रारंभ की कुछ कहानियों में प्रेम के ऐसे रूप और ऐसे आदर्श का चित्रण किया गया है जो अपने देश के लिए केवल नए तथा असाधारण ही नहीं हैं बल्कि भारतीय सभ्यता के आदर्शों की नींव हिलाने वाले हैं। जीवन में अवश्य अनेकरूपता है किन्तु साहित्य में जीवन छान छान कर रक्खा जाता है। समाज के गहन वन में अनेक कँकरीली कंटकपूर्ण तथा अंधकारयुक्त पगडंडियाँ फैली पड़ी हैं किन्तु साधारण यात्रियों को उन पर से होकर सकुशल निकाल ले जाना अत्यन्त कुशल पथ-प्रदर्शकों का काम है, थोड़ी सी भी भूल से अबोध यात्रियों के भटकने और पथभ्रष्ट हो जाने की आशंका रहती है।

आजकल वैचित्र्य और उच्छृङ्खलता उत्कृष्ट कला के निकटतम सुहृद् समझे जाते हैं इस लिये अपने देश के नवयुवक लेखकों की क़लम किसी प्रकार के भी बंधन को मानने को उद्यत नहीं है।

कहानियाँ लिखी अच्छे ढंग से गई हैं, पढ़ने में रोचक हैं, तथा शैली सुथरी है। कुछ कहानियाँ काफ़ी सुंदर तथा मार्मिक हैं। इनमें मानव-हृदय के छोटे छोटे चित्र सरल तथा स्पष्ट ढंग से खींचे गए हैं। झूठी कला के चक्कर में पड़ कर कहानियों को तोड़ा मरोड़ा नहीं गया है। लेखक ने अपनी रचनाओं के वाह्य रूप के माँजने पर यदि कुछ अधिक ध्यान दिया होता तो वे अधिक चमक उठतीं।

* * *

'अनाख्या' और 'सुधांशु' राय कृष्णदास द्वारा लिखी गई कहानियों के संग्रह हैं। 'सुधांशु' की प्रायः समस्त कहानियाँ 'छायावादी' कविता की टक्कर लेने वाली हैं जिन में कुछ की व्यंजना स्पष्ट तथा कुछ की अस्पष्ट है। 'अनाख्या' की भी कुछ कहानियां इसी प्रकार की हैं। आज-कल छायावादी लेखक प्रायः यह भूल जाते हैं कि बात को अधूरा छोड़ देने से ध्वनिकाव्य नहीं हो जाता। जो हो लेखक का उद्देश्य उत्कृष्ट कलापूर्ण कहानियाँ लिखने की ओर है और यह सराहनीय है। किन्तु जितना ऊँचा आदर्श लेखक ने अपने सामने रक्खा है उस से प्रायः बहुत नीचे लेखक को रुक जाना पड़ा है। कुछ कहानियाँ सचमुच अत्यंत सुंदर हैं। उदाहरण के लिए 'अनाख्या'

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की 'इनाम' शीर्षक कहानी अत्यंत उत्कृष्ट रचना है। साधारणतया 'सुधांशु' की अपेक्षा 'अनाख्या' की कहानियाँ मेरी समझ में अधिक आईं। लेखक की खड़ी बोली में कहीं कहीं बनारसी-पन आ गया है। 'हो' के स्थान पर 'हौ' (सम्राट् ने पूछा—"यह क्या कर रहे हौ" सुधांशु पृ० २५) का प्रयोग बराबर जान बूझ कर किया गया है किंतु यह कानों और आँखों दोनों को बेहद खटकता है। पहले मेरा ख्याल था कि शायद स्त्रियों की बोली तक ही यह प्रयोग सीमित है किंतु बात ऐसी नहीं निकली। ग्रामीणों के मुख से बनारसी बोली का प्रयोग सुंदर ढंग से कराया गया है।

—निकष

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सूचना

आगामी वर्ष से 'हिंदुस्तानी' में साहित्यिक विज्ञापनों के प्रकाशन का भी प्रबंध किया गया है। विज्ञापन की दर नीचे दी हुई है।

	पूरा पृष्ठ	आधा पृष्ठ	चौथाई पृष्ठ
चार अंकों में	३६)	२८)	१६)
दो " "	२०)	१५)	९)
एक अंक "	१२)	८)	५)

प्रति इंच

१ बार के लिए २)

२ " " " ४)

४ " " " ७॥)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

१६३२

हिंदुस्तानी एकेडेमी
संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

वार्षिक मूल्य पाँच रुपये—विदेशों से दस शिलिंग

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिंदुस्तानी, १६३२

संपादक—रामचंद्र टंडन

संपादक-मंडल

१—डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फ़िल्० (ऑक्सन)

२—डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)

३—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम्० ए०, डी० एस्-सी० (लंदन)

४—श्रीयुत धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०

५—श्रीयुत रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लेख-सूची

(१) देवनागरी लिपि तथा हिंदी अक्षरविन्यास—लेखक, डाक्टर बाबूराम सक्सेना, एम्० ए०, डी० लिट्० ... ... १

(२) संस्कृत साहित्य में ग्रंथ-प्रणयन—लेखक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फ़िल्० (ऑक्सन) १५

(३) गोरखनाथ का समय—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) ३०

(४) गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं का कालक्रम—लेखक, श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त, एम्० ए० ... ... ३५,१४१

(५) ऋषिक अर्थात् युचि—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार ... ९७

(६) राजा गजसिंह जी—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ ... १०९

(७) हिंदी या हिंदुस्तानी ?—लेखक, श्रीयुत रामनरेश त्रिपाठी ... १२३

(८) क्या 'दो सौ बावन वार्ता' गोकुलनाथकृत है ?—लेखक, श्रीयुत धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए० ... ... १८३

(९) सर मुहम्मद इक़बाल और उन का काव्य-कौशल—लेखक, श्रीयुत इक़बाल वर्मा 'सेहर' १९०

(१०) कबीर जी का समय—लेखक, डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम्० ए०, डी० एस्-सी० (लंडन) २०४

(११) इलाहाबाद या इलाहावास—लेखक, श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०... ... ... २१६

(१२) 'मूल गोसाईंचरित' की ऐतिहासिकता पर कुछ विचार—लेखक, श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त, एम्० ए० ... ... २५३

(१३) अवधी की कुछ पहेलियाँ—लेखक, श्रीयुत रामाज्ञा द्विवेदी, एम्० ए० २६८

(१४) भारतीय नाट्यगृह—लेखिका, कुमारी गोदावरी केतकर ... २७७

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(१५) **महाकवि भूषण**— लेखक, श्रीयुत भगीरथ प्रसाद दीक्षित ... ३१५
(१६) **सर जदुनाथ सरकार और महाराजा अजितसिंह**—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ ३५६
(१७) **कबीर साहब की रमैनी**—लेखक, श्रीयुत परशुराम चतुर्वेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ... ... ३६९
(१८) **कुंडलिया छंद**—लेखक, श्रीयुत नरोत्तम दत्त स्वामी, एम्० ए० ... ३९७
(१९) **स्वामी रामानंद और 'प्रसंग-पारिजात'**—लेखक, श्रीयुत शंकरदयालु श्रीवास्तव, एम्० ए० ... ... ४०३
(२०) **प्राचीन भारत में तोल**—लेखक, डाक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार, पी-एच्० डी० (वियना), डी० एस्-सी० (लंदन) ४२१
(२१) **चित्रकार "कवि" मोलाराम की चित्रकला और कविता**—लेखक, श्रीयुत मुकंदीलाल, बी ए० (आक्सन), बार-एट्- लॉ ... ४३२
(२२) **उमर ख़ैयाम**—लेखक, श्रीयुत इक़बाल वर्मा सेहर ... ४५३
संपादकीय १२०, २२६, ३६३, ४६२
समालोचना ... २३२, ४६८
हिंदुस्तानी एकेडेमी का वार्षिक कार्य-विवरण ... २४५

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक देकर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपये की सहायता देकर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिये उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फ़ेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) **मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था**—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह युसुफ़ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्० । मूल्य १)

(२) **मध्यकालीन भारतीय संस्कृति**—लेखक, राय बहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा । सचित्र । मूल्य ३)

(३) **कवि-रहस्य**—लेखक, डा० गंगानाथ झा । मूल्य १)

(४) **अरब और भारत के संबंध**—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी । अनुवादक, बाबू रामचंद वर्मा । मू० ४)

(५) **हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता**—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० । मूल्य ६)

(६) **जन्तु-जगत**—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी० । सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) **गोस्वामी तुलसीदास**—लेखक, रायसाहब बाबू श्यामसुंदरदास और श्रीयुत पीतांबरदत्त बड़थ्वाल । सचित्र । मूल्य ३)

(८) **सतसई सप्तक**—संग्रहकर्ता, रायसाहब बाबू श्यामसुंदरदास । मूल्य ६)

(९) **चर्म बनाने के सिद्धांत**—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस-सी० । मूल्य ३)

(१०) **हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट**—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए० । मूल्य १॥)

(११) **चाँदी की डिबिया**—जॉन गाल्सवर्दी के 'सिल्वर बॉक्स' नामक नाटक का अनुवाद । अनुवादक, श्रीयुत प्रेमचंद । मूल्य १॥)

(१२) **हड़ताल**—जॉन गॉल्सवर्दी के 'स्ट्राइक़' नामक नाटक का अनुवाद । अनुवादक, श्रीयुत प्रेमचंद । मूल्य २)

(१३) **न्याय**—जॉन गॉल्सवर्दी के 'जस्टिस' नामक नाटक का अनुवाद । अनुवादक, श्रीयुत प्रेमचंद । मूल्य २।)

(१४) **धोखा धड़ी**—जॉन गॉल्सवर्दी के 'स्किन गेम' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, पं० ललताप्रसाद शुक्ल, एम्० ए० । मूल्य २)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०, इलाहाबाद

मुद्रक—श्यामसुंदर श्रीवास्तव, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद
प्रकाशक—डाक्टर ताराचंद, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

अक्तूबर, १९३९

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिंदुस्तानी, अक्तूबर, १९३६

संपादक—रामचंद्र टंडन

संपादक-मंडल

१—डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फ़िल्० (ऑक्सन)

२—डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)

३—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम्० ए०, डी० एस्-सी० (लंदन)

४—डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)

५—श्रीयुत रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

लेख-सूची

(१) **सूबा अवध के सिक्के**—लेखक, रायबहादुर बाबू प्रयागदयाल .. ३५७

(२) **दिल्ली के सुल्तानों के युग में उमराव वर्ग**—लेखक, डाक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना, एम्० ए०, पी-एच्० डी० (लंदन) .. ३६९

(३) **हिन्दी भाषा-संबंधी अशुद्धियाँ**—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) ३८१

(४) **महाभारत में साहित्यिक शैलियाँ**—लेखक, श्रीयुत वासुदेवशरण अग्रवाल, एम्० ए० .. .. ३८७

(५) **डिंगल के गीत और उन का पिंगल**—लेखक, श्रीयुत नरोत्तमदास स्वामी, एम्० ए० .. .. ३९५

(६) **प्राचीन भारत के पुस्तकालय**—लेखक, श्रीयुत श्यामनारायण कपूर, बी० एस्-सी० .. .. ४४७

(७) **स्फुट प्रसंग**—लेखक, श्रीयुत मयाशंकर याज्ञिक; श्रीयुत अवधवासी रायबहादुर लाला सीताराम; श्रीयुत दशरथ शर्मा .. ४६३

(८) **स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद** ४६७

वार्षिक मूल्य ५); एक प्रति का १।); डाक-व्यय अलग

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग ६ } अक्तूबर, १९३६ { अंक ४

सूबा अवध के सिक्के

[लेखक--रायबहादुर बाबू प्रयागदयाल]

सूबा अवध के सिक्कों के संबंध में कुछ निवेदन करने से पूर्व उस के इतिहास पर एक सरसरी दृष्टि डालना आवश्यक है, जिस में यह स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाय कि किस-किस अवसर पर और किन-किन कारणों से इस सूबे में सिक्के जारी हुए।

सन् १७२० ई० में दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह ने अपनी सल्तनत के वज़ीर सआदत ख़ाँ को अवध का सूबेदार नियुक्त किया। सआदत ख़ाँ का वास्तविक नाम मुहम्मद अमीन था जो कि ख़ुरासान में नेशापूर के सैयद-वंश से संबंध रखता था। इस पद पर सुशोभित होते ही उस ने अपनी पदवी 'बुरहानुलमुल्क' धारण कर ली, और दिल्ली छोड़ कर सूबे में चला आया, और लखनऊ तथा अयोध्या को अपने निवास का केंद्र वनाया।

यह पहला नवाब था जिस ने कि मछली के आकार को अपना विशेष चिह्न निश्चित किया। इस के विषय में यह कथा प्रचलित है कि एक दिन बुरहानुलमुल्क जमुना नदी के किनारे हाथ उठाए नमाज़ पढ़ रहा था, जब कि एक मछली पानी से उछल कर उस के हाथ में आ गई। इस घटना के थोड़े ही समय बाद उसे अवध की सूबेदारी मिल

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गई। यह नहीं कहा जा सकता कि यह घटना कहाँ तक सत्य है, परंतु यह अवश्य है कि मछली का चिह्न अवध में अत्यंत शुभ समझा जाता है, और प्रायः सभी पुराने मकानों के मुख्य द्वार पर पाया जाता है। बुरहानुल्मुल्क ने लखनऊ के क़िले लखना का नाम इसी कारण 'मच्छी-भवन' रक्खा था। सन् १७३९ ई० में सआदत ख़ाँ की मृत्यु हुई। उस के स्थान पर उस का दामाद मंसूरअली ख़ाँ सफ़दरजंग अवध का सूबेदार हुआ, और सन् १७४७ ई० में दिल्ली की सल्तनत का वज़ीर भी नियुक्त किया गया। उस समय से वह और उस के उत्तराधिकारी नवाब वज़ीर कहलाने लगे—अर्थात् नवाब सूबा अवध के और वज़ीर मुग़ल सल्तनत के। सफ़दर जंग ने फ़ैज़ाबाद शहर की नींव डाली और अधिकांश वहीं निवास करता रहा। सन् १७५३ ई० में उस की मृत्यु हुई और शुजाउद्दौला उस की जगह पर गद्दी पर बैठा।

सन् १७५४ ई० में आलमगीर द्वितीय के राज्यकाल में बनारस की टकसाल का प्रबंध नवाब वज़ीर के सुपुर्द हुआ और १७७५ ई० अर्थात् शुजाउद्दौला की मृत्यु तक यह टकसाल उसी के प्रबंध में रही और उस में बादशाह शाह आलम द्वितीय के नाम से सिक्के ढलते रहे।

सन् १७७५ ई० में बनारस और जौनपूर के ज़िले ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन हुए, परंतु इस के कुछ काल पूर्व बरेली की टकसाल भी जारी हुई थी। नवाब शुजाउद्दौला बहादुर और अंग्रेज़ी फ़ौज के सिपहसालार जनरल चैंपियन साहब ने मिल कर रुहेलों को, जिन का कि सिपहसालार हाफ़िज रहमत खाँ था, मीराँखेडा नामक स्थल पर, जो कि शाहजहाँपूर ज़िले में स्थित है, सन् १७७४ ई० (११८८ हिज्री) में परास्त दी और इस विजय की खुशी में एक चाँदी का पदक (तमग़ा) बरेली टकसाल से जारी किया। यह पदक (प्लेट १, नं० १) बहुत ही दुष्प्राप्य है, और इस के केवल दो-तीन नमूने अब तक मिल सके हैं। सौभाग्य से यह पदक लखनऊ के अजायबघर में मौजूद है। इस की तौल ५८८·५ ग्रेन और मध्यरेखा पौने दो इंच है। इस के एक ओर निम्न-लिखित लेख अंकित है—

नवाब

शुजाउद् वज़ीर आज़म हिंद

याज़ दहुम सफ़र रोज़ शंबा सन् ११८८ दर इलाहीखेड़ा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१

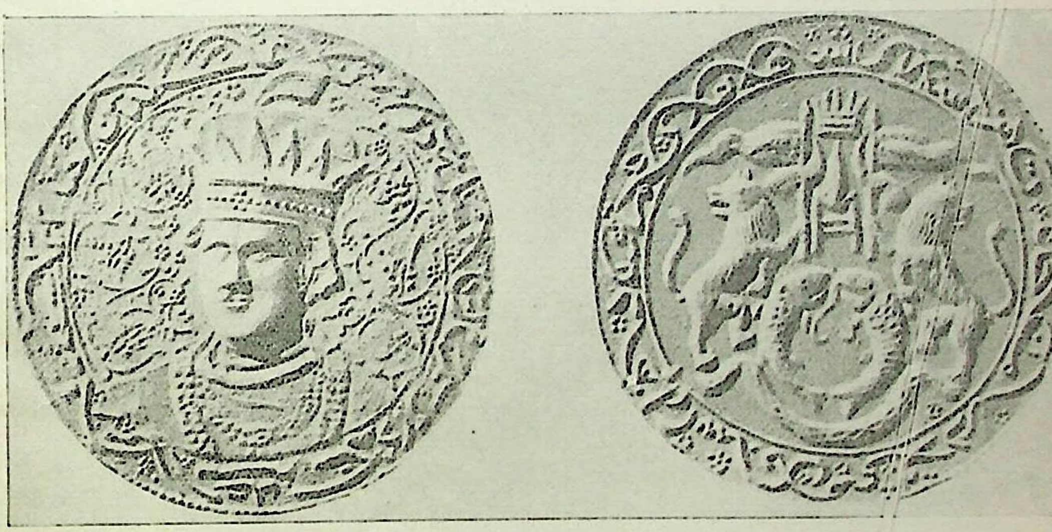

२

प्लेट—२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२

१ ३

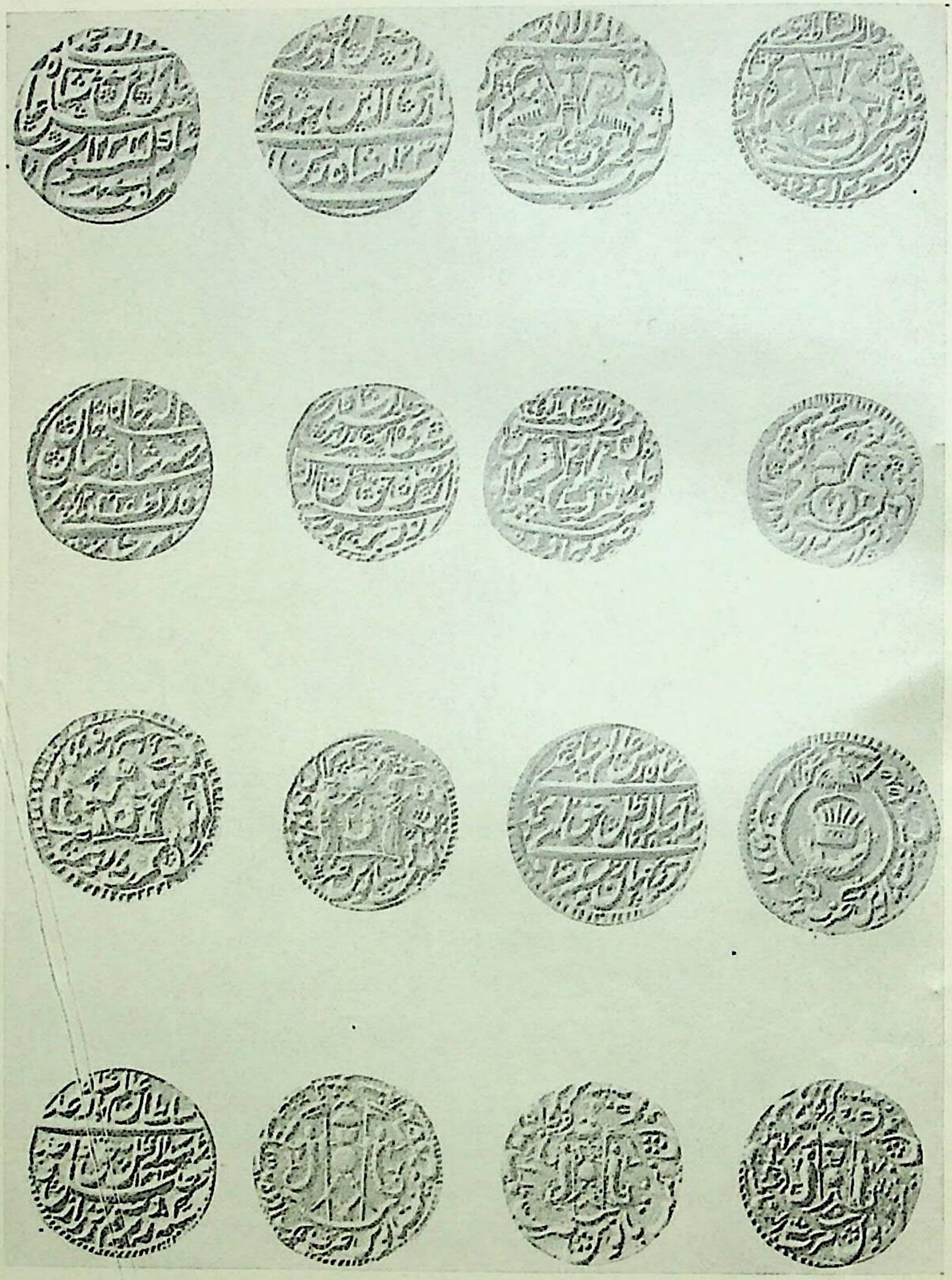

४,५ ६

७,८ ९

१० ११

प्लेट--२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

रुहेला हा रा ज़दः व हाफ़िज रहमत ख़ाँ

सरदार रुहेला कुश्तः शुदः[1]

इस का अर्थ हुआ—

"नवाब शुजाउद् (दौला) हिंद के वज़ीर आज़म ने शनिवार, ११वीं सफ़र ११८८ (हि०) को, इलाहीखेड़ा में रुहेलों को दंड दिया और हाफ़िज़ रहमत ख़ाँ, रुहेलों का सरदार मारा गया॥"

और दूसरी ओर एक बिंदीदार घेरे में एक दोमुँही तलवार सीधी खड़ी है और उस के मूँठ पर से होती हुई एक साधारण तलवार बेंड़ी रक्खी हुई अंकित है। पदक की गोलाई में यह लेख लिखा है—

इन्ना फ़तहनाह फ़तहन मुबीना

यफ़्रहून बहिंद अस्कानुल्हिंद[2]

जिस का आशय है—

"हम ने उन्हें सफलता दी, पूर्ण सफलता दी। इस से हिंद के निवासी प्रसन्न होंगे।"

नवाब शुजाउद्दौला ने २६ जनवरी १७७५ को मृत्यु पाई। उस का मक़बरा गुलाबबाड़ी फ़ैज़ाबाद की मुख्य इमारतों में अब तक मौजूद है।

नवाब आसफ़ुद्दौला अपने पिता नवाब शुजाउद्दौला की गद्दी पर सुशोभित हुआ और फ़ैज़ाबाद को छोड़ कर उस ने लखनऊ में निवास ग्रहण किया और उसे पर्याप्त शोभा प्रदान की। विशाल इमारतें—जैसे दौलतख़ाना, रूमी दरवाज़ा, कोठी बिबियापूर, चिनहट

---

१ نواب
شجاالد وزیر اعظم هند
یا ز دهم صفر روز شنبه سنه ۱۱۸۸ در الهی کهیره
روهیله ها را زده و حافظ رحمت خاں
سردار روهیله کشته شده

२ انا فتحناه فتحاً مبینا
یفر حون بهند اسکان الهند

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हाउस और बड़ा इमामबाड़ा—निर्माण कीं। स्वयं दौलतख़ाने के अंदर असफ़ी कोठी में निवास किया। यह उदारता, दान और नेकी के लिए विख्यात था। कहावत है, "जिस को न दे मौला, उस को दे आसफ़ुद्दौला।" यह शुभ वाक्य उस की मृत्यु के बहुत दिनों बाद तक दूकानदार अपनी दूकान सवेरे खोलते समय कहते थे। उस ने जार्ज तृतीय, इंग्लिस्तान के बादशाह के बीमारी से अच्छा होने के अवसर पर पचीस हज़ार रुपया डाक्टर को भेंट किया था और पचीस हज़ार रुपया उस के नाम से ग़रीबों और निस्सहायों में बँटवाया था। इस के शासन-काल में मछलीदार रुपए जिन पर सन् जलूस (गद्दी का साल) २६ मिलता है, बादशाह शाह आलम के नाम से बनते रहे।

यह २१ सितंबर, सन् १७९७ को, निस्संतान मरा और मच्छीभवन के इमामबाड़े में दफ़न किया गया। उस के बाद वज़ीरअली और सआदतअली ख़ाँ गद्दी पर बैठे। परंतु इन के समय में कोई विशेष सिक्का या पदक नहीं जारी हुआ।

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर, जो अवध का अंतिम नवाब वज़ीर था, ११ जूलाई १८१४ ई० को इस पद पर आसीन हुआ। इस के शासन-काल की मुख्य घटना यह है कि लॉर्ड हेस्टिंग्ज़ मार्च १८१८ ई० में लखनऊ आए और उसे यह उत्तेजना दी कि तुम दिल्ली सल्तनत से अपना संबंध-विच्छेद कर के स्वतंत्र हो जाओ, और बादशाह अवध की हैसियत से सिक्का जारी करो। अंत में १८१९ ई० में बादशाह अवध की पदवी उसे प्रदान हुई और उस समय से, दिल्ली के शासन से उस का कोई संबंध न रहा।

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर की ताजपोशी बड़े उत्साह और समारोह के साथ लाल बारादरी नाम की इमारत में जिस में कि इस समय लखनऊ का अजायबघर है हुई। ताजपोशी के दिन तीस हज़ार रुपए के जवाहरात लुटाए गए और चाँदी के पदक तथा ख़िलअतें प्रमुख व्यक्तियों, अमीरों और रईसों में बाँटी गईं। पदक की तौल १२६० ग्रेन है, और मध्य-रेखा ढाई इंच है। यह पदक (प्लेट १, नं० २) उच्चकोटि की कारीगरी और कौशल का नमूना है। इस के एक ओर एक घेरे में ताज और हार से अलंकृत बादशाह की आकृति है, और शेष स्थान में फूल और बेल बनी हैं। किनारे पर गोलाई में निम्न लेख जिस का कि आरंभ बादशाह के बाएँ हाथ के नीचे से है, मौजूद है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सिक्का ज़द बर सीमोज़र अज़ फ़ज़्ले रब्बे ज़ुलमनन।
ग़ाज़ीउद्दीं हैदरे आली नसब शाहे ज़मन। सन् अहद।[1]

इस का अर्थ है—

"महान् और सर्वशक्तिमान् ईश्वर की कृपा से सोने और चाँदी का सिक्का अंकित किया—संसार के शाह और उच्च वंश के ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने।"

दूसरी तरफ़ मार्का है। उस में दो शेर हाथों में झंडा लिए दिखाए हैं। इन झंडों पर मछलियाँ बनी हैं। दोनों झंडों के बीच एक कटार है। कटार के ऊपर ताज और नीचे दो मछलियाँ हैं, जिन की गोलाई से एक दायरा बन जाता है। सब से नीचे एक लहरदार बारीक झंडा है। दाहिने किनारे पर केवल ح अक्षर है और किनारे पर गोलाई में आशीर्वाद का यह शेर है—

ता हज़ार साल शाहा बक़ाय उम्र तो बादा।
हज़ार साल बाशी तू दर ज़मान ख़ुदा॥[2]

इस का अर्थ इस प्रकार है—

"हे शाह, तू हज़ार वर्ष की अवस्था को प्राप्त हो। तू हज़ार वर्ष तक ईश्वर के संसार में जीवित रहे।"

इस पदक पर नियम के प्रतिकूल बादशाह की एक आश्चर्यजनक शबीह अंकित है। प्रश्न यह उठता है कि—यकायक लगभग दो सौ वर्ष के बाद शबीह अंकित करने का विचार कैसे उठा? मुग़ल बादशाहों में केवल स्वतंत्र विचारों के बादशाह जहाँगीर ने, शरीयत अर्थात् धार्मिक आज्ञाओं के विरुद्ध, अपनी शबीह बनवाना पसंद किया था। इस प्रकार का अंतिम सिक्का हिज्री सन् १०२३ में अजमेर से जारी हुआ था, और उस पर यह शेर है—

---

१ سکہ زد بر سیم و زر از فضل رب ذوالمنن
غازی‌الدین حیدر عالی نسب شاہ زمن - سنہ احد

२ تا هزار سال شاها بقائے عمر تو بادا
هزار سال باشی تو در زمان خدا

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क़ज़ा बर सिक्कए ज़र कर्द तस्वीर।
शबीहे हज़रते शाहे जहाँगीर॥[१]

अर्थात्—

"भाग्य ने स्वर्ण के सिक्के पर हज़रत शाह जहाँगीर की शबीह का चित्र अंकित किया है।"

जहाँगीर के बाद किसी मुग़ल बादशाह ने अपनी शबीह नहीं बनवाई, यह धारणा अभी तक ठीक थी, परंतु सौभाग्य से अभी हाल में एक पदक बादशाह शाह आलम द्वितीय का प्राप्त हुआ है जिस पर कि शाह आलम की शबीह अंकित है। यह पदक भी जन्म, गद्दी पर बैठने और सल्तनत पर बहाल होने के उपलक्ष्य में जारी हुआ था। उस के एक तरफ़ यह लेख है—

विलादत दर सन् ११४०, जलूस दर सन् ११७३ बहाल शुद सल्तनत १२।[२]

अर्थात्—

"जन्म सन् ११४० (हिज्री); उत्तराधिकार सन् ११७३ (हि०), साम्राज्य-प्राप्ति १२ (वें वर्ष)।"

दूसरी ओर साधारण शेर है—

सिक्का ज़द दर हफ़्त किशवर सायए फ़ज़्ले इलाह।
हामिए दीने मुहम्मद शाह आलम पादशाह।[३]

अतएव यह जान पड़ता है कि ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने जिस तरह यह शेर आरंभ में अपने सिक्कों पर लिखा, संभवतः उसी प्रकार अपनी ताजपोशी के उपलक्ष्य में भी पदक पर अपनी शबीह अंकित कराई।

---

१ قضا بر سکه زر کرد تصویر
شبیه حضرت شاه جهانگیر

२ ولادت در سنه ۱۱۴۰ جلوس در سنه ۱۱۷۳
بحال شد سلطنت ۱۲

३ سکه زد در هفت کشور سایهٔ فضل اله
حامی دین محمد شاه عالم پادشاه

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने कई प्रकार के सिक्के जारी किए—

(क) पहले प्रकार का सिक्का सन् १२३४ हिज्री में शाह आलम के नाम से जारी किया (प्लेट २, नं० १)। इस के पहली तरफ़ यह शेर अंकित है—

सिक्का जद दर हफ़्त किशवर सायए फ़ज़्ले इलाह।
हामिए दीने मुहम्मद शाह आलम पादशाह।[1]

अर्थात्—

"सात देशों में और ईश्वर की कृपा की छाया में, मुहम्मद के धर्म की रक्षा करने वाले शाह आलम बादशाह ने सिक्का अंकित किया।"

दूसरी ओर अवध का मार्का है, जिस में दो मछलियों के बीच उस के उत्तराधिकार की तिथि लिखी है और टकसाल 'सूबा अवध दारुलमारत लखनऊ' है। मछलियों के ऊपर कटार और ताज हैं और उन के दाएँ-बाएँ झंडा लिए हुए शेर हैं।

(ख) दूसरे प्रकार का सिक्का भी सन् १२३४ हिज्री में अपने नाम से जारी किया परंतु उस पर सन् जलूस या उत्तराधिकार की तिथि ५ इस कारण लिखा है कि वह वास्तव में पाँच वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १२२९ हिज्री में अपने पिता के स्थान पर नवाब वज़ीर नियुक्त हो चुका था।

(ग) तीसरे प्रकार का सिक्का भी सन् १२३४ हिज्री में अपने ही नाम से जारी किया, परंतु इस में सन् जलूस ५ के स्थान पर १ अंकित है क्योंकि उस की बादशाहत का यह पहला वर्ष था, और उसी वर्ष उस की ताजपोशी भी नियमित रूप से हुई थी। इन सिक्कों (प्लेट २, नं० २) पर एक तरफ़ यह शेर अंकित है—

सिक्का जद बर सीमोज़र अज़ फ़ज़्ले रब्बे ज़ुल्मनन।
ग़ाज़ीउद्दीं हैदरे आली नसब शाहे ज़मन॥[2]

अर्थात्—

---

[1] वही पाठ है जो ऊपर दिया गया है।

[2] سکہ زد بر سیم و زر از فضل رب ذوالمنن
غازی‌الدین حیدر عالی نسب شاہ زمن

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"महान् सर्वशक्तिमान् ईश्वर की कृपा से उच्च वंश के तथा पृथ्वीतल के शाह ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने सोने तथा चाँदी का सिक्का अंकित किया।"

और दूसरी ओर (क) और (ख) की भाँति वही वाक्य तथा चिह्न बने हुए हैं।

(घ) चौथे प्रकार के सिक्के वे हैं जिन पर 'ज़रब सूबा अवध दारुल्सल्तनत' लखनऊ अंकित है। सन् १२३६ हिज्री में लखनऊ का संबोधन 'दारुलमारत' छोड़ कर 'दारुल्सल्तनत' हो गया था और यह सिक्के उसे सूचित करते हैं। (प्लेट २, नं० ३)

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने सन् १२४३ हिज्री में मृत्यु पाई और नसीरुद्दीन हैदर दूसरे बादशाह हुए। उन के काल के पहले दो वर्ष के सिक्कों (प्लेट २, नं० ४) पर उन का नाम सुलैमान जाह है और निम्न शेर है—

बर हर सिक्का शाही ज़दह ज़े लुत्फ़े इलाह।
सिपहर मर्तबा शाहे जहाँ सुलैमान जाह॥[1]

अर्थात्—

"संसार में, ईश्वर की कृपा से, दुनिया के शाह कीर्तिशाली सुलैमान जाह के नाम पर शाही सिक्का अंकित हुआ है।"

तीसरे वर्ष यह शेर बदला और सिक्कों पर बादशाह का नाम नसीरुद्दीन हैदर हुआ। (प्लेट २, नं० ५)

सिक्का ज़द बर सीमोज़र अज़ फ़ज़्ल हक़ ज़िल्ले इलाह॥[2]
नायबे मेहदी नसीरुद्दीन हैदर बादशाह॥

अर्थात्—

"ईश्वर की कृपा से, सोने और चाँदी का सिक्का मेहदी के नायब नसीरुद्दीन हैदर ने अंकित कराया।"

---

१ بر ہر سکہ شاہی زدہ ز لطف الہ
سپہر مرتبہ شاہ جہان سلیمان جاہ

२ سکہ زد بر سیم و زر از فضل حق ظل الہ
نائب مہدی نصیرالدین حیدر بادشاہ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शासन के सातवें वर्ष में सिक्के की दूसरी तरफ़ कुछ परिवर्तन हुआ (प्लेट २, नं० ६)। चिह्न और वाक्य वही रहे, केवल वाक्य ऊपर-नीचे लिखने के स्थान पर किनारे की गोलाई में एक ही पंक्ति में लिखा गया, और उत्तराधिकार की तिथि सिक्के के मध्य से हटा कर उसी पंक्ति में रक्खी गई।

नसीरुद्दीन हैदर की मृत्यु पर उस का चचा मुहम्मद अली शाह शाही तख़्त पर सन् १२५३ हिज्री में बैठा। उस ने सोने और चाँदी के सिक्कों पर एक नए प्रकार का मार्का चलाया। इस में शेर के स्थान पर दो स्त्रियाँ हैं जो कि उस के उत्तराधिकार के पहले और दूसरे वर्ष में नंगे सिर हैं, और बाद में नुकीली छज्जेदार पगड़ी पहने हैं। (प्लेट २, नं० ७-८) सिक्कों पर यह शेर पाया जाता है—

बजूदो करम सिक्का ज़द दर जहाँ।
मुहम्मद अली बादशाहे ज़माँ।।[१]

अर्थात्—

"विश्व के बादशाह मुहम्मद अली ने उस की कृपा और अनुकंपा से संसार में सिक्के अंकित किए।"

मुहम्मद अली शाह के प्रथम तीन वर्ष के सिक्कों के दूसरी ओर 'ज़रब सूबा अवध वैतुल्सल्तनत लखनऊ है,' मगर सन् १२५६ हिज्री से ('मुल्क अवध' 'सूबा अवध' के स्थान पर लिखा है।

सन् १२५८ हिज्री में मुहम्मद अली शाह के बाद उस का बेटा अमजद अली तख़्त पर बैठा। उस के शासनकाल के सिक्कों पर (प्लेट २, नं० ९) यह लेख अंकित है—

दर जहाँ ज़द सिक्कए शाही बताईदे इलाह।
ज़िल्ले हक़ अमजद अली शाहे ज़मन आलम पनाह।।[२]

अर्थात्—

---

१ بجود و کرم سکه زد در جهان
محمد علی بادشاه زمان

२ در جهان زد سکهٔ شاهی بتائید اله
ظل حق امجد علی شاه زمن عالم پناه

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"ईश्वर की कृपा से संसार में अमजद अली, अपने युग के शाह ने, संसार के रक्षक तथा ईश्वर की छाया में शाही सिक्का चलाया।"

और दूसरी तरफ़ यह मार्का है—अर्थात् एक घूमी हुई मछली, ऊपर ताज और छत्र हैं और उन के दाएँ और बाएँ किंचित् गोलाई में दो तलवारें हैं और यह लेख है—'ज़रब मुल्क अवध बैतुल्सल्तनत लखनऊ सन् जलूस मैमनत मानूस।' इस के सिक्कों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। कुछ तनिक से परिवर्तन, जैसे ताज के ऊपर की बिंदी, या मेहराब या पंक्तियों में, अवश्य मिलते हैं।

सन् १२६३ हिज्री में वाजिद अली शाह गद्दी पर बैठा। उस के सिक्के (प्लेट २, नं० १०) की पहली तरफ़ यह शेर है—

सिक्का ज़द बर सीमोज़र अज़ फ़ज़्ले ताईदे इलाह।
ज़िल्ले हक़ वाजिद अली सुल्ताने आलम बादशाह॥[1]

अर्थात्—

"ईश्वर की कृपा से, दुनिया के सुल्तान वाजिद अली शाह ने सोने और चाँदी का सिक्का चलाया।"

और दूसरी तरफ़ मार्का या निशान शाही है जिस पर पुनः परिवर्तन हुआ है और स्त्रियों के स्थान पर मछलीदार परियाँ बनाई गई हैं और पूरा निशान इस प्रकार है। दाएँ और बाएँ दो मछलीदार परियाँ जिन के एक हाथ में झंडा और दूसरे हाथ में मुगदर और बीच में ढाल है। उस के ऊपर ताज और ताज के ऊपर छत्र और छत्र के ऊपर तोता है। यह तोता साफ़ नहीं दिखाई देता परंतु वाजिद अली शाह के फ़रमान पर जो मुहर है उस में बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देता है। और नीचे की ओर दो तलवार और दो तिरछे मुगदर हैं। सब से नीचे लहरदार झंडा या लकीर है। लेख यह है—'ज़रब मुल्क अवध बैतुल्सल्तनत लखनऊ सन् जलूस मैमनत मानूस।'

सन् १२६७ हिज्री में वाजिद अली शाह ने अपने सिक्के की दूसरी तरफ़ 'ज़रब मुल्क अवध बैतुल्सल्तनत लखनऊ' के स्थान पर 'मुल्क अवध अख़्तरनगर' रक्खा,

---

[1] سکه زد بر سیم و زر از فضل تائید اله
ظل حق واجد علی سلطان عالم بادشاه

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्योंकि बादशाह स्वयं कवि था और उस की कविता का उपनाम 'अख़्तर' था। इस प्रकार के सिक्के बहुत ही दुष्प्राप्य हैं, संभवतः इस लिए कि इसी वर्ष ज़रब या टकसाल के नाम में फिर परिवर्तन हुआ और 'मुल्क अवध अख़्तरनगर' के स्थान पर 'बैतुल्सल्तनत लखनऊ मुल्क अवध अख़्तरनगर' हुआ (प्लेट २, नं० ११-१२)।

वाजिद अली शाह के सिक्के बहुत सुंदर बनावट के हैं। रुपए के अतिरिक्त चाँदी की अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी, और एकन्नी पाई जाती हैं। अशरफ़ी और आधी अशरफ़ी भी मिलती हैं। ऐसे सिक्के और अन्य बादशाहों के भी, जिन का वर्णन ऊपर आ चुका है प्राप्त हुए हैं।

अशरफ़ी की तौल १६४-१६५ ग्रेन है, और रुपए की तौल १७०-१७२ ग्रेन है। पैसे की तौल १८० से २०० ग्रेन तक है, यद्यपि वाजिद अली शाह ने एक पैसा ४५१ ग्रेन का भी जारी किया था। उस का एक नमूना मिस्टर ब्राउन के संग्रह में है। अधन्ने भी मुहम्मद अली शाह और अमजद अली शाह के प्राप्त हुए हैं और जनाब बाम्फ़ोर्ड साहब के संग्रह में हैं, परंतु यह बहुत दुष्प्राप्य हैं।

अवध के सिक्कों पर विचार करने से मालूम हुआ है कि यह सिक्के मुग़ल बादशाहों के सिक्के के अनुकरण में बनाए गए थे। प्रकार तौल और लेख मिलते-जुलते हैं। इन सिक्कों पर बादशाहों की ऊँची-ऊँची पदवियाँ भी पाई जाती हैं। जैसे ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने अपनी पदवी 'शाहज़माँ' रक्खी है, अमजद अली ने 'आलम पनाह' और वाजिद अली ने 'सुल्तान आलम' रक्खी है। और इसी प्रकार लखनऊ को भी प्रतिष्ठा प्रदान की है और ऐसे संबोधन जैसे 'दारुलमारत', 'दारुलसल्तनत', 'बैतुल्सल्तनत' और 'अख़्तरनगर' प्रदान किए हैं।

जो कुछ भी हो लखनऊ को यह गर्व प्राप्त है कि तत्कालीन शासकों द्वारा उस की प्रतिष्ठा होती आई है, और वर्तमान सरकार का भी उस पर विशेष ध्यान है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिल्ली के सुल्तानों के युग में उमराव वर्ग

[लेखक—डाक्टर बनारसीप्रसाद सक्सेना, एम्० ए०, पी-एच्० डी० (लंदन)]

(क्रमागत)

बहलोल लोदी के राज्यकाल में अफ़ग़ानी अमीर सुल्तान के अधीन रहे। कारण यह कि वह उन के साथ भाई-बंदों जैसा व्यवहार करता था और कभी भी उन पर शान जमाने का प्रयत्न न करता। उसे अपने अमीरों के संतोष का इतना ध्यान रहता कि भोज आदि के अवसरों पर न वह स्वयं तख़्त पर बैठता और न अमीरों को खड़ा ही रहने देता। आम दरबार के अवसर पर भी वह केवल एक क़ालीन पर बैठ जाता था। 'तारीख़-ए-दाऊदी' के लेखक का कथन है कि अपने फ़रमानों में वह अमीरों को 'मसनद आला' की उपाधि के साथ संबोधित करता था। यदि किसी समय कोई अमीर सुल्तान से असंतुष्ट हो जाता तो बहलोल सब प्रकार से उसे प्रसन्न करता था। वह उस के घर जाता और कमर से अपनी तलवार खोल कर उस के सामने रख देता। कभी-कभी ऐसा भी करता कि अपनी पगड़ी उतार कर अमीरों के सामने रख देता और क्षमा माँगता और कहता कि—"यदि आप मुझे इस पद के योग्य नहीं समझते, तो किसी और को चुन लीजिए और मुझे कोई दूसरा काम दे दीजिए"। इतने विनय और दीनता को देख कर भला किस अमीर का इतना कड़ा हृदय हो सकता था, जो न पसीजता? ऐसे सीधे सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह की क्या आवश्यकता थी? परंतु यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि बहलोल ने इस प्रकार का व्यवहार समय की गति को देख कर निर्धारित किया था। स्वयं वह न तो निर्बल ही था और न मूर्ख। बात यह थी कि उस को उस समय इस बात की आवश्यकता थी कि अपने देशवासियों की सहायता से अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना ले। परंतु आगे चल कर यह ढंग सल्तनत के लिए हानिकर सिद्ध हुआ। जब बहलोल गवालियर से इटावा होता हुआ दिल्ली की ओर वापस आ रहा था तो सकेट स्थल पर वह बहुत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बीमार हो गया। उस की बुरी दशा को देख कर अमीरों ने विद्रोह आरंभ कर दिया। सुल्तान ने तो यह प्रबंध किया था कि उस की मृत्यु के अनंतर गद्दी का स्वामी उस का दूसरा पुत्र निज़ाम ख़ाँ हो। परंतु अफ़ग़ानी अमीरों ने यह आपत्ति प्रस्तुत की कि निज़ाम ख़ाँ चूंकि एक सुनारिन का जाया है, इस लिए वह राजगद्दी का अधिकारी नहीं हो सकता। यहाँ तक तो अमीरों में एक मत था, परंतु इस बात का निर्णय करना कि फिर कौन पदाधिकारी होगा, कठिन था। अतएव अमीरों का वर्ग तीन भागों में बँट गया। प्रथम तो वह जो निज़ाम ख़ाँ के प्रतिपक्षी थे। दूसरे वह जो जौनपूर के शासक बारबक शाह का पक्ष ले रहे थे। और तीसरे वह जो कि आज़म हुमायूँ के अधिकारों पर ज़ोर दे रहे थे—इस आधार पर कि वह सुल्तान के सब से बड़े लड़के का लड़का है। कहने का तात्पर्य यह है कि अवसर पाते ही अमीरों ने स्वार्थ और स्वतंत्रता का आश्रय लिया। सौभाग्यवश सिकंदर इतना चतुर और समझदार था कि उस ने अत्यंत अच्छे ढंग से अमीरों को अपने हाथ में रक्खा, यद्यपि इस में संदेह नहीं कि उस ने उन के अधिकारों में बहुत कुछ कमी कर दी और यह बात भी उन के मन में बैठाने का प्रयत्न किया कि सुल्तान का आज्ञा-पालन उन का परम कर्त्तव्य है, और भाई-बंदी के व्यवहार का समय नहीं रहा। फिर भी जहाँ तक संभव था, उस ने अकारण अमीरों को नाराज़ नहीं किया। परंतु अमीर अपनी आदतों से बाज़ न आए। सुल्तान के विरुद्ध उन्हों ने षड्यंत्र भी रचे, और उसे तलवार की घाट उतारने का भी प्रबंध किया। परंतु सिकंदर हर समय आँख खोल कर काम करता था, यही कारण है कि वह अधिक काल तक सफलता के साथ राज्य करता रहा। यह पता चलता है कि उसी के राज्यकाल में यह प्रथा चली कि कुछ प्रतिष्ठित अमीर बारी-बारी से शाही महल पर रात के समय पहरा दिया करें। अमीरों को होश में रखने का यह बहुत अच्छा उपाय था। इस से उन को प्रत्येक समय इस बात का अनुभव होता रहता था कि उन का वास्तविक पद क्या है।

सिकंदर की मृत्यु के अनंतर जब इब्राहीम गद्दी पर बैठा तो एक बार फिर अमीरों ने इस बात का प्रयत्न किया कि शाही वंश में कलह के बीज बो दें। उन्हों ने नए सुल्तान को राय दी कि वह जौनपूर अपने भाई जलाल ख़ाँ के हाथ में कर दे। इब्राहीम ने इसे स्वीकार भी कर लिया। और जलाल ख़ाँ कुछ अमीरों सहित जौनपूर चला भी गया परंतु रापरी के हाकिम ख़ाँजहाँ नौहानी ने इस कार्यवाही के विरुद्ध स्वर उठाया उस ने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दरबारी अमीरों को बहुत कुछ बुरा-भला कहा और इब्राहीम को राय दी कि जलाल ख़ाँ को वापस बुला ले। परंतु चिड़िया अब पिंजड़े से उड़ गई थी। जलाल ख़ाँ भला क्यों वापस आता और कदाचित् आ भी जाता तो अमीर उसे कब आने देते ? अतएव इब्राहीम का बहुत-सा मूल्यवान् समय, इस जौनपूर वाले झगड़े का दमन करने में व्यतीत हुआ। वह अमीरों की ओर से विमुख हो गया और उस ने उन्हें दमन करने के लिए प्रत्येक उचित तथा अनुचित ढंग का प्रयोग किया। दरबार में वह उन्हें खड़ा रखता था और तरह-तरह से उन्हें अपमानित करता था। बहुतों को उस ने बंदी कर लिया और उन्हें क़त्ल करवा दिया। परिणाम यह हुआ कि अमीर विद्रोही हो गए और उन्हों ने हर तरफ़ उत्पात आरंभ किया। आज़म हुमायूँ फ़रमूली, दरिया ख़ाँ नूहानी, मियाँ हसन फ़रमूली, नासिर ख़ाँ नूहानी इत्यादि ने विद्रोह की आग को भड़काया। उधर पंजाब में दौलत ख़ाँ लोदी ने सुल्तान के अत्याचार से बचने के लिए बाहरी सहायता प्राप्त करने का प्रबंध किया। सल्तनत के समय का यह अंतिम राजनैतिक विद्रोह था, जिस के नेता अमीर थे और जिस के बाद हिंदुस्तान के इतिहास का आरंभ एक नए शीर्षक के साथ होता है।

इस संक्षिप्त वृत्तांत से उमराव वर्ग के राजनैतिक महत्व का स्पष्ट अनुमान हो जाता है। यह प्रकट है कि उन का अस्तित्व देश के मामलों के लिए कितना आवश्यक था। कितना ही चतुर और योग्य बादशाह क्यों न हो परंतु बिना परामर्श के उस के लिए सल्तनत का कार्य चलाना असंभव था। बलबन, अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद तुग़लक़ ऐसे स्वायत्त शासकों को भी परामर्श की आवश्यकता प्रतीत होती थी। इस के अतिरिक्त एक व्यक्ति के लिए अकेले यह असंभव था कि शासन की प्रत्येक बात को ध्यान में रख सके। दूसरे इतनी बड़ी सल्तनत के प्रबंध के लिए अधिकारी और हाकिम चाहिए थे। सुल्तान उन्हीं लोगों का विश्वास कर सकता था जो कि निकट का संबंध रखते थे। इन की गणना अमीर वर्ग में की जाती थी। अतएव यदि सल्तनत की उपमा एक व्यक्ति से दी जावे तो सुल्तान उस का ताप है और अमीर उस के अन्य अंग। जब तक कि शरीर के इन दोनों भागों में सामंजस्य बना रहता था, शासन-कार्य सुगमता से चलता रहता था। परंतु इन में से किसी में भी भेद पड़ जाता है तो राजनैतिक परिस्थिति में एक आंदोलन उपस्थित हो जाता है। ताप के बढ़ने और घटने दोनों अवस्थाओं में प्रत्येक अंग व्यर्थ हो जाते

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

थे। अर्थात् यह कि यदि सुल्तान बिल्कुल ही अमीरों की परवा न करता तो भी सल्तनत को हानि पहुँच जाती थी; या यदि सुल्तान अमीरों पर ही सल्तनत का सारा भार डाल देता तो ऐसी अवस्था में भी लाभ के स्थान पर हानि ही हो जाती थी। अतएव शासन के इन पुरज़ों को काम के योग्य रखने के लिए सुल्तान को अत्यंत दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता से कार्य लेना पड़ता था।

लेकिन कोई वंश अनंत समय तक स्थित न रह सकता था। इस लिए ऐसे योग्य लोगों की भी समय-समय पर आवश्यकता पड़ती रहती थी जो तत्कालीन वंश के अनंतर एक नए वंश की नींव डाल सकें। सुल्तानी शासन-काल के अमीरों ने इस कार्य को बहुत ही अच्छे ढंग से किया। अतएव उन की उपस्थित की हुई क्रांतियों के बुरे पक्ष हैं तो साथ ही अच्छे पक्ष भी हैं।

उमराव वर्ग की राजनीतिक अवस्था पर विचार करने के उपरांत यह भी आवश्यक जान पड़ता है कि कुछ प्रकाश उस की सांस्कृतिक और आर्थिक अवस्था पर भी डाला जाय। इस में संदेह नहीं कि अमीरों के पास रुपया बाहुल्य से होता था। बाहरी देशों से लोग आते ही इस लिए थे कि हिंदुस्तान में ख़ूब रुपया इकट्ठा करें। दूसरे सुल्तानो शासन-काल के आरंभ में शासकों ने देश को अधिकार में लाने की एक विचित्र युक्ति निकाली थी। वह यह कि जब कोई सर्दार अफ़ग़ानिस्तान आदि से आता था तो उस के अधिकार में कोई अविजित इलाक़ा कर दिया जाता था। उस को पूरी स्वतंत्रता रहती थी कि किसी प्रकार भी उस पर अधिकार कर ले। जो कुछ धन उस के हाथ लगे वह सब अपने पास रक्खे। कभी-कभी उस में से थोड़ा बहुत भेंट के रूप में सुल्तान के पास भेज दिया जाता था। इख़्तयारुद्दीन बिन बख़्तियार ख़िलजी के कारनामे इस ढंग के उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ऐसे सर्दारों से केवल इतनी ही आशा की जा सकती थी कि वह सिक्का और ख़ुतबा सुल्तान के ही नाम का विजित देश में प्रचलित रक्खें। दूसरे, हिंदुओं के विद्रोह को दूर करने के लिए सुल्तानों को निरंतर युद्ध करना पड़ता था। युद्धकाल में वैरियों के धन और संपत्ति को छीन लेना पूर्णतया न्याय-संगत था। उमराव की आमदनी का यह दूसरा स्रोत था। इस के अतिरिक्त उमराव की वास्तविक आमदनी इलाक़ों तथा पदों से होती थी। प्रत्येक बड़े अमीर के हाथ में किसी न किसी विभाग का प्रबंध दे दिया जाता था। उस विभाग की आय का कुछ भाग तो वह केंद्रीय ख़ज़ाने में भेज दिया

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करता था और शेष या तो अपनी सेना पर व्यय करता था या उसे अपनी जेब में रखता था।

इस काल में सरकारी पदाधिकारियों के क्या वेतन थे? इस का सम्यक् रूप से अनुमान करना तो संभव नहीं है, परंतु इतिहास-लेखकों ने समय-समय पर जो बातें अंकित की हैं, उन से कुछ मोटे परिणाम अवश्य निकाले जा सकते हैं। उदाहरण के लिए इल्तुतमिश ने मलिक सैफ़ुद्दीन ऐबक को सरजामदारी के पद पर नियुक्त करते समय उस का तीन लाख जीतल वेतन नियुक्त किया था। परंतु सैफ़ुद्दीन को इस से संतोष न हुआ। जब इल्तुतमिश को यह मालूम हुआ तो उस ने सैफ़ुद्दीन से पूछा कि क्या बात है? सैफ़ुद्दीन ने डरते-डरते उत्तर दिया—"जहाँपनाह, आप ने इस दीन को ऐसे ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित किया है कि जहाँ रह कर हिंदू और मुस्लिम प्रजा को धन एकत्र करने के उद्देश्य से सताना असंभव है और इस के अतिरिक्त कोई और तदबीर शानशौकत बनाए रखने की है नहीं।" जलालुद्दीन फ़ीरोज़ ख़िलजी ने उदारता के जोश में आ कर एक मुंडहर के लड़के को वकीलदार नियुक्त किया और उस का वेतन एक लाख जीतल कर दिया। जब कि जलालुद्दीन समाना और कैथल प्रदेशों का नायब था उस समय एक बार इस मुंडहर के पिता से उस का सामना हो गया। मुंडहर की तलवार से जलालुद्दीन के मुँह पर ऐसे घाव लगे कि उन के निशान जन्म भर बने रहे। अतएव इस मुंडहर की बहादुरी का ख़याल कर के जलालुद्दीन ने उस के लड़के को कृपापात्र बनाया।

'मसालकुल्आबसार' के लेखक ने मुहम्मद तुग़लक़ के शासन-काल के पदाधिकारियों के वेतन की चर्चा की है, जैसे उस के चारों वज़ीर बीस से ले कर चालीस हज़ार टंका वार्षिक वेतन पाते थे। विशेष अधिकारियों के वेतन दस हज़ार टंका वार्षिक थे। कुछ के वेतन पचास हज़ार टंका वार्षिक तक थे। सद्र-जहाँ और शैख़ुल-इस्लाम को साठ हज़ार टंका वार्षिक मिलते थे, और मुहतसिब को एक गाँव मिला हुआ था जिस की आमदनी आठ सौ टंका थी। ख़ान का वेतन दो लाख टंका होता था। उस में से उसे कुछ भी फ़ौज पर नहीं व्यय करना होता था। मलिक का वेतन पचास-साठ हजार टंके के बीच होता था, और अमीर का तीस-चालीस हज़ार के बीच। सिपहसालार का वेतन लगभग बीस हज़ार टंका, अन्य अधिकारियों का एक हज़ार से ले कर दस हज़ार तक। ममलूक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पाँच सौ टंका वार्षिक पाते थे। यह वेतन उन को नक़द दिया जाता था। संभव है कि शहाबुद्दीन के वर्णन में कुछ अतिशयोक्ति हो, लेकिन इब्न बतूता लिखता है कि जब मुहम्मद तुग़लक ने खुदावंदज़ादा ज़ियाउद्दीन को मीरदाद नियुक्त किया तो उस को पचास हज़ार दीनार वार्षिक की जागीर भी प्रदान की। स्वयं इब्न बतूता को पहले-पहल पाँच हज़ार की जागीर मिली। इस के बाद उस का वेतन बारह हज़ार वार्षिक हो गया। शम्श सिराज अफ़ीफ़ लिखता है कि फ़ीरोज़शाह ने अपने वज़ीर ख़ाँजहाँ का तेरह लाख टंका वेतन नियुक्त किया और उस के अमीरों में से किसी का भी वेतन सात या आठ लाख टंका से कम न था। अतएव इस शासन-काल में जितने ख़ान और मलिक थे सभी रुपए से मालामाल थे। जब मलिक शाहीन-शहना व नायब अमीर मजलिस ख़ास ने मृत्यु पाई और उस के छोड़े हुए माल की जाँच की गई तो पचास लाख टंका नक़द, अन्य हीरा-जवाहर और मूल्यवान् वस्तुओं के अतिरिक्त मिले। इसी प्रकार से एमादुल्मुल्क बशीर सुल्तानी के विषय में अफ़ीफ़ ने लिखा है कि उस के पास करोड़ों रुपया था। एक बार उसे टाट की थैलियाँ बनवाने की आवश्यकता हुई तो ढाई हज़ार टंकों का टाट ख़रीदा गया। जब एमादुल्मुल्क के सामने नित्य का हिसाब पेश हुआ तो उस ने इस रक़म पर आपत्ति की और कहा कि जब ख़ज़ाना अधिक हो गया है तो उसे थैलियों में रखने की आवश्यकता नहीं। उस को खत्तों में गल्ले की भाँति भर देना चाहिए। अतएव ऐसा ही किया गया। लोदी शासन-काल में एक अमीर मियाँ मुहम्मद कालापहाड़ के पास ३०० मन सोना था। सुल्तानों के शासन-काल में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिन से कि अमीरों की अमीरी में कोई संदेह नहीं रह जाता।

लेकिन यह अमीर जितने रुपए के अमीर थे उतने ही हृदय के भी उदार थे। इस लिए कि उन की सारी दौलत और संपत्ति निजी होती थी, उन्हें मितव्यय का किंचित् ध्यान नहीं आता था। दूसरे अपनी मर्यादा बनाए रखने के लिए यह आवश्यक था कि खूब उदारता से वह ख़र्च करें। बल्बनी अमीर मलिक अलाउद्दीन कशली ख़ाँ के विषय में यह परंपरा है कि दान देने में वह बड़ा ही निपुण था। उस समय ख़्वाजा शम्श मुईन जीवित था। उस ने एक कविता अलाउद्दीन की प्रशंसा में लिखी और दरगाह बलबनी के मुतरिबों को याद करा दी। जब वह पढ़ी गई तो अलाउद्दीन ने अपने अस्तबल के सारे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घोड़े शम्श मुईन को पुरस्कार रूप में दे दिए। और मुतरिबों को दस हज़ार टंके दिए। इसी काल में एक और मलिक था, जिस का नाम था एमादुल्मुल्क रावत अर्ज़। उस के साथ कचहरी के पचास या साठ कर्मचारी नित्य खाना खाते थे। उस को पान खाने की इतनी बान थी कि पचास या साठ तंबोली हर समय पान लगाने में लगे रहते थे। तीसरे मलिक फ़खरुद्दीन, दिल्ली के कोतवाल की यह हालत थी कि उस के यहाँ दस बारह हज़ार क़ुरान पढ़ने वाले नौकर थे। वह प्रति दिन एक नया जोड़ा वस्त्र का पहनता था और उतरे हुए वस्त्र को पुरस्कार में दे देता था। इतना ही नहीं, वरन् उस की चारपाई और बिछौने भी नित्य नए होते थे। प्रति वर्ष हज़ारों लड़कियों के लिए दहेज़ प्रदान करता था। इसी प्रकार बलबनी काल में एक और अमीर था जिस का नाम अमीर अली सरजामदार था। अमीर खुसरो उसी के यहाँ नियुक्त था। यह अमीर सौ टंका से कम कभी किसी को देता ही न था। जीतल शब्द तो उस की जीभ से निकलता ही न था। उस की उदारता का समाचार सुन कर बलबन को बड़ी प्रसन्नता होती थी। एक बार बादशाह ने उसे बुला कर कहा—'ऐ अमीर अली, मैं ने सुना है कि तू शराब के नशे में हो कर इतने खुले दिल से धन लुटाता है! मानने की तो तब बात है जब तू अपनी सुध-बुध में किसी को कुछ दे।" यह सुनते ही अमीर अली ने शराब से तौबा कर ली, परंतु अपनी उदारता में किंचित् भी कमी न की, वरन् उस में और भी वृद्धि की। बरनी लिखता है कि बलबन के काल में उस के अमीरों के बीच द्वेषभाव न था, वरन् यदि एक को मालूम हो जाता कि अमुक के यहाँ पाँच सौ आदमी भोजन करते हैं तो वह अपने यहाँ एक हज़ार को खिलाता। इसी प्रकार यदि किसी को पता चलता कि अमुक सवारी के समय दो सौ टंका निछावर करता है तो वह चार सौ देता, यद्यपि दान के बाहुल्य के कारण उमराव व मलिक लोग सदा ऋण की ज़ंजीर से जकड़े रहते थे।

जिस समय कि जलालुद्दीन फ़ीरोज़ खिलजी अर्ज़ मुमालक था उसी समय से वह अमीर खुसरो का संरक्षक बन गया था और बारह हज़ार टंका, जो कि अमीर के पिता का वज़ीफ़ा था उस के लिए भी नियत कर दिया था। इस के काल में मलिक क़ुतुबुद्दीन अलवी था जो कि अपरिमित धन दान दिया करता था। कहा जाता है कि अपने बड़े लड़के के विवाह के अवसर पर उस ने दो लाख टंके व्यय किए और विवाह के दिन सौ घोड़े साज-सामान सहित बख्शीश में दिए और एक हज़ार आदमियों को जोड़े पहिनाए। उसी का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साथी था मलिक अहमद चप जिस ने एक रोज़ शाही नौकरों-चाकरों को निमंत्रित किया और उन को एक लाख टंके इनाम में दिए और दो या तीन सौ ख़िलअतें दीं। मलिक नसरत सब्बाह की ऐसी आदत थी कि वह किसी प्रार्थी को अपने दर से वापस न करता था और किसी न किसी प्रकार उस की आवश्यकताओं की निवृत्ति करता था। अपनी दान-शीलता के कारण वह सदा ऋणी रहता था और महाजन उस का पीछा न छोड़ते थे। अलाउद्दीन के काल में तो अमीर प्रायः निर्धन ही हो गए। उस की मृत्यु के उपरांत अमीरों ने फिर से दौलत जोड़ना आरंभ किया। उस के बेटे के वज़ीर ख़ुसरो ख़ाँ के भृत्यों की बहुत बड़ी संख्या थी और जब अवसर आया उस ने दोनों हाथों से धन लुटाया। ग़यासुद्दीन के काल में किसी ऐसे अमीर का हाल नहीं मिलता जो रुपया व्यय करने में उत्साही हो। परंतु मुहम्मद तुग़लक के समय में इस के कई उदाहरण मिलते हैं। मीर क़बूल एक ऐसा अमीर था जो अपने निजी भृत्यों पर ३½ लाख टंके वार्षिक व्यय किया करता था। इब्न बतूता यद्यपि साधारण पदाधिकारी था तथापि सदा महाजनों के तक़ाज़ों से तंग रहता था। अतएव इस संकट से मुक्ति पाने के लिए उस ने सुल्तान की प्रशंसा में एक पद्य लिखा जिस के परिणाम-स्वरूप सरकारी ख़जाने से उस का ऋण चुका दिया गया। फ़ीरोज़ तुग़लक के शासन-काल में बशीर सुल्तानी ने चार हज़ार क्रीत दासों को स्वतंत्र कर दिया और उन्हें इनाम भी दिए। वज़ीर ख़ाँजहाँ ने एक जोड़े मोज़े पर अस्सी हज़ार टंके व्यय किए। क़ाज़ी सदरुल्मुल्क के लड़के ने एक वेश्या से संबंध कर लिया था जिस के लिए नित्य पाँच मन फूँके हुए मोतियों का चूना आवश्यक होता था और यह प्राप्त किया जाता था। सैयद और लोदियों के समय में भी उमराव के यही ढंग रहे।

धन के बाहुल्य के कारण यह आवश्यक न था कि अमीर लोग नालायक़ होते। इस के प्रत्युत चूंकि इस युग के बादशाह स्वयं शिक्षित होते थे और विद्या तथा कला का संरक्षण करते थे, इस लिए उमराव का सदा यह प्रयत्न रहता था कि अपने निजी ज्ञान की वृद्धि करते रहें। यह लोग विद्वानों के संपर्क से सदा लाभ उठाते रहते और अपनी योग्यता बढ़ाते रहते थे। उन्हें ऐसा करने की आवश्यकता भी थी, क्योंकि बिना ज्ञान के देश के कार्यों में सफलता तथा उन्नति प्राप्त करना असंभव था। मिनहाज सिराज ने लिखा है कि इल्तुतमिश के अमीर हाजिब ने पढ़ने-लिखने में इतना समय व्यय किया कि वह लोक-प्रिय हो गया। अमीर लोग केवल सैनिक ही न होते थे वरन् विद्वान और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लेखक भी। बलबन के समय में तो ज्ञान-विज्ञान तथा काव्य की चर्चा इतनी हुई कि सल्तनत के अमीरों के पास कवियों और विद्वानों का एक गिरोह रहने लगा, और जिस प्रकार अमीर लोग दान देने में एक दूसरे से प्रतिद्वंदिता रखते उसी प्रकार विद्या और ज्ञान में भी। देसी लोगों के उमराव वर्ग से पृथक करने में बलबन का कदाचित् एक उद्देश्य यह भी था कि देश में विद्या का प्रचार हो, क्योंकि यह प्रकट है कि नए मुस्लिमों की, जो अधिकांश नीची जातियों के होते थे, विद्या और ज्ञान में अभिरुचि बढ़ाना संभव नहीं था। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि साधारणतः अमीर शिक्षित होते थे। उन में से कई की रचनाओं की चर्चा इतिहास में आई है। जैसे क़िवामुद्दीन इलाक़ा जिस ने कि 'फ़तेहनामा लखनौती'' की रचना की; ताजुद्दीन इराक़ी के पिता कबीरुद्दीन जिस ने 'तारीखे-अलाई' लिखी; तातार ख़ाँ जिसने 'तफ़सीर-तातारख़ानी' और 'फ़तावए-तातारख़ानी' की रचनाएँ कीं। इन के अतिरिक्त और भी कई उदाहरण इस प्रकार के मिल सकते हैं। इस से प्रकट है कि सुल्तानी शासन-काल में उमराव वर्ग ने अपने परिश्रम, उदारता और दानशीलता से विद्या और कलाओं को प्रफुल्लित रक्खा।

परंतु ऊँची शिक्षा ने उन के रहन-सहन पर कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं डाला, और उन लोगों में वह सभी त्रुटियाँ बनी रहीं जिन का कि आज तक अमीरों से संबंध है। कुछ को छोड़ कर सभी को शराब पीने की आदत थी। इस के साथ जुआ भी होता था। नुसरत सब्बाह के विषय में बरनी ने लिखा है कि जिस मजलिस में वह जाता था जुआ अवश्य खेलता था और वह भी साधारण नहीं वरन् गहरा। नाच-गाने की महफ़िल तो नित्य ही किसी न किसी अमीर के यहाँ जमी रहती थी। मतरिबों और साज़िंदों की अत्यधिक माँग रहती थी। यदि नाच और गाने की उच्चता ही किसी युग की कला का माप हो तो निस्संदेह उमराव और सुल्तानों के संरक्षण में यह कला इस युग में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। ज़ियाउद्दीन बरनी इस का साक्षी है। इस के अतिरिक्त बादशाहों की भाँति अमीर भी कई विवाह किया क़रते थे और इन की संतान भी बड़ी होती थी। अतएव अफ़ीफ ने लिखा है:—'कि ख़ाँजहाँ के औलाद बहुत थी, कारण यह कि उस को अंतःपुर से बहुत प्रेम था। वह सदैव अपने हरम में स्त्रियाँ इकट्ठा करने का परिश्रम किया करता था। सुंदर व सुकुमार लौंडियाँ महल में जमा कर रक्खी थीं। कहते हैं कि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दो हज़ार रूमी व चीनी लौंडियाँ उस के हरम में थीं।'[1]

अमीर अपनी औरतों को परदे में रखते थे। तातार ख़ाँ अपनी रखेलियों को घोड़ों पर सवार न होने देता था और उन के परदे का उचित प्रबंध रखता था। लेकिन इस काल में भी कुछ अमीर ऐसे होते थे जो अपनी औरतों को घोड़ों पर सवार कर के अपने साथ सैर तथा शिकार में ले जाते थे। लेकिन यह प्रचलित प्रथा न थी। इब्न बतूता लिखता है—'औरतें इस देश में डोलियों में आती-जाती हैं, और इन डोलियों पर रेशम के परदे पड़े रहते हैं।' अमीरों के वीच भोज की क्या परंपरा थी और उस के क्या नियम थे इस का विस्तृत हाल इब्न बतूता के निम्न-लिखित वर्णन से मालूम होता है—"पहले रोटियाँ लाते हैं जो वहुत ही पतली-पतली चपातियाँ होती हैं। बकरी को भून लेते हैं और उस के चार या छः टुकड़े कर के एक-एक आदमी के सामने रक्खे जाते हैं। फिर घी में तली हुई रोटियाँ लाते हैं, जिस के भीतर हलवा सानूनिया भरा होता है और हर एक टिकिया के ऊपर एक मीठी रोटी रखते हैं जिस को ख़स्ती कहते हैं, और इस को आटे, शक्कर और घी से बनाते हैं। और फिर एक चीज़ लाते हैं जिस को समोसा कहते हैं और वह क़ीमा किया हुआ गोश्त होता है। इस में वादाम और जायफल और पिस्ता और प्याज़ और गरम मसाला डाल कर पतली चपातियों में लपेट देते हैं और फिर घी में तल लेते हैं। प्रत्येक आदमी के सामने चार या पाँच समोसा रखते हैं, और फिर चावल घी में पके हुए लाते हैं, और उस के ऊपर मुर्ग़ होता है। फिर लक़ीमात अल्क़ाज़ी लाते हैं, और उस को हाशमी भी कहते हैं। फिर क़ाहिरया लाते हैं। गृही भोजन आरंभ करने से पहले दस्तरख़ान पर खड़ा हो जाता है और सभी उपस्थित लोग वादशाह का सम्मान करते हैं·······और जब यह कर चुकते हैं तो दस्तरख़ान पर वैठते हैं और भोजन आरंभ करने से पहले सोने और काँच की पियालियों में मिश्री और गुलाव का शरबत पीते हैं। जव शरवत पी चुकते हैं तो गृही 'विस्मिल्लाह' कहता है। उस समय सब खाना आरंभ कर देते हैं। खाना समाप्त होने पर 'फ़िक़ा' के प्याले आते हैं, और जब फ़िक़ा पी

[1]ख़ाँ जहाँ रा पिसरान बिसियार बूदंद जे रा चे ऊ रग़बत ब हरम बिसियार दाश्त व बराये जमा कर्दन हरम कोशिश बिसियार गुमाश्त। कनीज़कान साहब जमाल बा कमाल दर हरम ख़ुद जमा कनानीद चुनांचे गोयंद दो हज़ार कनीज़क अज़ ज़मी रूमो चीन दर हरम ख़ुद दाश्त।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चुकते हैं तब पान-सुपारी आती है। जब पान सुपारी ले चुकते हैं तब गृही 'बिस्मिल्लाह' कहता है। सब उठ खड़े होते हैं और जिस तरह खाने से पूर्व बादशाह का सम्मान किया था फिर करते हैं, और फिर दस्तरखान से उठ कर चले जाते हैं।" इस वर्णन से स्पष्ट है कि उस समय भोज के अवसरों पर कैसा आवभगत होता था।

यदि यह लेख लोगों के विचारों को इस ओर आकृष्ट कर सके कि सुल्तानी युग में बादशाहों के हाल के अतिरिक्त और भी बहुत सी ज्ञातव्य और मनोरंजक बातें हैं जिन के विषय में अब तक हमारी जानकारी सीमित है तो मैं समझूँगा कि मेरा परिश्रम व्यर्थ नहीं गया। जिस प्रकार कि मुग़ल-कालीन उमराव का विस्तृत वृत्तांत 'मुआसिरुल्-उमरा' में अंकित है, उसी प्रकार अगर उतने नहीं तो उस के आधे विस्तार में सुल्तानी युग के अमीरों के वर्णन भी लेखनी-बद्ध किए जा सकते हैं और इस की अत्यंत आवश्यकता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दो हज़ार रूमी व चीनी लौंडियाँ उस के हरम में थीं।'[1]

अमीर अपनी औरतों को परदे में रखते थे। तातार ख़ाँ अपनी रखेलियों को घोड़ों पर सवार न होने देता था और उन के परदे का उचित प्रबंध रखता था। लेकिन इस काल में भी कुछ अमीर ऐसे होते थे जो अपनी औरतों को घोड़ों पर सवार कर के अपने साथ सैर तथा शिकार में ले जाते थे। लेकिन यह प्रचलित प्रथा न थी। इब्न बतूता लिखता है—'औरतें इस देश में डोलियों में आती-जाती हैं, और इन डोलियों पर रेशम के परदे पड़े रहते हैं।' अमीरों के बीच भोज की क्या परंपरा थी और उस के क्या नियम थे इस का विस्तृत हाल इब्न बतूता के निम्न-लिखित वर्णन से मालूम होता है—"पहले रोटियाँ लाते हैं जो बहुत ही पतली-पतली चपातियाँ होती हैं। बकरी को भून लेते हैं और उस के चार या छः टुकड़े कर के एक-एक आदमी के सामने रक्खे जाते हैं। फिर घी में तली हुई रोटियाँ लाते हैं, जिस के भीतर हलवा सानूनिया भरा होता है और हर एक टिकिया के ऊपर एक मीठी रोटी रखते हैं जिस को ख़स्ती कहते हैं, और इस को आटे, शक्कर और घी से बनाते हैं। और फिर एक चीज़ लाते हैं जिस को समोसा कहते हैं और वह क़ीमा किया हुआ गोश्त होता है। इस में बादाम और जायफल और पिस्ता और प्याज़ और गरम मसाला डाल कर पतली चपातियों में लपेट देते हैं और फिर घी में तल लेते हैं। प्रत्येक आदमी के सामने चार या पाँच समोसा रखते हैं, और फिर चावल घी में पके हुए लाते हैं, और उस के ऊपर मुर्ग़ होता है। फिर लक़ीमात अल्क़ाज़ी लाते हैं, और उस को हाशमी भी कहते हैं। फिर क़ाहिरया लाते हैं। गृही भोजन आरंभ करने से पहले दस्तरख़ान पर खड़ा हो जाता है और सभी उपस्थित लोग बादशाह का सम्मान करते हैं·······और जब यह कर चुकते हैं तो दस्तरख़ान पर बैठते हैं और भोजन आरंभ करने से पहले सोने और काँच की पियालियों में मिश्री और गुलाब का शरबत पीते हैं। जब शरबत पी चुकते हैं तो गृही 'बिस्मिल्लाह' कहता है। उस समय सब खाना आरंभ कर देते हैं। खाना समाप्त होने पर 'फ़िक़ा' के प्याले आते हैं, और जब फ़िक़ा पी

---

[1]ख़ाँ जहाँ रा पिसरान बिसियार बूदंद जे रा चे ऊ रग़बत ब हरम बिसियार दाश्त व बराये जमा कर्दन हरम कोशिश बिसियार गुमाश्त। कनीज़कान साहब जमाल बा कमाल दर हरम ख़ुद जमा कनानीद चुनांचे गोयंद दो हज़ार कनीज़क अज़ जमी रूमो चीन दर हरम ख़ुद दाश्त।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चुकते हैं तब पान-सुपारी आती है। जब पान सुपारी ले चुकते हैं तब गृही 'विस्मिल्लाह' कहता है। सब उठ खड़े होते हैं और जिस तरह खाने से पूर्व बादशाह का सम्मान किया था फिर करते हैं, और फिर दस्तरख़ान से उठ कर चले जाते हैं।" इस वर्णन से स्पष्ट है कि उस समय भोज के अवसरों पर कैसा आवभगत होता था।

यदि यह लेख लोगों के विचारों को इस ओर आकृष्ट कर सके कि सुल्तानी युग में बादशाहों के हाल के अतिरिक्त और भी बहुत सी ज्ञातव्य और मनोरंजक बातें हैं जिन के विषय में अब तक हमारी जानकारी सीमित है तो मैं समझूँगा कि मेरा परिश्रम व्यर्थ नहीं गया। जिस प्रकार कि मुग़ल-कालीन उमराव का विस्तृत वृत्तांत 'मुआसिरुल्-उमरा' में अंकित है, उसी प्रकार अगर उतने नहीं तो उस के आधे विस्तार में सुल्तानी युग के अमीरों के वर्णन भी लेखनी-बद्ध किए जा सकते हैं और इस की अत्यंत आवश्यकता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिंदी भाषा-संबंधी अशुद्धियाँ

[लेखक—डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)]

यदि भाषा-विज्ञान के उच्चतम सिद्धांत से देखा जाय तो वास्तव में अशुद्धि कोई चीज़ ही नहीं है। संस्कृत में 'क्षेत्र' रूप शुद्ध था, तो हिंदी में 'खेत' शुद्ध है; यदि व्रजभाषा में 'बड़ो' शुद्ध है, तो खड़ी बोली में 'बड़ा' शुद्ध है। किसी निश्चित देशकाल में बहुसंख्यक लोगों के प्रयोग से भिन्न प्रयोग को अशुद्ध नाम से पुकारा जाता है। इस तरह किसी भी भाषा का शुद्ध रूप देश, काल तथा बहुमत से सीमित है। इन सीमाओं की मर्यादा को तोड़ने से भाषा में उच्छृंखलता आने का भय होता है, इस लिए इसे क़ायम रखने की ओर शिष्ट समाज, समालोचक तथा वैयाकरण वर्ग सदा यत्नशील रहता है। किंतु यह सोच कर वास्तव में निराशा होती है कि यह समस्त प्रयत्न अल्पकालीन है। गुरु के हिंदी व्याकरण के लिए सौ दो सौ वर्ष के अंदर ही कात्यायन और वररुचि की आवश्यकता पड़ेगी।

अशुद्धि होने के अनेक कारण होते हैं—

(१) लेखक या बोलने वाले की अपनी बोली भिन्न होने के कारण आदर्श साहित्यिक भाषा में प्रादेशिक प्रयोग।

(२) उच्चारण की असावधानी से लिखावट में भूलों का आ जाना।

(३) लिपिदोष के कारण अशुद्धियाँ।

(४) विद्वत्ता प्रकट करने के मोह के कारण त्रुटियाँ। तथा

(५) उतावली के कारण भूलचूकें।

प्रादेशिक प्रयोग पहली कक्षा के विद्यार्थी की भाषा से ले कर हिंदी के बड़े से बड़े लेखक तक के लेख में पाए जाते हैं। बिहार प्रांत तथा काशी प्रदेश की हिंदी की बोलियों में 'ने' के प्रयोग तथा क्रिया में लिंग-भेद का प्रायः अभाव है। इस कारण इन प्रदेशों के लोग जब हिंदी लिखते या बोलते हैं तो इस तरह की ग़लतियाँ अक्सर हो जाती हैं। क्रिया में ठीक लिंग प्रयोग की कठिनाई गुणवाचक या जड़ वस्तुओं की द्योतक संज्ञाओं के साथ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विशेष पड़ती है—'जलराशि चाँदी ऐसा सफ़ेद मालूम पड़ता था'; 'पुस्तक बनाया है'; 'तकलीफ़ मालूम होगा'। 'ने' का या तो प्रयोग छोड़ दिया जाता है, या कभी-कभी ग़लत प्रयोग हो जाता है। जैसे, 'वह बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया', 'जयसिंह छोड़ दिये', 'दुनिया में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जो धोखा न खाये हो' या 'मैं ने ब्राह्मण-कुल में जन्म ले कर ब्रज चला आया'। ब्रज प्रदेश के विद्यार्थी 'करौ' (करो), 'सैना' (सेना), 'एसा' (ऐसा), 'केसी' (कैसी), 'तपाइ के' (तपा के) लिखते अक्सर पाए जाते हैं। मेरठ के तरफ़ की सरहिंदी बोलने वाले 'नहीं जाने का' (नहीं जायेगा), 'गेर दिया' (गिरा दिया), 'दीखे है' (दिखलाई पड़ता है) जैसे प्रयोग कर बैठते हैं। इसी प्रकार प्रादेशिक प्रभावों के कारण 'पैर' के स्थान पर 'गोड़', 'निगलना' के स्थान पर 'लीलना', 'सोना' के स्थान पर 'सूतना' आदि अक्सर मिल जाते हैं।

मेरा ख्याल है कि विद्यार्थी-वर्ग की अधिकांश अशुद्धियों का कारण प्रारंभ से शुद्ध उच्चारण की ओर ध्यान न दिलाया जाना है। 'ऋ' और 'र' के उच्चारण की गड़-बड़ी के कारण बहुत बड़ी संख्या में स्कूल के विद्यार्थी 'श्रंगार' (शृंगार), 'मात्रभाषा' (मातृभाषा), 'अम्रतसर' (अमृतसर) या 'पृथा' (प्रथा), 'बृजभाषा' (ब्रजभाषा), 'बृह्मा' (ब्रह्मा), 'पृकृति' (प्रकृति) लिखते पाए गए हैं। अंत्य ह्रस्व 'इ' को दीर्घ की तरह बोलने के कारण नीचे लिखे अशुद्ध रूप अक्सर दिखलाई पड़ते हैं—'लिपी', 'अग्नी', 'ऋषी', 'शांती', 'रात्री', 'प्राप्ती', 'अभिरुची', 'की' (कि)। दूसरी ओर दीर्घ ऊ का उच्चारण ह्रस्व के समान करने का कभी-कभी अभ्यास हो जाता है, और इस के फलस्वरूप 'मालुम', 'मुर्च्छा', 'दुसरे', 'मुल्यवान' ऐसे प्रयोग मिलते हैं। 'व' और 'श' के ठीक उच्चा-रण की ओर अब बहुत कम ध्यान दिया जाता है और इस का परिणाम यह हुआ है कि इन वर्णों वाले शब्द बहुत कम विद्यार्थी शुद्ध लिख पाते हैं। 'काव्य' को 'काब्य' और 'शाखा' को 'साखा' लिख देना स्कूली विद्यार्थियों के लिए साधारण बात है। अक्सर तो हिंदी के अध्यापक संस्कृतज्ञ 'पंडित जी' का उच्चारण ही गड़बड़ होता है। फिर बेचारे विद्यार्थियों का क्या दोष ? अशुद्धियों की निम्नलिखित सूची पर ध्यान देने से प्रत्येक का कारण अशुद्ध उच्चारण सिद्ध होगा—'छेपक' (क्षेपक), 'छत्री' (क्षत्रिय), 'इक्षा' (इच्छा), 'जोतिष' (ज्योतिष), 'रचैता' (रचयिता), 'दैनीय' (दयनीय), 'कलेश' (क्लेश), 'गुड़' (गुण), 'गड़ना' (गणना), 'षणयंत्र' (षड्यंत्र), 'इतहास' (इतिहास),

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'प्रियत्न' (प्रयत्न), 'ब्योहार' (व्यवहार), 'इसाई' (ईसाई), 'प्रसंशा' (प्रशंसा), 'अघ्यन' (अध्ययन), 'श्रेष्ट' (श्रेष्ठ) इत्यादि। उच्चारण-दोष के कारण प्रसिद्ध नाम तक अशुद्ध लिखे मिलते हैं, जैसे 'उपाध्या जी', 'द्वेदी जी', 'भारतेंदू हरीशचंद्र', 'जैसिंह'।

हिंदी की कुछ अशुद्धियों के कारण हमारी लिपि के दोष हैं। 'ऋ' (रि) और 'र' में उच्चारण-साम्य है किंतु लिपिभेद है तथा 'व' और 'ब' में उच्चारण-भेद है किंतु लिपिसाम्य है। इस के कारण जो गड़बड़ी होती है उस की ओर ऊपर ध्यान दिलाया जा चुका है। इसी प्रकार 'श' और 'ष' की गड़बड़ी के कारण 'श्लेश' (श्लेष), 'दोश' (दोष) आदि लिख जाना स्वाभाविक है। 'दृष्य' की अशुद्धि का कारण इस शब्द के अन्य रूप 'दृष्टि' इत्यादि हैं। 'ब' के संयुक्त रूपों में अक्सर भूल हो जाती है—जैसे 'शताद्वी' 'शद्व' इत्यादि। 'ज्ञ' (ज्+ञ) का उच्चारण हिंदी में प्रायः 'ग्य' हो गया है। इस कारण कभी कभी वास्तविक 'ग्य' के स्थान पर 'ज्ञ' लिखा मिल जाता है जैसे 'योग्य' के लिए 'योज्ञ'। 'ज्ञान' के लिए 'ग्यान' लिखना बहुत बड़ी अशुद्धि नहीं समझी जानी चाहिए। हिंदी में अधिकांश स्थलों पर शब्द या शब्दांश के अंत्य 'अ' का उच्चारण नहीं होता, किंतु यह लिखा जाता है,इस कारण हलंत्य के स्थान पर भी अकारांत रूप लिख देना एक स्वाभाविक ग़लती है। 'आशचर्य', 'अशलील', 'हरिशचंद्र', 'पशचात्', 'आवशयक', 'सन्धया' जैसे रूप अक्सर लिखे मिल जाते हैं। दूसरी ओर 'पश्चात' और 'अर्थात' लिखना है। चंद्रबिंदु और अनुस्वार की गड़बड़ी से तो प्रत्येक हिंदी लेखक परिचित है।

लिखने और बोलने की कुछ अशुद्धियों के मूल में विद्वत्ता प्रकट करने का मोह होता है। मध्यप्रांत के विद्यार्थी शीन-क़ाफ़ दुरुस्त होने का प्रमाण देने के लिये अक्सर 'फ़ौज़', 'मक़ान', 'मौज़ूद' व 'शरदी' लिख बोल बैठते हैं। संस्कृतज्ञ होने के लोभ को न रोक सकने के कारण 'माधुर्यता', 'चातुर्यता', 'सौंदर्यताई', जैसे प्रयोग हो जाते हैं। 'नुक़सान प्रद', 'शांतपन' और 'बेसमय' तो आदर्श हिंदुस्तानी शब्द माने जाने चाहिए !

परंतु वास्तविक अशुद्धियों की अपेक्षा उतावली के कारण भूल-चूकों की संख्या प्रायः सदा ही अधिक रहती है। लेख को दुबारा ध्यानपूर्वक देख लेने से इन में से अधिकांश ठीक हो सकती हैं। अक्षर, मात्रा या बिंदी को छोड़ देना, मात्रा या बिंदी ग़लत जगह पर लगा देना, 'ब' लिखने में अक्षर के पेट को न काटना विद्यार्थियों के लेखों में साधारण बात हैं और यह असावधानी दिन-दिन बढ़ती दिखलाई पड़ रही है। यह भुला दिया जाता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है कि यद्यपि ये बातें देखने में छोटी हैं किंतु इन की गड़बड़ी से 'बाग़' (वाटिका) का 'बाग' (वागडोर) और 'बोट' (नाव) का 'वोट' (मत) हो सकता है।

एक अंतिम श्रेणी असाधारण अशुद्धियों की भी बनाई जा सकती है। तद्धित शब्द संस्कृत के सिद्धांत पर बनाए जावें या हिंदी के इस गड़बड़ी के कारण 'पुराणिक', 'समाजिक', 'राजनीतिक' रूपों का प्रयोग हिंदी में सर्वमान्य सा होता जा रहा है। 'जाग्रत' और 'जागृति' के भेद का स्मरण रखना कठिन हो जाता है। 'दुःख' लिखने के बाद 'दुःखित' न लिखने के प्रलोभन को रोकना दुस्तर है। 'हुए' और 'हुये' या 'गए' और 'गये' या 'जायेंगे' और 'जावेंगे' आदि में सर्वसाधारण के अनुसार दोनों ही रूप अभी शुद्ध हैं। नई लिपिसुधार की आयोजना के अनुसार तो 'हुअे' और 'गअे' और 'जाअेंगे' भी भविष्य में अशुद्ध नहीं माने जावेंगे। शब्द को दुबारा लिखने के बजाय उस के आगे २ लिख देने में बहुत सुभीता मालूम होता है, यद्यपि साधारण भाषा में गणित के सिद्धांत का प्रयोग बहुत उचित नहीं है, इस के मानने में किसी को भी आपत्ति न होगी। अध्यापकों के 'प्रगट' को 'प्रकट' और 'उपरोक्त' को 'उपर्युक्त' बनाने के निरंतर उद्योग के रहने पर भी 'प्रगट' और 'उपरोक्त' को शुद्ध रूप मानने में थोड़ा ही विलंब है। 'आप आये हो' तो श्रद्धेय लोगों के मुख तक पहुँच जाने के कारण आर्ष प्रयोग की श्रेणी में रखना पड़ेगा।

मैंने यहाँ शब्दों तथा कुछ वाक्यों की अशुद्धियों की ही ओर ध्यान दिलाने का यत्न किया है। यदि मुहावरे की अशुद्धियों को लिया जावे तव तो 'विहारी की कविता कितनी सुंदर है—जी चाहता है कि उन का हाथ चाट लें', 'मुक्तक काव्य में एक ही विषय का सतुआ साना जाता है' जैसे रोचक उदाहरणों और बिल्कुल नए प्रयोगों से लेख भर जावेगा। हिंदी की साधारण अशुद्धियों के उपर्युक्त वर्गीकरण से अशुद्धियों के कारण स्पष्ट रीति से समझ में आ जाते हैं। इन कारणों पर ध्यान दे कर इलाज करने से अशुद्धियों से सहज में मुक्ति मिल सकती है।

एक अध्यापक और ऊँची-नीची तरह-तरह की परीक्षाओं के परीक्षक की हैसियत से मेरा ध्यान अशुद्धियों की ओर बराबर जाता रहा है। प्रस्तुत लेख में मैं ने संक्षेप में इस विषय की कुछ रोचक सामग्री पाठकों के सामने रखने का उद्योग किया है। इतना बतला देना आवश्यक है कि यहाँ मेरा उद्देश्य हिंदी भाषा की अशुद्धियों पर प्रकाश डालने का है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बंगाली-हिंदी (अथवा चालू हिंदी), उर्दू-हिंदी (जिसे हिंदुस्तानी नाम दिया गया है) या राष्ट्रभाषा हिंदी (जो यदि हिंदी से भिन्न है तो मैं अब तक नहीं समझ सका हूँ कि क्या चीज़ है)—ये सब मेरे परिमित ज्ञान और संकुचित दृष्टिकोण से बाहर की बातें हैं। यह स्मरण दिला देना भी आवश्यक है कि प्रस्तुत लेख में जितने भी उदाहरण हैं, वे सब वास्तविक हैं, एक भी काल्पनिक नहीं है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महाभारत में साहित्यिक शैलियाँ

[लेखक—श्रीयुत वासुदेवशरण अग्रवाल, एम्० ए०]

महाभारत संस्कृत वाङ्मय का एक धुरंधर ग्रंथ है। प्राचीन इतिहास, धर्म, अध्यात्म, दर्शन, नीति, राजशास्त्र, पुराणोपाख्यान, जीवन-चरित आदि समस्त विषयों के सांगोपांग वर्णन के लिए महाभारत एक अद्भुत खान है। जिन्हों ने आद्यंत महाभारत का सावधान-मन से पारायण किया है, वे जानते हैं कि इस के संबंध में इस प्रकार की प्रतिज्ञा कि जो कुछ महाभारत के अंतर्गत आ गया है, वही बाहर है, और जो विषय इस में नहीं है वह बाहर भी नहीं मिलता, कुछ मिथ्या कल्पना नहीं है। आर्य-जाति के पुरावृत्त-विषयक अनुसंधान के सभी राजमार्ग महाभारत में ही पर्यवसान को प्राप्त होते हुए पाए जायँगे।

प्रस्तुत लेख का उद्देश्य एक विशेष दृष्टिकोण को ले कर—अर्थात् महाभारत की साहित्यिक शैलियों की ओर—आप का ध्यान आकर्षित करना है।

महाभारत एक बहुत ही विशाल ग्रंथ है। उस में अठारह पर्व और लगभग एक लक्ष श्लोक हैं। इन पर्वों में से कुछ तो कथा-भाग के विकास के लिए ही प्रधानतया रचे गए हैं, जिन में विशेषकर युद्ध-संबंधी भीष्म, द्रोण, कर्ण और शल्यपर्व हैं, परंतु कुछ-एक की रचना का संबंध जय-इतिहास की कथा के सूत्र को अग्रसर करने के साथ नहीं के बराबर है। उन की रचना का उद्देश्य पुराकालीन भारतीय दर्शन, अध्यात्म, और धर्म के गहनतम तत्त्वों के विवेचन को प्रस्तुत करना था। उद्देश्य-भेद से साहित्यिक शैलियों में भेद होना भी स्वाभाविक है। इसी लिए शांति और अनुशासन पर्वों में जो निरूपण-शैली है वह भीष्म और द्रोण पर्वों की केवल वर्णनात्मक शैली से नितांत भिन्न है।

महाभारतकार की साहित्यिक प्रतिभा एक शब्द में 'विराट्' कही जा सकती है। विराट् पुरुष सहस्रशीर्षा और सहस्राक्ष कहा गया है। इस रमणीय वैदिक कल्पना का उपयोग महाभारतकार की प्रतिभा के दिग्दर्शन के लिए भी किया जा सकता है। मनुष्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की विचार-शक्ति महाभारत के गूढ़ प्रस्तरों को चीरती हुई जितनी अधिक उस के भीतर पैठती है, उतना ही अधिक उस पर भारतकार की विश्वतोमुखी प्रतिभा का प्रभाव पड़ता है। कितने अधिक उपायों से भारतकार ने अपने वर्णनों की रोचकता और उपादेयता को वढ़ाया है, इस का अध्ययन साहित्यिक दृष्टि से मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद भी होगा।

पहले तो यह जान लेना चाहिए कि महाभारत के वर्तमान रूप को देखते हुए उस पर पुराण के सव लक्षण घटित होते हैं। यद्यपि महाभारत को प्रारंभिक किंवदंती के अनुसार अद्यावधि इतिहास ही कहा जाता है, तथापि—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च
वंशानुचरितं च पुराणं पंचलक्षणम् ।

इस श्लोक में कहे गए पुराण के सव प्रसिद्ध लक्षण वर्तमान महाभारत पर पूर्णतया घटित होते हैं। ज्ञात होता है कि मूल इतिहास-परायण ग्रंथ को पुराण की परिभाषा के अनुसार सुसंस्कृत और परिवर्द्धित किया गया। इस का श्रेय भारतवर्ष की विशेष दार्शनिक प्रतिभा को है जिस के कारण यहाँ के सभी प्राचीन ग्रंथों में किसी न किसी अंश तक पुराण की पुट देने का आयोजन किया गया। पुराण वन जाने के कारण ही मानों माहाभारत ने प्राचीन काल के समस्त आख्यान, उपाख्यान, गाथा, नाराशंसी और अनुव्याख्यानादिक को आत्मसात् करने के लिए अपना विशाल तोरण-द्वार उन्मुक्त रूप से खोल दिया। यही कारण है कि महाभारत में वैदिक काल के प्रायः सभी प्रधान अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत-परक उपाख्यानों का समावेश हो गया है। उदाहरण के लिए कर्णपर्व (अ० ३३,३४) की त्रिपुरासुर कथा, द्रोणपर्व (अ० २०२) का त्रिपुरवधाख्यान, वनपर्व की (अ० १००-१०१) त्रिपुरवधकथा, वनपर्व की (अ० १२२-१२५) की च्यवनमुनि कथा, शल्यपर्व का (अ० ३६) त्रित-उपाख्यान इसी कोटि के हैं। विशेष कर आदिपर्व का गरुड़ोपाख्यान जिस में गरुड़ के स्वर्ग से अपनी माता विनता या सुपर्णा की मुक्ति के लिए अमृत के घट लाने का वर्णन है, एक अत्यंत प्राचीन वैदिक उपाख्यान का नवीन प्रकार से उपवृंहण है। संहिताओं में तथा ऐतरेय और शतपथादि ब्राह्मणों में महासुपर्ण गायत्री के स्वर्ग से या द्युलोक से अमृत अथवा सोम लाने का बहुत ही तत्त्वगर्भित वर्णन पाया जाता है। 'इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्' की आज्ञा का अनुसरण कर के ही मानों महाभारत के प्रणेता ने उस कथा का अत्यंत पल्लवित संस्करण आदि पर्व की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पक्षिराजगरुड़ की कथा में हमारे सामने रक्खा है। यही महाभारतकार की प्रथम शैली है जिसे हम उपाख्यानशैली के विशिष्ट नाम से पुकार सकते हैं।

(१) **उपाख्यान-शैली**—इस शैली के अवलंबन से व्यास जी ने समस्त प्राचीन उपाख्यानों का अपने ग्रंथ में सन्निवेश कर के मानव-जाति को सदा के लिए ऋणी बना दिया है। प्राचीन गाथाशास्त्र के प्रेमी सदा इस के लिए उन के कृतज्ञ रहेंगे। नारवे, आइस-लैंड आदि उत्तराखंड-वर्ती देशों की प्राचीन गाथाओं के विद्वान् आज मुक्तकंठ से सीमंड और उस के पौत्र स्नोरी की प्रतिभा का गुणगान करते हैं जिन्हों ने आर्यों के वंशज टयूटन कहलाने वाले लोगों की प्राचीन कथाओं का संग्रह ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के लगभग किया। सीमंड ने 'पोएटिक एड्डा' के नाम से सब उपाख्यानों को एकत्र किया, तदनंतर उस के पौत्र स्नोरी स्टर्लेसान ने जिस का जन्म सन् ११७९–११८१ के बीच हुआ और जो पीछे से आइसलैंड का प्रेसीडेंट भी बन गया था, उन सब कथाओं का गद्य-रूप में एक अत्यंत उत्कृष्ट संस्करण तैयार किया। आज यही बात हम व्यास-शुक-रोमहर्षणि के लिए भी कह सकते हैं जिन्हों ने सीमंड और स्नोरी से सहस्रों वर्ष पहले आर्यों के विराट् गाथा-वाङ्मय को अपने काव्य के साथ गूँथ कर उसे सदा के लिए अमर कर दिया। इसी कारण महाभारत वेद और पुराणों के उपाख्यानों का अक्षय्य भंडार बना हुआ है। 'एड्डा' और 'सागाओं' के लिए प्रख्यात लेखक कारलाइल ने लिखा है कि यह इतनी महान् कृतियाँ हैं कि उन्हें किंचित् स्वल्प कर देने पर शेक्सपियर, दांते, गेटे बन जायँगे।

शेक्सपियर, दांते और गेटे के स्थान पर भास, कालिदास, माघ, भारवि और हर्ष का नाम रख देने से ये ही उद्गार ठीक वेद-व्यास जी के लिए घटित होते हैं। महाभारत के शाकुंतलोपाख्यान, पुरूरवाख्यान, इस के उदाहरण हैं। उपाख्यान शैली के ही अवांतर भेद-रूप से हम उन उपाख्यानों को ले सकते हैं जिन का संबंध वैदिक साहित्य से तो न था, पर जिन की परंपरा प्राचीन जनश्रुति में बहुत पुरानी थी। जैसे सावित्री-सत्यवान्, नल-दमयंती, कच-देवयानी और विदुला की (उद्योग० १३३ अ०) कथाएँ जिन के सौंदर्य से मुग्ध हो कर महाभारतकार ने हर्षपूर्वक उन का स्वागत किया। वनपर्व का रामचरित (अ० २७४–२९१) और सगर-चरित (१०६–१०९ अ०) भी इसी कोटि के हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(२) **गल्प-शैली**——महाभारतकार की गल्प-शैली का अध्ययन भी विशेष उपादेय है। हमारी सम्मति में महाभारतकार संसार के सब से उत्कृष्ट गल्पकार हैं। वेद-व्यास की लिखी हुई गल्पों में जितनी प्राणशक्ति और अमरता है उतनी संभवतः अन्य किसी गल्प-लेखक की कृतियों में नहीं मिल सकती। 'अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम्' का उपक्रम कर के सैकड़ों की संख्या में अत्यंत ओजस्वी गल्पों की सृष्टि की गई है। यह निस्संदेह कहा जा सकता है, कि विश्व के गल्प-साहित्य में नकुलोपाख्यान जैसी उदात्त या प्रथम श्रेणी की गल्पें विरले ही मिल सकती हैं। हम कह सकते हैं संभवतः नहीं हैं। प्रथम तो मानव-हृदय की धर्मिष्ठ और न्याय्य अभिलाषाओं द्वारा वैभव और ऐश्वर्य की अर्चना की गई, फिर उस से भी ऊपर उठ कर सर्वस्वदक्षिण यज्ञ द्वारा युधिष्ठिर ने बची-खुची मानवता को छोड़ कर दिव्यभाव की प्राप्ति, अश्वमेध के अवभृथ स्नान में की। परंतु वेद-व्यास की प्रतिभा आदर्श की खोज में उस का भी मर्षण नहीं कर सकी। युधिष्ठिर के दान की स्तुति करते हुए ऋषियों और ब्राह्मणों की बुद्धि पर पड़े हुए मोह-पाश को पानी की काई की तरह नकुलोपाख्यान द्वारा उन्हों ने ध्वस्त कर दिया। जिस आदर्श की उपासना में सहस्रों ऋषियों ने अपनी हड्डियाँ गला दी थीं, उसी की रक्षा कर के वेद-व्यास जी ने अपनी लेखनी को कृतकृत्य समझा। उन्हों ने सोचा कि यदि ब्राह्मण भी धर्म की गरिमा को सुवर्ण के वट्टों से तोलने की भूल करने लगेंगे तो फिर धर्म-प्रतिष्ठा के युगमंडित स्तंभ चलायमान हो उठेंगे। परंतु जब तक ब्राह्म-तेज अक्षुण्ण है तब तक ऐसा नहीं हो सकता। इस वित्त-मोह वाली कीचड़ से पार उतरने का सेतु ही नकुलोपाख्यान का उपदेश है। महाभारत की अनेकानेक उत्तम गल्पों का रसास्वादन तो उन का पृथक् संग्रह करने से ही प्राप्त हो सकता है। शांतिपर्व के १३७ वें अध्याय में अनागतविधाता, प्रत्युत्पन्नमति और दीर्घसूत्री इन तीन मछलियों की कहानी और अध्याय १३८ में वर्णित विडाल-मूषिक-संवाद की कहानियाँ उस श्रेणी की हैं जिस से भारतवर्ष के विशाल कहानी-साहित्य का विकास हुआ है। पाली जातक, पंचतंत्रादि कथा-ग्रंथों के प्रारंभिक रूप यहीं देखने को मिलते हैं। शांतिपर्व अध्याय १३९ में पूजनी चिड़िया और ब्रह्मदत्त राजा की कहानी राजनीतिशास्त्र के स्थायी दृष्टांतों में से है। शांतिपर्व अध्याय १७७ में वर्णित मंकि मुनि और उन के दो बैलों की कथा जितनी छोटी है उतनी ही अधिक मर्मस्पर्शी है। विपरीत भाग्य को बहोरने के लिए अपना सर्वस्व बेच कर मंकि ऋषि ने दो बैल मोल लिए, उन को ले कर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जब वे खेती करने चले तब सड़क पर बैठे हुए ऊँट को देख कर बैल बिदक कर भागे। ऊँट भी उन से भड़क कर रस्से में बँधे हुए उन दोनों को अपनी गर्दन में टाँग कर उछालता हुआ भागा, तब दुखित और कातर हो कर मंकि ने पुकारा—

मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम।

इस उक्ति की करुणा केवल अनुभवगम्य है। यह कहानी एक असाधारण साहित्यिक की असाधारण कृति है। स्वल्पाक्षरों में ही दैव और पौरुष के बलाबल का मर्मवेधी चित्र खींच दिया गया है। मंकि रो कर पुकार उठते हैं—

शुद्धंहि दैवमेवेदं हठे नैवास्ति पौरुषम्। शांति० १७७।१२

अर्थात् यह दैव का खेल है, हठवश किया हुआ पौरुष कुछ काम नहीं देता।

(३) **दर्शन और अध्यात्म के निरूपण की संवादात्मक शैली**—इस का प्रसिद्ध उदाहरण भगवद्गीता (भीष्मपर्व) है। अश्वमेधपर्व का गुरुशिष्य-संवाद या अनुगीता-पर्व (अश्वमेध० अ० १६ से ५१ तक) भी इस का उत्तम उदाहरण है। भगवद्गीता का संग्राम-भूमि में उपदेश हुआ। अनुगीता इंद्रप्रस्थ में विहार करते हुए कृष्णार्जुन के संवाद का संग्रह है। पहली का निश्चित लक्ष्य है, वह सुसंग्रथित है। दूसरी का उद्देश्य काल-यापन है, इसी लिए उस की शैली शिथिल है। अर्जुन ने स्वयं कहा कि पहले आप ने मुझ से जो सब कहा था वे सब विषय चित्तभ्रंश होने के कारण मुझे भूल गए, उन्हें फिर सुनाइए। पर फिर वह बात कहाँ! कृष्ण ने अत्यंत शोक प्रकट करते हुए कहा—तुम ने अज्ञान से जो मेरे कहे हुए वचनों को ग्रहण नहीं किया, वह मुझे बहुत अप्रिय लगा है, क्योंकि आज मेरी वह स्मृति फिर प्रकट न हो सकेगी। आज तो पुरातन इतिहास मैं तुम को सुनाता हूँ। वह इतिहास ही अनुगीता है। परंतु अध्यात्म-ज्ञान की दृष्टि से यह अनुगीता भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस में ब्राह्मण अर्थात् मन और ब्राह्मणी अर्थात् बुद्धि के संवाद-रूप में वाक् और मन का संवाद, पंच-प्राणों का संवाद, दश-प्राणों या इंद्रियों का संवाद, सप्त-प्राणों का संवाद आदि अत्यंत रोचक रीति से वैदिक प्राणविद्या का उपबृंहण और अध्यात्म-शास्त्र के अन्य अनेक तत्वों का विवेचन है। इन वर्णनों में बहुत ही सरस साहित्यिक पुट पाया जाता है।

दार्शनिक विवेचन के लिए विशेष रूप से लिखा हुआ एक प्रकरण सनत्सुजातीय है जो सनत्सुजात ऋषि और धृतराष्ट्र के संवाद-रूप में है (उद्योग०, अ० ४२ से ४६ तक)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस प्रकरण की महिमा इसी से जानी जा सकती है कि इस पर भगवद्गीता की तरह ही शंकराचार्य ने भाष्य लिखा है, और महाभारत के टीकाकार नीलकंठ ने भी इस पर स्वतंत्र ग्रंथ की तरह बहुत विस्तृत टीका लिखी है। इस में संदेह नहीं कि सनत्सुजातीय के १९२ श्लोक महाभारतकार ने अत्युच्च अध्यात्म-भूमिका में पहुँच कर लिखे होंगे। उन को समझने के लिए जिन की तैयारी है, उन्हें उन में अद्भुत रस की प्रतीति होगी। इस शैली के अंतर्गत तत्त्ववेत्ताओं के विवाद द्वारा तत्वनिरूपण की शैली है। यह प्रथा प्राचीन भारतवर्ष में बहुत प्रचलित थी कि दो या कई ज्ञानी एक दूसरे के साथ ब्रह्मचर्चा करते हुए अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं। जनक के बहुदक्षिण यज्ञ में याज्ञवल्क्य और आठ विद्वानों का—जिन में गार्गी भी सम्मिलित थी—प्रश्नोत्तर इस का प्रसिद्ध उदाहरण है। महाभारत में जनक और ब्रह्मवादिनी सुलभा का ज़ोरदार विवाद इस का बहुत अच्छा उदाहरण है (शांतिपर्व अ० ३२०)। जनक और सुलभा जैसे दो ऊर्जित मस्तिष्क जब टकराते हैं तब जो चमक होनी चाहिए, वही इस प्रसंग में पाई जाती है।

यह भी स्मरण रखने योग्य है कि कुल शांतिपर्व और अनुशासनपर्व की रचना ही भीष्म और युधिष्ठिर के संवाद का फल है। ज्ञात होता है कि महाभारतकार को संवादपरक शैली सब से अधिक प्रिय थी।

(४) **प्रश्नोत्तर की शैली**—यह भी संवादात्मक शैली का ही एक भेद है पर इस के महत्व के कारण इस की सत्ता स्वतंत्र मानी जा सकती है। संवाद में व्याख्यान की भाँति कथनोपकथन रहते हैं। पर प्रश्न और उत्तर की रीति में संक्षेप से ही प्रश्नोत्तर का क्रम चलता है। महाभारत में इस के सर्वोत्तम उदाहरण दो हैं—एक युधिष्ठिर और अजगर का संवाद (वनपर्व, अ० १८०–१८१), और दूसरा युधिष्ठिर और यक्ष के प्रश्नोत्तर (वनपर्व, अ० ३१३)।

(५) **केवल प्रश्नात्मक शैली**—पहली शैली और इस में यह भेद है कि उस में प्रश्न उत्तर-सापेक्ष रहता है, और इसमें प्रश्न उत्तर की अनपेक्षा कर के अपने शुद्ध रूप में रहता है। महाभारत के अतिरिक्त अन्यत्र बहुत ही कम इस के उदाहरण मिलते हैं। महाभारत में सभापर्व में नारद ने युधिष्ठिर से राजनीति का निचोड़ ले कर उन के राज्य की सर्वांगीण कुशल जानने के लिए जो प्रश्न किए हैं वे इस के उदाहरण हैं। उस अध्याय

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का नाम 'नारदप्रश्नमुखेन राजधर्मानुशासन' है (सभापर्व, अ० ५)। इस शैली का साहित्यिक विकास अत्यंत आवश्यक है।

(६) **नीतिग्रंथ कथन**—संस्कृत साहित्य में चाणक्य-नीति, कामंदकीय-नीति, शुक्रनीति, आदि ग्रंथों द्वारा नीति कहने की एक विशेष परिपाटी रही है। इन सब का प्रारंभ महाभारतांतर्गत उद्योगपर्व के विदुरनीति ग्रंथ (अ० ३३–४०) से माना जा सकता है। वस्तुतः भर्तृहरि आदि के नीतिशतक भी इसी परिपाटी के अंतर्गत हैं। शतक-रचना का भाव भी इसी प्रकार से उत्पन्न हुआ। शतकों में भी श्लोकों का संग्रह ही रहता था; हाँ नीति-विषयक श्लोकों के स्थान पर शृंगारात्मक श्लोकों के शतक भी प्रचलित हुए।

(७) **स्तोत्र या स्तुति द्वारा अभिधेय अर्थ को प्रगट करना**—कालांतर के संस्कृत और भाषा साहित्य में भी स्तोत्रों का यथेष्ट प्रचार पाया जाता है। भागवत तथा रामचरितमानस दोनों में ही स्तुतियों के पारायण की शैली पाई जाती है, पर इस का सब से अधिक साहित्यिक और परिष्कृत रूप महाभारत में ही देखा जाता है। कुछ उदाहरण ये हैं—नारदकृत महापुरुषस्तव (शांतिपर्व, अ० ३३८); युधिष्ठिरकृत कृष्ण-नामस्तुति (शांति०, अ० ४३); भीष्म-प्रोक्त भगवन्माहात्म्य (अनुशासन० अ० १५८); व्यासोक्त शतरुद्रिय (अनुशासन० अ० १६१); भगवन्नामनिरुक्ति (शांति० अ० ३४१); पर साहित्यिक दृष्टि से इन सब से विशिष्ट स्तोत्र भीष्मकृत कृष्णस्तवराज है (शांतिपर्व, अ० ४७)। यह भीष्म जी का अंत समय का भगवत्स्मरण है, और इस में निस्संदेह व्यास जी की लेखनी की पूरी चमक देख पड़ती है। इस के कुछ असामान्य श्लोक ये हैं—

महतस्तमसः पारे पुरुषं ह्यतितेजसम्।
यं ज्ञात्वा मृत्युमत्येति तस्मै ज्ञेयात्मने नमः॥
यं बृहन्तं बृहत्युक्थे यमग्नौ यं महाध्वरे।
यं विप्रसंघाः गायन्ति तस्मै वेदात्मने नमः॥
यः सुपर्णो यजुर्नाम छन्दो गात्रस्त्रिवृच्छिराः।
रथन्तरं बृहत्साम तस्मै स्तोत्रात्मने नमः॥
यः सहस्रसमे सत्रे जज्ञे विश्वसृजामृषिः।
हिरण्यपक्षः शकुनिस्तस्मै हंसात्मने नमः॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसी शैली पर उस में लगभग पचास श्लोक हैं। ऊपर दिया हुआ सुवर्णपक्ष हंसात्मा वाला श्लोक तो वहुत ही चमत्कार से भरा है। यह प्रसंग शुद्ध वैदिक है। तैत्तिरीय ब्राह्मण और तांड्य महाब्राह्मण के अंत में विराट् सृष्टि-यज्ञ का वर्णन है जिसे विश्वसृज-यज्ञ भी कहा है। यह यज्ञ सहस्रसंवत्सर अर्थात् अनंत अपरिमित काल तक होता रहता है। उसी का अत्यंत हृदयग्राही सार वेदव्यास जी के श्लोक में दिया हुआ है।

महाभारत के शिवसहस्रनाम (शांति० अ० २८४) तथा सूर्यसहस्रनाम आदि प्रसंगों को भी हम स्तोत्र-शैली के ही अंतर्गत समझते हैं। संस्कृत साहित्य के विकास के साथ सहस्रनामों का भी खूव प्रचार हुआ। इन सहस्रनामों को ध्यान से देखने पर मालूम होता है कि इन में आधे नाम प्रायः वैदिक-कालीन मिलते हैं। दूसरे इन में परस्पर के नामों में समानता भी वहुत है। शिव, विष्णु, गोपाल, सूर्य इन के सहस्रनामों के अनेक नाम एक से ही हैं। इस से यह प्रगट होता है कि ये सहस्रनामस्तोत्र वैदिक समय के 'एकं सद् विप्राः वहुधा वदंति (ऋग्वेद अस्य वामीयसूक्त १।१६४) के ही विकास मात्र हैं। अर्थात् 'वहुधावदंति' के व्याख्यान-स्वरूप हैं।

ऊपर हम ने संक्षेप से ही महाभारत की प्रमुख साहित्यिक शैलियों का निर्देश किया है। जैसा हम कह चुके हैं महाभारत एक विशाल महासमुद्र है। उस में अनंत विचित्रताएँ हैं। उस का पारायण करते हुए पद-पद पर विलक्षण साहित्यिक प्रतिभा का परिचय मिलता है। उस सव के विस्तृत ज्ञान के लिए महाभारत से साक्षात् परिचय वढ़ाना चाहिए। पर ऊपर गिनाई हुई साहित्य की परिपाटियाँ ऐसी हैं जिन को ले कर अव भी किसी साहित्य में वहुत कुछ वैचित्र्य-युक्त तथा रोचक और सरस साहित्य-रचना की जा सकती है। आशा है विद्वज्जन इस पर और अधिक विचार करेंगे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

डिंगळ के गीत और उन का पिंगल

[लेखक—श्रीयुत नरोत्तमदास स्वामी, एम्० ए०]

डिंगळ का अधिकांश साहित्य गीतों में लिखा हुआ है। यह गीत-साहित्य मुख्यतया वीर-रसात्मक है। सहस्रों वीरों, महापुरुषों, और ऐतिहासिक व्यक्तियों के पराक्रमों का वर्णन इस साहित्य में सुरक्षित है। राजस्थान और राजपूत-जाति के इतिहास के सर्वांगपूर्ण ज्ञान के लिए इन गीतों का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। इन में बहुमूल्य सामग्री भरी पड़ी है, जिस का प्रकाशन नितांत वांछनीय है। पर इस निबंध में हम उस सामग्री के विषय में कुछ न कह कर पिंगल की दृष्टि से गीतों के अनेक भेदों का विवेचन करेंगे।

डिंगळ-साहित्य में प्रयुक्त इन गीतों के भेदों की संख्या बहुत बड़ी है। प्रसिद्ध लक्षण-ग्रंथ 'रघुनाथरूपक' में इन की संख्या ७२ मानी है।[१]

प्रत्येक गीत को आप एक कविता समझ लीजिए। एक कविता में जैसे कई पद्य होते हैं वैसे ही एक गीत में कई दोहले[२] होते हैं। प्रत्येक दोहला एक से अधिक चरणों से बना हुआ होता है। ये चरण[३] ही गीतों की इकाई हैं। गीत के सब दोहले प्रायः एक जैसे ही होते हैं। कुछ गीतों में जैसे साणोर, पालवणी आदि में गीत के प्रथम दोहले के चरण के आदि में दो, तीन या चार मात्राएँ अथवा वर्ण अधिक होते हैं। ये अधिक मात्राएँ अथवा वर्ण मानों गीत के आरंभ को सूचित करते हैं।

छंदों की भाँति दोहले भी मात्रिक अथवा वर्णिक होते हैं और उन में भी सम, अर्धसम और विषम आदि भेद होते हैं।

अधिकांश गीतों के दोहले सतुकांत होते हैं, पर अतुकांत दोहलों वाले गीत भी

---

[१] चिहुँ जात दोहा, चार छपया, जात बहतर गीत की।
[२] अन्य नाम=दुवालो, द्वालो, दूहो।
[३] अन्य नाम=तुक, कळी, पद, मोहरो, जत।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मिलते हैं। हिंदी के लिए मात्रिक छंदों में अतुकांत कविता नई चीज़ है, पर राजस्थानी में वह प्राचीन काल से चली आई है।

'रघुनाथरूपक' आदि लक्षण-ग्रंथों में गीतों का विवेचन किसी वैज्ञानिक क्रम से नहीं है। इस निवंध में हम सव गीतों को पहले मात्रिक और वर्णिक इन दो विभागों में बाँटेंगे और फिर हरेक के सम, अर्धसम और विषम इस प्रकार तीन-तीन उपविभाग करेंगे। सब से छोटे चरणों वाले गीतों को सव से पहले लेंगे और सब से बड़े चरणों वालों को वाद में।

इस क्रम से विवेचन करने पर मालूम होगा कि मात्रिक गीतों की संख्या बहुत अधिक है, जो कि स्वाभाविक है। वर्णिक गीतों की कुल संख्या केवल ७ है, और उन में भी मात्राओं का झंझट लगा हुआ है। एक गीत ऐसा भी है जो मात्रिक और वर्णिक दोनों है। मात्रिक गीतों में सब से अधिक संख्या विषम गीतों की है, उस से कम अर्धसम की और सब से कम सम की। विषम गीतों की अधिकता राजस्थानी की एक विशेषता कही जा सकती है। हिंदी के अधिकांश छंद और पद सम या अर्धसम ही पाए जाते हैं।

इस निवंध में एकाध को छोड़ कर सभी उदाहरण कवि मंछ या मनसाराम कृत 'रघुनाथरूपक' से लिए गए हैं। पाद-टिप्पणियों में जो पद्यवद्ध लक्षण दिए गए हैं, वे भी 'रघुनाथरूपक' के ही हैं। जो उदाहरण या लक्षण 'रघुनाथरूपक' के नहीं हैं उन के मूल-ग्रंथों का या रचयिताओं का उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है।

प्रत्येक छंद के लिए एक उदाहरण दिया गया है। ऐसा करने से छंदों के कुछ गौण भेदों के उदाहरण लेख में नहीं आ सके हैं, परंतु स्थानाभाव से दूसरी सुविधा न थी।

(१) मात्रिक

(क) मात्रिक सम

(१) इकखरो[1]—

१. प्रत्येक दोहले के प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ होती हैं।

---

[1] कळा चतुर्दस सार चरण इक कीजियै।
चरण रचे इम चार दवालै दीजियै॥
उहि ज अंक पद अंत रगण गण आणजै।
जिको गीत कह मंछ इकखरो जाणजै॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२. प्रत्येक चरण के अंत में एक रगण (ऽ।ऽ) आता है।

३. चारों चरणों की तुक मिलती है।

४. इस की गति हिंदी के मधुमालती छंद से अथवा हरिगीतिका की प्रथम १४ मात्राओं से मिलती है।[1]

उदाहरण—

सुण सेस रे, सुण सेस रे।
दिल केकयी-उपदेस रे॥
वनवास जावण वेस रे।
इम आखियो अवधेस रे॥

(२) भाख[2]—

१. प्रत्येक दोहले के प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ होती हैं, जिन का गठन इस प्रकार होता है—एक चौकल + दो पँचकल।

२. प्रत्येक चरण के अंत में एक गुरु और एक लघु (ऽ।) होता है।

३. तुक चारों चरणों की मिलती है।

४. इस की गति हिंदी के सुलक्षण छंद से मिलती है।[3]

उदाहरण—

आयो भरथ अवध अभंग।
मंडे पावड़ी उतमंग॥

---

[1] दो चरणों की गति हरिगीतिका के एक चरण के समान होती है।

[2] चौकळियो एक उभै पँचकळिया।
तव कळ चवदह तिकण तणै॥
हुवै गुर लघु अंत मिलै चौ मोहरा।
भाख गीत इम मंछ भणै॥

[3] इकखरे की अंतिम दो मात्राएँ अंत से उठा कर आदि में रख दी जायँ तो भाख छंद बन जायगा। कामरूप या बेताल छंद के चरण के आरंभ में दो मात्राएँ जोड़ दी जायँ या हरिगीतिका के चरण की अंतिम दो मात्राएँ उठा कर आदि में रख दी जायँ तो गति भाख के दो चरणों के समान हो जायगी। भाख के एक चरण की पहली चार मात्राएँ निकाल दी जायँ तो पीयूषवर्ष का पूर्वार्ध बन जायगा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रइयत कीध अत उछरंग।
इमि आवास जाय उमंग॥

(३) अरध-भाख[1]—

इस का दोहला भाख के समान ही होता है। अंतर केवल इतना ही होता है कि भाख में तुक चारों चरणों की मिलती है, और अरध-भाख में दो-दो चरणों की, अर्थात् पहले की दूसरे के साथ और तीसरे की चौथे के साथ मिलती है।

उदाहरण—

चित्रह कूट सूँ भुज चंड।
कस भूथाण गह कोदंड॥
पिरभू किता वासर पाय।
अत्री तणै आस्रम आय॥

(४) सुवग (सुभग)[2]—

१. प्रत्येक दोहले के प्रत्येक चरण की मात्राओं की संख्या १४ होती है।

२. अंत में एक चौकल होता है।

३. चौथे चरण में वीप्सा लाई जाती है, अर्थात् उस के ७-७ मात्रा के दो भाग कर के पहली ७ मात्राओं में जो शब्द आते हैं उन्हीं को दुबारा लाया जाता है।

---

[1]चौ मोहरा सो भाख चव।
मोहरा दोय मिलंत॥
गुणै मंछ जिण नै गुणी।
भाख अरध भाखंत॥

[2](क)कळ चवदै इक तुक में दीजै।
चौपद द्वालौ एक चवीजै॥
चरणै चौकळ अंत उचारै।
चौथै चरण वीपसा धारै॥
सम मोहरा च्यारूँ सरसावै।
गीत मंछ सूवग इम गावै॥

(ख) इस का नाम 'रघुनाथरूपक' की कुछ प्रतियों में 'उवंग' भी मिलता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

४. इस गीत की गति हिंदी के मनोरम छंद से या गीतिका के पूर्वार्ध से मिलती है।

उदाहरण—

लंगरी रिम सेन लाडो।
गुमर धारक लाज गाडो॥
इळ झड़ै कुंभेण आडो।
जूझ जाडो जूझ जाडो॥

(५) सावक-अडळ नंबर २—

१. प्रत्येक दोहले के प्रत्येक चरण की मात्राओं की संख्या १५ होती है।

२. प्रत्येक चरण के अंत में तीन मात्रा का एक शब्द होता है, जो चारों चरणों के अंत में आता है, (अर्थात् चारों चरणों के अंत में तीन मात्रा का एक ही शब्द आता है)।

३. तुक चारों चरणों की मिलती है।

४. इस गीत की गति हिंदी के चौबोला छंद से बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

उदाहरण—

निरखे अवासाँ भर निजर।
नह देखे दसरथ न्रप निजर॥
निज देखे नह बंधव निजर।
नर दीठा विलखर सह निजर॥

(६) सावक-अडळ[1]—

१. प्रत्येक दोहले की प्रत्येक चरण की मात्राओं की संख्या १६ होती है।

२. प्रत्येक चरण के अंत में चार मात्राओं का एक शब्द होता है और चारों चरणों के अंत में वही शब्द रहता है।

---

[1] लै चिहुँ पद साणोर लख बिखम तिकण में वीर।
इक-सबदौ चौकळ अगर सावक-अडळ सधीर॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

३. चारों चरणों की तुक मिलती है।

४. इस की गति हिंदी के चौपाई छंद से और राजस्थानी पिंगल के 'चौसर गाहा' नामक छंद से मिलती है।

५. सावक-अडळ नंबर १ और नंबर २ में केवल इतना ही अंतर है कि नंबर १ में चरणों के अंतवाला शब्द ४ मात्रा का होता है, और नंबर २ में ३ मात्रा का।

उदाहरण—

दासरथी-लिखमण सुत-दसरथ।
दोऊँ सुणे सिधारे दसरथ॥
दीह उचाट करे दिल दसरथ।
दीधा प्राण पिछाड़ी दसरथ॥

(७) उमंग[१]—

१. प्रत्येक दोहले के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं।

२. चरण के आरंभ में त्रिकल नहीं आता और अंत में एक गुरु (ऽ) आता है।

३. तुक चारों चरणों की मिलती है।

४. इस की गति हिंदी के पदपादा कुलक छंद से मिलती है, जो प्रायः तोटक छंद के समान होती है।

उदाहरण—

कटिया श्रुत-नाक लियाँ कर में।
रचना कहै सूपणखा घर में॥
नारी इक वीर उभै नर में।
तिसड़ी न लखी सुपनंतर में॥

---

[१] कळ सोड़स पद पद में कीजै।
मोहरा सम च्यारूँ में ळीज॥
अंत चरण में दीरघ आण।
सो उमंग हुवै गीत सुजाण॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(८) कवि-इलोळ अथवा घड़-उथळ[1]—

१. इस की मात्राएँ तथा गति आदि सब बातें उपरोक्त उमंग गीत के समान ही होती हैं अंतर इतना ही है कि प्रत्येक दोहले के प्रत्येक चरण के अंत में सगण (।।ऽ) आना आवश्यक है।

२. इस के प्रत्येक दोहले के तीसरे चरण में दूसरे चरण के शब्द ही साधारण हेर-फेर के साथ आते हैं, और इसी प्रकार चौथे चरण के अंत में भी पहले चरण के अंत के कुछ शब्दों की आवृत्ति होती है।

३. तुक चारों चरणों की मिलती है।

उदाहरण—

मन्दोदर भोळै भूल मती।
जळ आसी वारध लाँघ जती।।
जळ आ' यर वारध लाँघ जती।
मुँह मंडे भोळै भूल मती।।

(९) सावझड़ो छोटो[2] अथवा पालवणी नंबर २—

१. प्रत्येक दोहले के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। केवल प्रथम दोहले के प्रथम चरण में १८ मात्राएँ होती हैं अर्थात् आरंभ में दो मात्राएँ अधिक होती हैं।

२. गति हिंदी के चौपाई छंद के समान होती है।

३. तुक चारों चरणों की मिलाई जाती है।

उदाहरण—

रजनीपत चंद छपाकर राजा।
विधू भ-पत म्रग-अंक विराजा।।

---

[1] कळ सोड़स सगणंत करीजै।
धुर तुक उभै प्रबंध धरीजै।।
वै मिल तुकाँ उळथ्थो आवै।
कवि इलोक सो गीत कहावै।।

[2] कळा अंक (९) दूणी कर'र आद विखम झड़ आण।
सोळह-सोळह तुक सकळ, मौहरा च्यार मिलाण।। —डिंगळ-कोष

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सेतकरण दुजपत सस साजा ।
सोम चंद्रमा नखत विराजा ।।

(१०) अरध-सावझड़ो छोटो[1] अथवा दुमेळ अथवा अरध-पालवणी—

१. अरध-सावझड़े छोटे में और उपर्युक्त सावझड़े छोटे में केवल इतना ही अंतर है कि सावझड़े छोटे में चारों चरणों की तुक मिलती है और अरध सावझड़े छोटे में दो-दो चरणों की अर्थात् पहले की दूसरे के साथ और तीसरे की चौथे के साथ।

२. इस गीत का नाम पालवणी दुमेळ भी है।

उदाहरण—

भण जोनक्रपीट छागरथ ज्वाळा ।
मंगळ आग अगन झळमाळा ।।
जातबेध आतस झळजीहा ।
अगनी सुक्र पवन घण ईहा ।।

(११) पालवणी त्रमेळ अथवा झड़लुपत[2]—

पालवणी (सावझड़ो छोटो) और इस में इतना ही अंतर है कि पालवणी में चारों चरणों की तुक मिलती है और इस में केवल तीन की अर्थात् पहले, दूसरे और चौथे चरणों की।

उदाहरण—

डेरा रोपिया उतर दध डारण ।
मन निहचै लंकेसुर मारण ।।

---

[1] अरध-सावझड़ में अवस मोहरा द्वै सम मेळ ।
पहली जो मात्रा पढी बै ही अठे उजेळ ।।—डिंगळकोष

[2] १—प्रथम दुतिय चवथै पदै, मोहरा वहस मिलंत ।
रह अमेळ पद तीसरो, सो झड़लुपत झिलंत ।।

२—आद अठारह तुक अखौ, सोळह सब संपेख ।
पहल-दुवै-चौथे पदे दुरस मोहरा देख ।।
तुकाँ मिळै नह तीसरी मोहराँ सूँ इण माँय ।
रूपग जो इण रीत सूँ सो झड़लुपत कहाय ।।—डिंगळकोष

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वळे विचार करै लिखमीवर।
धरे जनम मरजादा धारण॥

(१२) सेलार[1]—

१. प्रत्येक दोहले के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं, केवल प्रथम दोहले के प्रथम चरण में १८ मात्राएँ होती हैं।

२. गति हिंदी के चौपाई छंद के समान होती है। प्रत्येक दोहले के चौथे चरण में विधि अलंकार होता है। अर्थात् किसी पद का पुनः विधान किया जाता है।

३. तुक पहले चरण की दूसरे के साथ और तीसरे की चौथे के साथ मिलती है।

तपसी रो रूप धरे अततायी।
अडर कुटी गह सीत उठायी॥
सिथळ पुकारी साद सुणीजै।
कीजै, हो हरि, आवण कीजै॥

(१३) त्रबंकड़ो अथवा घोड़ादमो[2]—

पालवणी और इस में इतना ही अंतर है कि पालवणी में चारों चरणों की तुक मिलती है पर त्रबंकड़े में केवल दो ही की अर्थात् दूसरे और चौथे चरणों की (पालवणी दुमेळ में दूसरे और चौथे की तुक के अतिरिक्त पहले और तीसरे चरणों की तुक भी मिलती है)।

उदाहरण—

अंगद मेलियो सद दूत अपंपर।
बळ अकलाँ मजबूत वडाळौ॥

---

[1]द्वालो करै दुमेळ रो, चौथे चरण उचार।
अलंकार विध विध सु इण, समझ गीत सेलार॥

[2]चरण विखम साणोर लघू चा, दुवै चतुर पद मोहरा दाखौ।
कहूँ मंछ कर गीत त्रबँकड़ो, भला जिकण में प्रभुगुण भाखौ॥—रघुनाथरूपक
मात अठारा प्रथम तुक आगे सोळह आण।
सोळह सोळह तुक सकळ गीत त्रबँकड़ै जाण॥— डिंगळकोष

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वप सिणगार धूत बळ बैठौ।
रचे सभा अद्‌भुत रंढाळौ॥

(१४) पालवाणी[१]—

१. प्रत्येक दोहले के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ (४ चौकल) होती हैं। केवल प्रथम दोहले के प्रथम चरण में १९ मात्राएँ होती हैं, अर्थात् आरंभ में तीन मात्राएँ अधिक होती हैं।

२. अंत में एक चौकल आता है।

३. तुक चारों चरणों की मिलती है।

४. गति हिंदी के चौपाई छंद से मिलती-जुलती है।

उदाहरण—

पूळियौ नह चाप कंथ तो पाणी।
धाम-जनक मिलिया रजधाणी॥
हतौ कठै पोरस कुळ हाणी।
अब तैं सिया दगो कर आणी॥

(१५) गोख अथवा जंघखोड़ो[२]—

१. प्रत्येक दोहले के प्रत्येक चरण में २० मात्राएँ होती हैं। ये मात्राएँ ४ पंचकल के हिसाब से होती हैं। केवल प्रथम दोहले के प्रथम चरण में २३ मात्राएँ होती हैं अर्थात् आरंभ में ३ मात्राएँ अधिक होती हैं।

२. प्रत्येक दोहले के अंतिम चरण में दो वीप्साएँ होती हैं अर्थात् पाँच मात्रा का एक ही शब्द चार बार आता है।

---

[१]कळी हेक सोड़स कळा, चौकळिया गण च्यार।
धुर पद कळ उगणीस धर, अवर चरण इकसार॥१॥
चार पदाँ द्वालो चवौ, मोहरा चार मिलाण।
लघु गुरु नेम न लावियै, पाळवणी परवाँण॥२॥

[२]विखम चरण साणोर वडै रा, समहि ज चारूँ साजै।
अंत गुरू लघु नेम न आवै, मोहरा चार मिलाजै॥
चौथे पद कळ पंच बार चिहुँ, दोय वीपसा दाखो।
कहै मंछ, इम गोख गीत कर भूप-अवध-गुण भाखो॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

३. तुक चारों चरणों की मिलती है।

४. गति हिंदी के द्वितीय झूलने की अथवा कड़खे की पहली २० मात्राओं की गति से मिलती-जुलती होती है।

उदाहरण—

अतुळ सरासण भंग लख वधे अत उमँग उर।
गहर दिन महूरत सतानँद पूछ गुर॥
आप निज जनक न्रप लिखे कागद अतुर।
अवधपुर अवधपुर अवधपुर अवधपुर॥

(१६) सावझड़ो[1]—

इस में और उपरोक्त गोखछंद में इतना ही अंतर है कि गोख की भाँति इस के दोहलों के चौथे चरण में वीप्सा नहीं आती।

उदाहरण—

सुणै वैण अंगद कळह सुभड़ सर साविया।
थरक जळ थाळ जूं त्रकुट जण थाविया॥
चाल बाँधे धुरा दनुज ळळचाविया।
अंत वप अकंपन समर सझ आविया॥

(१७) अरध-सावझड़ो[2]—

इस में और उपरोक्त सावझड़े में इतना ही अंतर है कि सावझड़े में चारों चरणों की तुक मिलती है, और इस में दो-दो चरणों की, अर्थात् पहले की दूसरे के साथ और तीसरे की चौथे के साथ।

---

[1]मोहरा चरण एक सा जिण मैं, रीत जिसी कळ राखै।
गिण सावझड़ै गोख गीत मैं, भेद इतो हि ज भाखै॥
चौथे चरण गोख रे चंगा, उभै वीपसा आणै।
सकळ सरीसा पद सावझड़ै, विध इम मंछ वखाणै॥—रघुनाथरूपक।
धुर मात्रा तेबीस धर, बाकी बीस वखाण।
मोहरा सम च्यारूँ मिलै, सावझड़ो सुभियाण॥—डिंगळकोष।

[2]सुध मोहरा चारूँ सावझड़ै, जत चारूँ सम जोपै।
मोहरा दोय-दोय मेळ मिलावै, अरध सावझड़ै ओपै॥

७

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उदाहरण—

दनुज आवियौ वळे खटकै हियै दोयणाँ।
लाल मुखद स भटकै अगन लोयणाँ ॥
राम सामौ धसै एम रिण रोप नै।
लहर-निध छिलै जाणै हदाँ लोप नै ॥

(१८) धमाल[1]—

१. प्रत्येक दोहले के प्रत्येक चरण में १४+९=२३ मात्राएँ होती हैं।

२. बीच में १४वीं मात्रा पर यति पड़ती है। पूर्वार्ध (१४ मात्रा) के अंत में गुरु-लघु (ऽ।) और उत्तरार्ध (९ मात्रा) के अंत में लघु-गुरु (।ऽ) आता है।

३. तुक चारों चरणों की मिलती है।

४. प्रत्येक चरण का पूवार्ध भाख गीत के एक चरण के बराबर होता है।

५. गति गीतिका छंद के चरण की पिछली २३ मात्राओं की गति के समान। उत्तरार्ध की गति पीयूषवर्ष के उत्तरार्ध के समान।[2]

रावण-ससा दिग्गज रूप, दंडक वन रमै।
निरलज सुपणखा तिण नाम, गरक अनंग मै ॥
सीतानाथ आगळ सार, आयी जिण समै।
भाल सु कांति अदभुत भाम, चित रत संभ्रमै ॥

(ख) मात्रिक अर्धसम

(१९) प्रौढ[3] नंबर २—

१. विषम चरणों में मात्राओं की संख्या १४ होती है। ये मात्राएँ १ त्रिकळ + १ चौकळ + १ त्रिकळ + १ चौकळ के हिसाब से रक्खी जाती हैं।

---

[1] भाख तणी तुक प्रथम भण, नव कळ तिण पर नाळ।
लघु गुरु मोहरो लेखवै, धारो गीत धमाळ ॥

[2] आरंभ की चार मात्रा निकाल दें तो इस गीत का एक चरण पीयूषवर्ष के एक चरण के बराबर हो जाता है।

[3] दूजो प्रोढ चवद कळ दीजै, त्रिय-चौ-त्रिय-चौ विषम तणै।
बीजी रचना सरब बराबर भेद इतो हिज मंछ भणै ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२. सम चरणों में मात्राओं की संख्या १० होती है। ये मात्राएँ १ त्रिकळ + १ चौकळ + १ त्रिकळ के हिसाब से रक्खी जाती हैं।

३. सम चरणों के अंत में गुरु-लघु (ऽ।) आता है।

४. केवल सम चरणों की तुक मिलती है।

५. गति हिंदी के रूपमाला छंद से मिलती है।

उदाहरण—

प्रीत कर पुरहूत ऊपर
उठे रघुवर आप।
सहस भग किय चसम सहसौ
सकत मेटे श्राप॥

(२०) कंवार[1]—

उदाहरण—

१. विषम चरण में मात्राएँ १६ (पंचकळ + चौकळ + त्रिकळ + चौकळ)।

२. सम चरणों में मात्राएँ ९।

३. सम चरणों के अंत में दो गुरु (ऽऽ) होते हैं।

४. केवल सम चरणों की तुक मिलती है।

५. विषम चरणों की गति हरिगीतिका के एक चरण के पूर्वार्ध के समान होती है।[2]

उदाहरण—

दिस लंक अंगद आद द्वादस
तहकिया तेखी॥

---

[1] चरण विखम पद प्रोढ चव, सम पद नव कळ सार।
दुय गुर मोहरा अंत दै, करौ गीत कंवार॥

[2] (१) कंवार के दो चरणों के अंत में एक मात्रा जोड़ दी जाय तो वेताल का एक चरण बन जायगा और तीन मात्राएँ (।ऽ या ।।।) जोड़ दी जायँ तो हरिगीतिका का एक चरण बन जायगा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इक अरण सो बिच त्रिखा आतुर
दरी द्रग देखी ॥

(२१) प्रौढ़[1] नंबर १ अथवा सोरठियो—

१. विषम चरणों में १६ मात्राएँ (पंचकळ + चौकळ + त्रिकळ + चौकळ) होती हैं।

२. सम चरणों में १० मात्राएँ (त्रिकळ + चौकळ + त्रिकळ) होती हैं।

३. सम चरणों के अंत में गुरु-लघु (ऽ।) आता है।

४. तुक केवल सम चरणों की मिलती है।

५. गति हिंदी के कामरूप (वेताल) छंद के समान होती है।

उदाहरण—

मग के मुकामा करे मिथुला
आविया अवधेस ।
सुण अतुळ साज जलूस सारा
मिले छक मियलेस ॥

(२२) अरट[2]—

१. विषम चरणों में मात्राएँ १६ (४ चौकळ) प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ १८ (१ दुकळ + ४ चौकळ) होती हैं।

२. सम चरणों में मात्राएँ ११ (२ चौकळ + १ त्रिकळ) होती हैं।

---

(२) सम चरणों की गति गीतिका या रूपमाला की प्रथम नौ मात्राओं की गति के समान होती है ।

[1]पंच-च्यार-त्रिय-च्यार विखम पद सोळह मत्ता साजै ।
तीन-च्यार-त्रिय दस सम तुक में गुरु-लघु मोहरा गाजै ॥
विखम वळे सम, विखम वळे सम, पद चिहुँ द्वालो पुणजै ।
सुध अखरोट, मंछ, सरसावै, गीत प्रोढ सो गुणजै ॥

[2]सोळह कळा विखम पद साजै, चौकळिया गिण च्यार चवै ।
तुक सम चौकळ दोय, अंत में गुरु लघु, मात्रा रुद्र सवै ।
विखम वहस, अरु विखम वहस, इम पद चउ द्वाळै हेक पखै ।
आद चरण की कळा अठारह, अरट गीत कवि मंछ अखै ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

३. सम चरणों के अंत में गुरु-लघु (ऽ।) होता है।

४. तुक केवल सम चरणों की मिलती है।

५. गति हिंदी के सरसी छंद के समान है।

उदाहरण—

इम राज करै अज-नंद अजोध्या,
नेत वधी नखतैत।
जंगाँ जीत तपोबळ जालम,
ओप-वडै अखरैत॥

(२३) सालूर[1]—

१. विषम चरणों में मात्रा एँ १६ (४ चौकळ)। प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ १८ (१ दुकळ + ४ चौकळ)।

२. सम चरणों में मात्राएँ १२।

३. पहले चरण की चौथे के साथ और दूसरे की तीसरे के साथ तुक मिलती है।

४. गति हिंदी के सार छंद के समान।

उदाहरण—

जाजुळ दुजराज करण जुध जाडो।
तस कुठार द्रग तायल।
राह वरात ईख अजरायल
आय'र ऊभो आडो॥

(२४) जाँगड़ो[2]—

१. विषम चरणों में मात्राएँ १६, प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ १८।

---

[1] सोड़स कळ विखम, विहस पद बारह, धुर पद कळा अठार धरै।
मेळै तुक प्रथम-चतुर्थी मोहरे ,वळे दुतिय-त्रिय मेळ करै॥
कवि दाखै मंछ तुकी तो चौकळ, विमळ गीत सालूर वणै॥

[2] गीत अरटियो अनै जाँगड़ो दोनूं समवड़ दीसै।
मोहरा विखम सोड़स सम बारह, सारा रूप सरीसै॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२. सम चरणों में मात्राएँ १२।

३. सम चरणों के अंत में दो गुरु (ऽऽ) होते हैं। नगण का प्रयोग होना चाहिए।

४. तुक केवल सम चरणों की मिलती है।

५. गति सार छंद के समान होती है।

६. इस के दूसरे नाम पुणि साणोर, कुणियो छोटो तथा अरटी हैं।

उदाहरण—

पड़ियौ मुरछाय सेस इळ ऊपर
सकत राणसुत साँझी।
थरके भाल वनचराँ थाणाँ
मुख कुमलाणा माँझी॥

(२५) अरटियो[1]—

१. विषम चरणों में मात्राएँ १६ (४ चौकळ)। प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ १९ (१ त्रिकळ + ४ चौकल)।

२. सम चरणों में मात्राएँ १२ (३ चौकल)।

३. सम चरणों के अंत में दो गुरु (ऽऽ) होते हैं।

४. केवल सम चरणों की तुक मिलती है।

५. गति सार छंद के समान होती है।

उदाहरण—

एकण दीहड़ै मुनिराज अजोध्या
कोसक आवण कीधौ।

अंतर इतौ नगाण अरटियै लेस न कठे लखावै।
जपै मंछ इण गीत जाँगड़ै अवस नगण गण आवै॥

[1] चौकळिया कळ च्यार विखम पद आणजै।
त्रि चकल समपद, अंत जुगम गुरु जाणजै॥
धुर पद कळ उगणीस, चतुरदस सर धरै।
कवी अरटियो गीत मंछ इण इम करै॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

राजा हूत मिले रिख-राजा
दो मझ आसण दीधौ॥

(२६) खुड़द या खुड़द[१] साणोर—

१. विषम चरणों में मात्राएँ १६। प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ १८।

२. सम चरणों में मात्राएँ १३।

३. सम चरणों के अंत में दो लघु (।।) आते हैं।

४. केवल सम चरणों की तुक मिलती है।

५. गति विषम चरणों की चौपाई के समान और सम चरणों की सोरठे के सम चरणों के समान होती है।

उदाहरण—

व्याकुळ लख सेस भभीखण बोलै
कमळापत सूँ जोड़ कर।
धनुख धरण धीरज उर धरजै
ह्विव कीजै उपचार॥

(२७) सिंघचळो[२]—

१. विषम चरणों में मात्राएँ १६। प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ १८।

२. सम चरणों में मात्राएँ १३।

३. सम चरणों के अंत में एक रगण (ऽ।ऽ) आता है।

४. तुक सम चरणों की मिलती है।

५. गति विषम चरणों की चौपाई के समान और सम चरणों की सोरठे के सम चरणों के समान होती है।

---

[१]जत सोळह मत विखम जाँगड़ै, समपद कळा तेरहै सोर।
जुग लघु अंत अठारह धुर जड़, सो कवि मंछ खुड़द सैणोर॥

[२]चरण विखम साणोर लघू चा असम चरण मैं आवै।
तेरह कळा तणी हुवै सम तुक, मोहरा रगण मिलावै॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

६. सिंघचळे में और खुड़द में केवल इतना ही अंतर है कि सिंघचळे के सम चरणों के अंत में रगण आता है जो खुड़द में नहीं आता।[1]

उदाहरण—

परगट इम भ्रात चहूँ परणीजै
माण किता चा मारिया।
डाणाँ हूँत सजोड़ा डेराँ
पाछा वींद पधारिया॥

(२८) झड़मुगट[2]—

१. विषम चरणों में मात्राएँ १६। प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ १८।

२. सम चरणों में मात्राएँ १३।

३. प्रत्येक चरण में आदि में जो शब्द होता है वही अंत में आता है (प्रायः २ मात्रा का)।

४. तुक चारों चरणों की मिलती है।

५. गति विषम चरणों की चौपाई के समान और सम चरणों की सोरठे के या उल्लाले के सम चरणों के समान।

उदाहरण—

तर-वर वन सिखर जोवताँ सर तर।
कर सारँग तूणीर कर॥
वर लोहा दीठो अँग रघुवर।
परधर पड़ियो धरण पर॥

(२९) सोहणो[3]—

१. विषम चरणों में मात्राएँ १६ ; प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ १८।

---

[1] सिंघचळे के सम चरणों के अंत के दीर्घ वर्ण की जगह दो लघु वर्ण कर दिए जायँ तो वह खुड़द बन जायगा।

[2] रचै खुड़दसाणोरे, जमक धरै धुर अंत जत।
जिको गीत बुधजोर, मंछ, पयंपै झड़मुगट॥

[3] जत कै विखम वेळियो जेम। सम पद चवदै कळा सु-नेम।
गुरु-लघु मोहरा-अंत लखीजै। कवि इण रीत सोहणो कीजै॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२. सम चरणों में मात्राएँ १४।

३. सम चरणों के अंत में लघु-गुरु (।ऽ) आता है।

४. तुक सम चरणों की मिलती है।

५. गति हिंदी के ताटंक छंद के समान।

उदाहरण—

राघव आदेस पाय दसरथ रौ
कवसल्या चैं आय कनै।
दाखैं राज भरथ नै देसी
मात दियो बनवास मनै॥

(३०) अमेळ—

इस में और उपरोक्त सोहणे गीत में इतना ही अंतर है कि सोहणे में सम चरणों की तुक मिलती है, पर इस में तुक बिलकुल नहीं मिलती। इस के दोहले अतुकांत होते हैं।

(३१) वेळियो[१]—

१. विषम चरणों की मात्राएँ १६;
प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ १८।

२. सम चरणों में मात्राएँ १५।

३. सम चरणों के अंत में गुरु-लघु (ऽ।) आता है।

४. तुक सम चरणों की मिलती है।

५. इस की गति वीर या आल्हा छंद के समान होती है।

उदाहरण—

दिल अंतर एह विचारी दसरथ
धर पदवी जुवराज सधीर।

---

[१]सोळह कळा विखम पद साजै। सम पद पनरह कळा समाजै॥
धुर अठार मोहरा गुर-लघु धर। कहजै मंछ वेळियो इम कर॥

८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सो देणी विसवा ही वीसैं
राज जोग दीसैं रघुवीर ।।

(३२) अमेळ (दूसरा प्रकार)—

इस में और वेळिये गीत में केवल इतना ही अंतर होता है कि इस में तुक बिलकुल नहीं मिलती। यह अतुकांत दोहले का गीत है। हिंदी का आल्हा गीत भी जो इसी का प्रतिरूप है, प्रायः अतुकांत ही होता है। प्रथम दोहले में पहला चरण १८ मात्राओं का होगा।

उदाहरण—

जासी त्याग जकाँ रा घर सूँ
जाताँ खाग न लागै जेज ।
घर रो तोल न बाँधो धणियाँ
त्याग तणो किह बाँधो तोल ।।

(३३) हंसावळो[१]—

यह भी वेळियो गीत के समान ही होता है। विशेषता यह होती है कि इस में 'रा' (का) यह शब्द बहुत बार आता है और इस का प्रयोग 'उल्लेख अलंकार' में किया जाता है।

उदाहरण—

पय-धर रा मथण जगत रा पाळक
सर रा अचळ संग रा साथ ।
वर रा दिपण भगत रा वच्छळ
नर रा रूप नमो रघुनाथ ।।

(३४) छोटो साणोर[२]—

इस गीत में एक से दोहले नहीं आते किंतु उपरोक्त वेळियो, सोहणो, खुड़द और

[१]वरणै सुध उल्लेख विध, गुणै वेळियो गीत ।
होवै तिको हँसावळो, रा-रा सबद सरीत ।।

[२]कहुँ गुरु मोहरा लघु कहूँ, वणै दवाला वेस ।
सो छोटो साणोर सझ, कहै, सुमंछ कवेस ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाँगड़ो इन गीतों के दोहले मिले हुए आते हैं अर्थात् कोई दोहला वेळिये का होता है, कोई सोहणे का, कोई खुड़द का और कोई जाँगड़े का।

इस प्रकार इस के—

१. विषम चरणों में १६ मात्राएँ होती हैं। प्रथम दोहले के प्रथम चरण में १८ मात्राएँ होती हैं।

२. सम चरणों में १२ से लेकर १५ तक मात्राएँ होती हैं।

३. तुक केवल सम चरणों की मिलती है।

उदाहरण—

एकण दिन अमर सकळ मिल आया
करी अरज साँभळ करतार।
राज विना मारै कुण रावण
भू रौ कवण उतारै भार॥

(३५) पंखाळो[1]—

यह साणोर की ही तरह मिश्रित दोहलों का गीत है। इस में साणोर की भाँति चरणों के अंत में गुरु लघु का कोई नियम नहीं होता और गीत भर में केवल तीन ही दोहले होते हैं।

उदाहरण—

धरियो पण जनक इसी मन धारै
धनक पिनाक चढ़ाय धरै।
महपत आय सयंबर माँहे
वसुधा-कुमरी तिकौ वरै॥

च्यार भेद तिण रा चवै, कवियण वड ओकूब।
समझ वेळियो, सोहणो, खुड़द, जाँगड़ो खूब॥

[1]ह्रस्व-दीह सैणोर चौ, नेम नहीं निरनाह।
मुर द्वालो सो मंछ कह, तवै पँखाळो ताह॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(३६) ल्हैचाळ[१]—

१. विषम चरणों में १८ मात्राएँ होती हैं, और १० + ८ पर यति होती है।

२. सम चरणों में १५ मात्राएँ होती हैं।

३. सम चरणों के अंत में १ रगण (ऽ।ऽ) और रगण के बाद 'जी' शब्द आता है। (यह रगण और 'जी' की दो मात्राएँ १५ मात्राओं के अंतर्गत ही होती हैं।)

४. सम चरणों की तुक मिलती है। विषम चरणों में पूर्वार्ध (१० मात्रा) और परार्ध (८ मात्रा) की आंतरिक तुक भी मिलती है।

५. गति तोटक के समान होती है।

उदाहरण—

सुत भ्रात कटे सक, धीट वधे धक,
वीसभुजाण विचारियो जी।
निरजीवाँ वानर, नेम गमुन्नर,
धेख इसो मन धारियो जी॥

(३७) पहाड़गत[२]—

१. विषम चरणों की मात्राएँ १९; प्रथम दोहले के प्रथम चरण की मात्राएँ २१।

२. सम चरणों की मात्राएँ १८।

३. सम चरणों के अंत में गुरु-लघु (ऽ।) आता है। प्रत्येक चरण के आदि में सागड़दी, धागड़दी आदि 'आगड़दी' वाला ६ मात्रा का शब्द होता है। आगे आने वाले शब्द के आदि में जो वर्ण होता है उस के साथ

---

[१] पहलै विसराम कळा दस पूरै, फिर अठ मिल तुक विखम फबै।
सम तुक आठ रगण मोहरा सझ, सिर जिण रै जीकार सबै॥

[२] विखम चरण उगणीस विचारै।
आणै समपद कळा अठारै॥
आगे यौं मोहरा सम आवै।
गुणी पाड़गत गीत गिणावै॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आगड़दी जोड़ कर चरण के आरंभ में रख देते हैं। प्रथम दोहले के प्रथम चरण की जो मात्राएँ शुरू में अधिक होती हैं वे आगड़दी वाले शब्द के पहले आती हैं।

४. सम चरणों की तुक मिलती है।

उदाहरण–

गंगागड़दी दहूँ ओडाँ दळ गाजै
तागड़दी तवळ बाजै रिणतूर।
रागड़दी राम-रावण जुध रोपै
सागड़दी समाम अड़े सज सूर॥

(३८) शुद्ध साणोर[1]––

१. विषम चरणों में मात्राएँ २० (४ पंचकळ)। पहले दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ २३ (१ त्रिकल + ४ पंचकल)।

२. सम चरणों में मात्राएँ १८ (३ पंचकल + १ त्रिकल)।

३. सम चरणों के अंत में गुरु-लघु (ऽ।) होता है।

४. सम चरणों की तुक मिलती है।

५. गति कड़खा अथवा द्वितीय झूलना छंद से कुछ-कुछ मिलती हुई होती है।[2]

उदाहरण––

नराँ-नाथ नरपाळ भोपाळ महपत न्रपत
भूपती धरपती यळापती भूप।
प्रथीपत छत्रधर नरेसुर महीपत
अधपती रसा-पत तेज-आनूप॥

---

[1] विखम वीस, सम चरण अठारह, धुरपद कळ तेबीस धरो।
मंछ कहै गुरु-लघु अँत मोहरै, कवि इम सुध सैणोर करो॥

[2] अंतिम मात्रा हटा देने से इन छंदों के समान गति हो जायगी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(३९) प्रहास साणोर[1] (गरबत)—

१. विषम चरणों में मात्राएँ २० (४ पंचकल)। प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ २३ (१ त्रिकल + ४ पंचकल)।

२. सम चरणों में मात्राएँ १७ (३ पंचकल + १ गुरु)।

३. सम चरणों के अंत में एक गुरु (ऽ) होता है।

४. सम चरणों की तुक मिलती है।

५. गति कड़खा अथवा द्वितीय झूलना छंद के समान होती है।

उदाहरण—

दुहूँ जोड़ कर पूछियो सगत एकण दिवस।
आखजै जगतपत भेद इण रो॥
आप रो ध्यान नित करै सारी इळा।
करो नित ध्यान सो आप किण रो॥

(४०) मुगताग्रिह अथवा रिणखरो[2]—

प्रहास साणोर और इस में केवल इतना ही अंतर है कि इस में प्रथम चरण का अंतिम शब्द[3] द्वितीय चरण के आरंभ में दुबारा आता है, और इसी प्रकार तृतीय चरण का अंतिम शब्द[3] चतुर्थ चरण के आरंभ में आवृत्त होता है अर्थात् दो सिंहावलोकन अलंकार विशेष होते हैं।

उदाहरण—

---

[1] गुरु सम चरण प्रहास गीत गिण, तव कळ सतरै तिकण तणै।
बीजी मात्रा सरब बराबर, भेद इतो हिज मंछ भणै॥ —रघुनाथरूपक
कळा प्रथम तेबीस कर, दूजी सतरा दाख।
इण ही झड़ रै अंत गुरु, रीत मेळ री राख॥
बीस कळा, सतरा वळे, सरब गीत इण सोय।
भेद वडा साणोर भव, हद परिहास ज होय॥ —डिंगळकोष

[2] गरबत कीजै गीत, अंत विखम तुक आद सम।
सिंघ-विलोक सरीत, मुगताग्रह जिणनै मुणै॥

[3] प्रायः पाँच मात्राएँ (शब्द चाहे एक हो या अधिक)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पगाँ वंद उतमंग मा कनै थी पधारे।
पधारे महल को दंडपाणी॥
विदेही-सुता नै गुणी जेती विगत।
विगत तेती पुणी तात वाणी॥

(४१) वडो साणोर[1]—

इस में शुद्ध साणोर और प्रहास साणोर के दोहले मिले-जुले रहते हैं, अर्थात् कोई दोहला शुद्ध साणोर का होता है तो कोई प्रहास साणोर का।

उदाहरण—

धुरा दरस सर पंडु मुन कला तेवीस धर
जुग विसम सपत कळ दुसर जितरै।
पंच कळ तणी ह्वै च्यार गण विखम पद
सामु है मेल गण कळा सतरै॥

(४२) अरध भाखड़ी[2]—

१. प्रथम दो चरणों में २५ मात्राएँ होती हैं, जिन का विभाग इस प्रकार होता है।—५ मात्रा + ४ मात्रा + (जी शब्द = २ मात्रा) + १४ मात्रा; अर्थात् ९ मात्रा के बाद जी शब्द आता है और फिर १४ मात्राएँ आती हैं।

२. पिछले दो चरण वेताळ या काम-रूप छंद के होते हैं जिन में प्रत्येक में (१६ + १०) २६-२६ मात्राएँ होती हैं।

३. चरणों के अंत में गुरुलघु (ऽ।) आता है। दूसरे चरण के अंत के शब्द

---

[1] राजस्थानी में सब से अधिक प्रसिद्ध गीत सैणोर और उस के विभिन्न भेद हैं। सैणोर को 'रघुनाथरूपक' के कर्त्ता ने 'सिरै गीत' कहा है, और गीतों का विवेचन सैणोर से ही आरंभ किया है।

[2] (क) धुरा अंत धर भाखरी, पद चिहुँ-चिहुँ कर पेम।
भेद सु दोय-दोय पद भणौ अरध-भाखरी एम॥
(ख) इस का दुगना भाखरी होता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तीसरे चरण के आदि में ज्यों के त्यों या कुछ हेरफेर के साथ आते हैं अर्थात् सिंहावलोकन अलंकार अवश्य आता है।

४. तुक पहले चरण की दूसरे के साथ और तीसरे की चौथे के साथ मिलती है।

उदाहरण—

मिथुला-मुगट रा जी खत लै वाँचिया कर खाँत
जिण विध मुख जवा जी भूपत सुणे सगळी भाँत ॥
सह भाँत विगत विवाह सुणवो अंग प्रफुलत आण
पत-किरण निकसे रसम परसत जळज विकसे जाण ॥

(ग) मात्रिक विषम

[तीन चरणों के दोहले]

(४३) त्रपंखो[1]—

१. प्रथम चरण में मात्राएँ १६, (अंत में १ चौकल)।
२. दूसरे चरण में मात्राएँ १६, (अंत में १ चौकल)।
३. तीसरे चरण में मात्राएँ २०, (४ पंचकल)।
४. पहले और दूसरे चरणों की तुक मिलती है।

उदाहरण—

आवण रघुवर सुणी अवाई।
वीस-भुजा-धर सभा वणाई॥
जठे रावण-अनुज बोलियो जोरवर॥

(४४) त्रबंको[2]—

१. प्रथम चरण में मात्राएँ १६।

---

[1]दोय पद धरै दुमेळ, विखम त्रतिय साणोर वड।
मंछ सुकवि इण मेळ, गीत त्रपंखो गुणियणाँ॥

[2]कळ सोड़स इक पद में करजै। बे पद मोहरो एकहि वरजै॥
दुय धुर खट कळ अंत दिरीजै। चौकळ विखमै चार चवीजै॥
वे दुय चौकळ सो चिहुँ वाराँ। उळट-पळट कर पढै उदारा॥
मोहरो तीजे मेल मिलावै। गीत त्रबंको ताहि गिणावै॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२. दूसरे चरण में मात्राएँ १६।

३. तीसरे चरण में मात्राएँ ३२। ये मात्राएँ इस प्रकार रक्खी जाती हैं—
द्विकल + चौकल + चौकल + चौकल + चौकल + चौकल + चौकल + षटकल।

४. पहले और दूसरे चरणों के अंत में एक ही शब्द आता है। तीसरे चरण में पहले, चौथे और पाँचवें चौकल में एक ही शब्द तीन बार आता है। इसी प्रकार दूसरे, तीसरे और छठे चौकल में भी एक ही शब्द वार वार आता है।

५. तुक तीनों चरणों की मिलती है।

६. गति पदपादाकुलक अथवा तोटक के समान होती है।

उदाहरण—

पूछी मा आगळ आय प्रभा।
पितु बंधु न दीसै रंग प्रभा॥
सज राग न रंग न रंग न राग न राग न रंग न राजसभा॥

(४५) चित इलोळ[1]—

१. पहले चरण में मात्राएँ १६ + १० = २६ (अंत में ऽ।)।

२. दूसरे चरण में मात्राएँ १६ + १० = २६ (अंत में ऽ।)।

३. तीसरे चरण में मात्राएँ २६ (अंत में ऽ।)।

४. तीसरे चरण के आरंभ में तो शब्द जोड़ दिया जाता है। इस की दो मात्राएँ जोड़ने से तीसरे चरण में कुल मात्राएँ २८ होती हैं। इस 'तो' के बाद ५ मात्रा का शब्द आता है। इस शब्द के बाद 'जी' शब्द आता है। इस 'जी' के बाद वही पाँच मात्रा का शब्द आवृत्त होता है। तीसरे चरण के अंत में पाँच मात्रा के उस शब्द की फिर आवृत्ति की

---

[1]प्रोढ गीत रै ऊपरै तवै उलाळो तोल।
कहै मंछ, तिण नूं सुकवि आखै चित्तइलोळ॥

९

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाती है। इस प्रकार तीसरे चरण में पाँच मात्रा का यह शब्द तीन बार आता है।

कुल मिला कर तीसरे चरण का गठन इस तरह होगा—द्विकल (तो) + पंचकल + द्विकल (जी) + पंचकल + चौकल + पंचकल + पंचकल = २८ मात्रा।

५. तुक तीनों चरणों की मिलती है।

६. गति कामरूप या वेताल छंद के समान होती है।

उदाहरण—

ले हुकम सीता खबर लेवण, सक ज राघव संत।
लह लंक दिस सज उदध लंघण, हालियो हणमंत।।
तो बलवंत जी बलवंत वारध लाँघवे बलवंत।।

(४६) चोटियो[1]—

१. पहले चरण में मात्राएँ १६ + १२ = २८ (अंत में SS)। प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ २ + १६ + १२ = ३०।

२. दूसरे चरण में मात्राएँ १६ + १२ = २८ (अंत में SS)।

३. तीसरे चरण में मात्राएँ १९ (अंत में SS)।

४. तुक तीनों चरणों की मिलती है।

५. पहले दो चरणों की गति सार छंद के समान होती है।

उदाहरण—

बार आव रे रिण रोपण वंका, बंध सुग्रीव वकारे।
ऊठे सुण ध्रम जघड़ अधायौ, धींग क्रोध उर धारे।।
हूँ हिव आवियो पग माँड हकारे।।

---

[1]जोड़ै दुहो जाँगड़ेवाळो, चरण पंचमो फेर चवीजै।
उण मैं कळा करै उगणीसूँ, ठीक अंत गुर दोय ठवीजै।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[चार चरणों के दोहले]

(४७) अमेळ[1]—

१. पहले चरण में मात्राएँ १६।

२. दूसरे चरण में मात्राएँ १४ या १५ (अंत में ऽ।)।

३. तीसरे चरण में मात्राएँ १६।

४. चौथे चरण में मात्राएँ १५ या १४ (अंत में ।ऽ)। (दूसरे में १४ हो तो चौथे में १५, और दूसरे में १५ हो तो चौथे में १४ मात्राएँ हों।)

५. तुक बिलकुल नहीं मिलती।

६. गति ताटंक (१४) या वीर (१५) के समान होती है।

उदाहरण—

सब री वन माँहि प्रीत सूँ साँची
उवर जठै दरसण अभिळाख।
आश्रम उभै सहोदर आया
त्रिभुवन-नायक सेस तठै॥

(४८) काछो[2]—

१. प्रथम चरण में मात्राएँ १४ + १४ + ७ + ५। प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ १८ + १४ + ७ + ५।

२. दूसरे चरण में मात्राएँ ९ + ७ + ७ + ३ (अंत में ऽ।)।

३. तीसरे चरण में मात्राएँ ९ + ७ + ७ + ५।

४. चौथे चरण में मात्राएँ ९ + ७ + ७ + ३ (अंत में ऽ।)।

---

[1] इण रा मोहरा मिलै नहीं।

[2] चवद चवद दस दोय कळा इम विखम चरण कर।
नवे सात दस निरख विहद पद मोहरे ग-ल वर॥
कदम त्रतिय नव कळा सात बारै साजीजै।
चौथे पद नव सात दसे कळ मोहरा दीजै॥
इक सार सझै साँकळ अमिट धुर कळ'ठार धरीजियै।
कवि मंछ कहै इण रीत कर काछो गीत करीजियै॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

५. तुक दूसरे और चौथे चरण की मिलती है। इस के अतिरिक्त नीचे लिखी मात्राओं पर आंतरिक तुक भी मिलती है—

प्रथम चरण	=	१४ + १४ + ७
दूसरा चरण	=	९ + ७ + ७
तीसरा चरण	=	९ + ७ + ७
चौथा चरण	=	९ + ७ + ७

६. गति १४ मात्रा की गीतिका या रूपमाळा के पूर्वार्ध के समान,
१६ (९ + ७) मात्रा की हरिगीतिका या वेताल के पूर्वार्ध के समान,
१२ (७ + ५) की गीतिका या हरिगीतिका के उत्तरार्ध के समान,
१० (७ + ३) मात्रा की रूपमाळा या वेताल के उत्तरार्ध के समान।

उदाहरण—

रघुपत जगत मिण अुपसास राळै
भामणी चहुँ ओर भाळै, वन विचाळै, जोर वर
चित लाग चाळै, गात गाळै, धरस भाळै, धीर।
दूरै दिखाळै, केक काळै, अचल थाळै ऊपरै
दीठा दयालै, तेण तालै, वप वडाळै, वीर॥

[पाँच चरणों के दोहले]

(४९) दीपक[1]—

१. प्रथम चरण में मात्राएँ १६। प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ १८।
२. दूसरे चरण में मात्राएँ १५ (अंत में ऽ।)।
३. तीसरे चरण में मात्राएँ १६।
४. चौथे चरण में मात्राएँ १६।
५. पाँचवें चरण में मात्राएँ १५ (अंत में ऽ।)।

---

[1]तुकाँ वेळिये गीत री आद दुतिय चतुरंग।
त्रिय पद दोय दुमेळ तुक, दीपक सो दाखंत॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

६. तुक दूस और पाँचवें की तथा तीसरे और चौथे चरणों की मिलती है।

७. गति १६ मात्रावाले चरणों की चौपाई के समान और १५ मात्रावाले चरणों की चौपई के समान होती है।

उदाहरण—

इसवर सिय सेस चढे रथ ऊपर।
तहक सारथी खड़े तुरंग ॥
नगर हलक हाले नर-नारी।
घर धंधो छोडे घरबारी।
मिल तानूँ दी सीख उमंग ॥

(५०) लघु चितविलास[1]—

१. प्रथम चरण में १४ मात्राएँ होती हैं, जिन का गठन इस प्रकार होता है— ६ मात्रा + जी शब्द की दो मात्रा + ६ मात्रा (इन ६ मात्राओं में पहली छः मात्राओं वाले शब्द ही आवृत्त होते हैं)।

२. दूसरे चरण में १४ मात्राएँ होती हैं। अंत में वही शब्द आता है जो पहले चरण के अंत में होता है।

३. तीसरे चरण में १४ मात्राएँ होती हैं।

४. चौथे चरण में भी १४ मात्राएँ होती हैं।

५. पाँचवें चरण में ८ मात्राएँ होती हैं जिन में पहले चरण की 'जी' शब्द सहित छः मात्राएँ ज्यों की त्यों रहती हैं।

६. तुक पाँचों चरणों की मिलती है।

उदाहरण—

जुध जूटे जी जुध जूटे।
जो सेल दसाणण जूटे।

---

[1]कळ खट करे वीपसा करणौ। विच-विच गुरु संबोधन वरणौ ॥
तुक चवदै कळ फेर जतावै। उही ज मोहरो तिण में आवै ॥
इण विध दोय पद वळे उचारै। धर चौकळ सम मोहरा धारै ॥
आद सँबोधन धुर तुक अंत। चितविलास सो गीत चवंत ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्रिजड़ाँ मुँहड़ै तन तूटे।
वसु पड़ियो प्राण विछूटे।
जी जुध जूटे ॥

(५१) चितविलास[१]—

१. प्रथम चरण में मात्राएँ १४।

२. दूसरे चरण में मात्राएँ १४।

३. तीसरे चरण में मात्राएँ १८ + १२ = ३० (अंत में ऽऽ)। प्रथम दुवाले के तीसरे चरण में मात्राएँ १९ + १२ = ३१।

४. चौथे चरण में मात्राएँ १६ + १२ = २८ (अंत में ऽऽ)।

५. पाँचवें चरण में मात्राएँ ८।

६. प्रथम चरण में पहले ६ मात्राओं का एक (या अधिक) शब्द होता है; फिर दो मात्रा का एक संवोधन शब्द (जैसे रे, जी आदि) आता है और उस के बाद फिर वही ६ मात्रा का शब्द दुबारा आता है। पाँचवें चरण में पहले चरण की पहली छः मात्राएँ छोड़ कर बाक़ी शब्द ज्यों के त्यों रख दिए जाते हैं।

७. तुक पाँचों चरणों की मिलती है।

८. गति प्रथम दो चरणों की मानव या हाकलि के समान और चौथे की ताटंक के समान होती है।

उदाहरण—

धनु धारे रे धनु धारे।
सर एकण बालि सँघारे॥

---

[१] कळ खट करे वीपसा करणौ। बिच जिण गुर संबोधन वरणौ॥
तुक चवदै कळ वळे जतावै। मोहरा तिण रा मेळ मिलावै॥
उण पर दुहो अरटियो वाळो। फिर तुक आद तिका अंत फाळो॥
धुरे तिके मोहरा सुध धारो। चितविलास सो गीत उचारो॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महाराजधिराज सुग्रीव मनाँरा, सारा कारज सारे ।
कीधो भूप पुरी केकंधा, दोयण दूर बिदारे ॥
रे धनु धारे ॥

[छः चरणों के दोहले]

(५२) हेलो[1]—

१. प्रथम चरण में मात्राएँ १४ (अंत में १ चौकळ)। प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ १६ (अंत में १ चौकळ)।
२. दूसरे चरण में मात्राएँ १४ (अंत में १ चौकळ)।
३. तीसरे चरण में मात्राएँ १० (अंत में ऽ।)।
४. चौथे चरण में मात्राएँ १४ (अंत में १ चौकळ)।
५. पाँचवें चरण में मात्राएँ १४ (अंत में १ चौकळ)।
६. छठे चरण में मात्राएँ १० (अंत में ऽ।)।
७. तुक पहले और दूसरे की, चौथे और पाँचवें की, तथा तीसरे और छठे की मिलती है।
८. गति चौदह मात्राओं की गीतिका के पूवार्ध के समान और १० मात्राओं की रूपमाला के उत्तरार्ध के समान होती है।

उदाहरण—

उठ आय कवसल मात आगे ।
लुळे सीरख पाय लागे ॥
दखै वायक दीण ॥
केकयी वदनाम कीनो ।
दोख मोटो मनै दीनो ॥
हुवौ सारै हीण ॥

---

[1] कळ चवद-चवदै दुपद साँकळ अंत चौकळ आणियै ।
पद त्रतिय दसकळ, दीह-लघु पढ ठीक मोहरा ठाणियै ॥
इण भाँत फिर पद तीन उचरै पूर द्वालो पावियै ।
कळ सोळ धुर पद, तीन गुण कर गीत हेलो गावियै ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(५३) चोटियाळ[१]—

१. पहले चरण में मात्राएँ २० (४ पंचकळ)। प्रथम दुवाले के प्रथम चरण में मात्राएँ २३ (१ त्रिकल + ४ पंचकळ)

२. दूसरे चरण में मात्राएँ १७ (३ पंचकळ + १ गुरु)।

३. तीसरे चरण में मात्राएँ १०।

४. चौथे चरण में मात्राएँ २० (४ पंचकळ)।

५. पाँचवें चरण में मात्राएँ १७ (३ पंचकळ + १ गुरु)।

६. छठे चरण में मात्राएँ १०।

७. तुक दूसरे और पाँचवें की तथा तीसरे और छठे की मिलती है।

८. तीसरे तथा छठे पद की गति चांद्रायणा के उत्तरार्ध के समान होती है।

उदाहरण—

सुणे सुपणखा वैण चढ हाकिया साकुराँ।
खर दुखण त्रिसिर खळ झाल खागाँ॥
पूर तन पहरियाँ॥
उरस छबता का आविया अड़ाकी।
आखता असुर रघुवीर आगाँ॥
कोप लोयण कियाँ॥

(५४) झमाल[२]—

१. इस गीत का प्रत्येक दोहला एक दोहा और एक चांद्रायणा के मेल से बनता है। कुंडळिया की भाँति दोहे के चार चरणों के दो चरण गिने जाते हैं, और चार चरण चांद्रायणा के होते हैं। कुल चरण छः होते हैं।

२. मात्राएँ इस प्रकार होती हैं—

---

[१]गरबत कीजै गीत पद दोय-दोय रै ऊपरै।
मोहरा दस कळ, मीत, चोटियाळ जिण नूँ चवै॥

[२]दूहे पर चंद्रायणो धरै उलाळो धार।
गीताँ रूप झमाल गुण वरणै मंछ विचार॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पहला चरण,(दोहे का पूर्वार्ध) (१३ + ११) २४ मात्रा।

दूसरा चरण, (दोहे का उत्तरार्ध) (१३ + ११) २४ मात्रा।

तीसरा चरण, (११ + १०) २१ मात्रा।

चौथा चरण, (११ + १०) २१ मात्रा।

पाँचवाँ चरण, (११ + १०) २१ मात्रा।

छठा चरण, (११ + १०) २१ मात्रा।

छहों चरणों में सब मात्राएँ १३२ होती हैं।

३. दोहे का चौथा चरण चांद्रायणा के आरंभ में आवृत्त होता है (जैसा कुंडलिया में किया जाता है)।

४. तुक दो-दो चरणों की मिलती है अर्थात् पहले की दूसरे के साथ, तीसरे की चौथे के साथ और पाँचवें की छठे के साथ।

उदाहरण—

न्रिप-मेळे आया नगर, दोड़ वधाईदार।
कही विगत विधविध करे, आणँद भरे अपार ॥
आणँद भरे अपार, अँतेवर आय नै।
सुभट सचिव जिणसाथ, सुवँण सुणाय नै ॥
परण पधारे राम, जीत दुजराज नै।
तुरत करीजै त्यार, साँभेळो साज नै ॥

(५५) **गजगत**[1]—

१. प्रथम चरण में २० मात्राएँ (अंत में ।ऽ)।

२. दूसरे चरण में २० मात्राएँ (अंत में ।ऽ)।

३. तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठे चरण हरिगीतिका छंद के चार चरणों से

---

[1]**चव कळा नव नव तणै चौपद, अंत लघुगुरु कीजियै।**
जीकार दुय दुय पदाँ विच, जप वहस मोहरा वीजियै ॥
सीहाविलोकण तेण पर सज छंद गीया छावियै।
कवि मंछ, रघुवर क्रीत कर कर गीत गजगत गावियै ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बनते हैं जिस के प्रत्येक चरण में (१६+१२) २८ मात्राएँ होती हैं।

४. पहले और दूसरे चरणों में पहले ९ मात्राएँ रखते हैं फिर 'जी' यह दो मात्रा का शब्द रखते हैं, और फिर ९ मात्राएँ रखते हैं।

५. दूसरे चरण के अंत के शब्द ज्यों के त्यों या क्रम वदल कर तीसरे चरण के आरंभ में लाए जाते हैं।

६. तुक दो-दो चरणों की मिलती है। पहले दो चरणों में पूर्वार्ध (९ मात्रा) और उत्तरार्ध (११ मात्रा) की तुक भी मिलनी चाहिए।

उदाहरण—

कुंभज कहकहै जी सियवर सुण सहै।
वंदे पग वहै जी गैलौ वन गहै॥
वन गहे गैलौ जेण विच मैं, रहै राखस रोस मैं।
तन तुंग नाम कबंध तिण रौ, करग जोजन कोस मैं॥
सो हुतौ गँध्रप श्राप वासव, धिके प्राक्रम धारिया।
विण सीस आप पसार बाहाँ, घणा जीव सँघारिया॥

(५६) ललतमुगट[1]—

१. इस का प्रत्येक दोहला एक दोहा और एक त्रिभंगी के मेल से वनता है।

२. पहले दो चरणों में २४-२४ मात्राएँ होती हैं।

३. पिछले चार चरणों में ३२-३२ मात्राएँ होती हैं।

४. छहों चरणों में कुल मात्राएँ १७६ होती हैं।

५. दूसरे चरण का उत्तरार्ध कुछ हेरफेर से तीसरे चरण के आरंभ में आवृत्त होता है।

६. प्रत्येक दोहले के अंत का शब्द अगले दोहले के आरंभ में आना चाहिए और अंतिम दोहले के अंत का शब्द प्रथम दोहले के आरंभ में आना चाहिए

---

[1]भण दोहे पर छंद त्रभंगी, सिंघविलोकण सार।
ललतमुगट सो गीत सुलक्षण, वरणै मंछ विचार॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

७. दो-दो चरणों की तुक मिलती है। त्रिभंगी वाले चरणों में १० + ८ + ८ पर आंतरिक तुक भी मिलनी चाहिए।

उदाहरण—

करे जीत लंका कलह, दे भ्रत राज उदार।
आया राम अजोधिया, कवसळ राजकँवार॥

कवसल्ल कँवारं, लै सिय लारं, जग जोधारं, सेस जती।
बम्भीख वधारं, अवर अपारं, पदम अठारं, कीस-पती॥
अमराँ असमाणाँ, बैठ विमाणाँ, सुमनस पाणाँ, बरसावै।
धुर नोपत घायी, धवळ वधायी, नवळ वधायी, सरसावै॥

(५७) मनमोद[1]—

१. इस गीत का दोहला दोहे और कड़खे के मेल से बनता है।

२. प्रत्येक दोहले में प्रथम दो चरणों की मात्राएँ २४-२४ होती हैं।

३. पिछले चार चरणों में ३७-३७ मात्राएँ होती हैं।

४. छहों चरणों में १९६ मात्राएँ होती हैं।

५. दूसरे चरण के अंत के शब्द कुछ हेर-फेर के साथ तीसरे चरण के आरंभ में आते हैं।

६. प्रत्येक दोहले के अंत का शब्द अगले दोहले के आरंभ में आता है। अंतिम दोहले के अंत का शब्द प्रथम दोहले के आरंभ में आना चाहिए।

७. तुक पहले चरण की दूसरे के साथ मिलती है तथा अंतिम चारों चरणों की परस्पर मिलती है।

उदाहरण—

डेरा थी साजै डवर, पह इम कीध पयाण।
करवा सुराँ सहाय कज, असुराँ सूँ आराण॥

---

[1] **गुण दोहे सी झाळगत ऊपर कड़खो आण।**
हुवै गीत मनमोद हद वद रघुपत वाखाण॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

राण दिस हालिया, ठाण आराण रुख, कोह असमाण चढ़, भाण ढंका।
गोम नेजा हलक, राग सिंधू गहक, डहक डंडाहडाँ, सीस डंका॥
जबर जय जीव, सुग्रीव अंगद जिसा, वळे पत भाळ सा, वीर बंका।
बाँध चालाँ खड़े, अड़े नभ महाबळ, लड़ण दसकंध सूँ लेण लंका॥

(५८) सतखणो[1]—

१. प्रथम चरण में मात्राएँ १६; प्रथम दुवाले के प्रथम चरण में मात्राएँ १८।

२. दूसरे चरण में मात्राएँ १२ (अंत में ऽऽ)।

३. तीसरे चरण में मात्राएँ १६।

४. चौथे चरण में मात्राएँ १२ (अंत में ऽऽ)।

५. पाँचवें चरण में मात्राएँ ८ (अंत में ऽऽ)।

६. छठे चरण में मात्राएँ ८ (अंत में ऽऽ)'।

७. सातवें चरण में मात्राएँ ९।

८. सातों चरणों में कुल मात्राएँ ८१।

९. पाँचवें चरण के आदि में दो मात्रा का एक संवोधन होता है और फिर छः मात्रा का एक या एकाधिक शब्द होना चाहिए।

१०. छठे चरण में पाँचवें चरण के शब्द ही ज्यों के त्यों रक्खे जाते हैं।

११. सातवाँ चरण गीत के सब दोहलों में एक सा ही होता है।

१२. तुक दूसरे, चौथे, पाँचवें और छठे चरणों की मिलती है।

उदाहरण—

आया ऋग मार सेस नूँ आखै।
बंधव सुणौ सबीता॥
दारुण कुटी विडंगी दीसै।

---

[1]आद जाँगड़ो द्वालो आवै। जिण पर अठ कळ मेल सजावै॥
धुर जिण रे संबोधण धारै। उभै वार सो चरण उचारै॥
पद नव कळ फिर ठेर पुणीजै। गीत सतखणो मंछ गुणीजै॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सही गमायी सीता
रे मन मीता
रे मन मीता
किण विध कीजिये ।।

[आठ चरणों के दोहले]

(५९) अठताळो[1]—

१. प्रथम चरण में मात्राएँ १४; प्रथम दुवाले के प्रथम चरण में मात्राएँ (४ + १४) १८।

२. दूसरे, तीसरे चरण में मात्राएँ १४-१४।

३. चौथे चरण में मात्राएँ १० (अंत में ऽ।)।

४. पाँचवें, छठे और सातवें चरणों में मात्राएँ १४-१४-१४।

५. आठवें चरण में मात्राएँ १० (अंत में ऽ।)।

६. तुक पहले, दूसरे, तीसरे, पाँचवें, छठे और सातवें चरणों की मिलती है। इसी प्रकार चौथे और आठवें चरणों की तुक भी मिलती है।

७. चौदह मात्रा वाले चरणों की गति गीतिका छंद के पूर्वार्ध के समान होती है।

उदाहरण—

काकै कुंभवाळे वैर काजा
सक्र जीत उजेळ साजा
कियण गो खळ कुंभ काजा
जाग ताजा जोस ।

---

[1]तुक कळ चवद चवद री तीन । लख चौथी तुक दस कळ लीन ।।
जिण में मोहरे गुरु लघु जाण । इम फिर चौतुक द्वालो आण ।।
पिण अठ तुक इण साँकण पाठ । आद तणो तुक कळ दस आठ ।।
यौं अठताळो गीत उचारै । कहै मंछ प्रभु गुण इधकारै ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाय जोगण वंद जाजा
प्रजुष्ठ वहनी करै प्राजा
वहण आवध होमा वाजा
कपद राजा रोस ॥

(६०) भँवरगुंजार [1]नंबर१—

१. पहले और पाँचवें चरणों में १६–१६ मात्राएँ होती हैं।

२. दूसरे, तीसरे, छठे और सातवें चरणों में से प्रत्येक में १४-१४ मात्राएँ होती हैं।

३. चौथे और आठवें चरणों में ९-९ मात्राएँ होती हैं।

४. पहले, दूसरे, पाँचवें और छठे चरणों के अंत में दो लघु (।।) होते हैं। चौथे और आठवें चरणों के अंत में दो गुरु (ऽऽ) होते हैं।

५. तुक पहले की दूसरे के साथ, पाँचवें की छठे के साथ और चौथे की आठवें के साथ मिलती है।

६. गति हरिगीतिका और गीतिका के पूर्वार्ध से वहुत कुछ मिलती हुई सी होती है।

उदाहरण—

हणु मिलत धुर हर दीध सिर हथ
रिधु वजरंग हुवो समरथ
चवे रघुबर वयण वनचर
सीत सुध साजै ॥
तो करूँ अरिमण तेण कण-कण
हरख मारूँ विसख हण हण
विकट पूरूँ मनाँ वंछत
गहर गुण गाजै ॥

---

[1]सोळहै प्रथम पद, दूसरे चवदस ज, साकळी जुगम, लघु अंत साजै ।
चवद कळ त्रतिय, विसराम चवथै चरण, रस कळा दोय गुर मेळ राजै ॥
वळे तुक च्यार इम सार द्वालो वणै, रीत कवि एण अणुसार राखै ।
चिरत धनुधार रच, मंछ, सुविचार चित भँवरगुंजार सो गीत भाखै ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(६१) भँवरगुंजार नंबर २—

१. भँवर गुंजार नंवर १ और नं० २ में केवल इतना ही अंतर है कि उस में पहला और पाँचवाँ चरण १६-१६ मात्रा का होता है, और इस में तीसरा और सातवाँ चरण १६-१६ मात्रा का होता है। इस के पहले और पाँचवें चरणों में १४-१४ मात्राएँ होती हैं।

२. पहले, दूसरे, पाँचवें, छठे चरणों में मात्राएँ १४-१४।

३. तीसरे और सातवें चरणों में मात्राएँ १६-१६।

४. चौथे और आठवें चरणों में मात्राएँ ९-९।

५. बाक़ी बातें नंबर १ के समान ही होती हैं।

६. चरणों के अंत में गुरु-लघु का नियम भी इस पर लागू नहीं होता।

उदाहरण—

मिळिया सु राघव लिखमणं
अति कपी पोरस ऊफणं
सुग्रीव अड़ आकास सीरख
थरक गिर थहरं।
विध हले वीर महाबलं
गह बाल हूत दमंगलं
दिल अभय केकंधा दवारै
गजे सुर गहरं॥

(६२) डोढो[1]—

१. इस में और भँवरगुंजार नंवर २ में केवल इतना ही अंतर है कि इस के चौथे और आठवें चरणों में ९ की जगह १०-१० मात्राएँ होती हैं।

---

[1]कळ चवदै चवदै तणी दुय तुक मिलै मोहरा ता महीं।
कळ त्रतिय सोड़स वळे दस कळ चतुरथी तुक में चही॥
तिण माँहि मोहरे गुरु-लघू तव चार तुक रच चोज सूँ।
इण भाँत पद फिर च्यार उचरै मिलै डोढो मोज सूँ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२. पहले, दूसरे, पाँचवें और छठे चरणों में मात्राएँ १४-१४।

३. तीसरे और सातवें चरणों में मात्राएँ १६-१६।

४. चौथे और आठवें चरणों में मात्राएँ १०-१० (अंत में ऽ।)।

५. तुक पहले की दूसरे के साथ, पाँचवें की छठे के साथ तथा चौथे की आठवें के साथ मिलती है।

६. गति १४ मात्रा की गीतिका या रूपमाला के पूर्वार्ध के समान, १६ मात्रा की हरिगीतिका या वेताल के पूर्वार्ध के समान और १० मात्रा की रूपमाला या वेताल के उत्तरार्ध के समान।

उदाहरण—

पुर अवध सूँ हुय निज पगाँ।
मुनि वहै आस्त्रम मारगाँ।
सँग राम लखमण कुँवर दसरथ।
धरम धुज रिणधीर ॥
संपेख अग नग साख सी।
रत रोस मारग राखसी।
तिह नाक पाण विछेद ताडे।
वाण इक रघुवीर ॥

(६३) त्राटको[1] —

१. पहले चरण में मात्राएँ १६। प्रथम दोहले के प्रथम चरण में मात्राएँ १८।

२. दूसरे, तीसरे, पाँचवें, छठे और सातवें चरणों में मात्राएँ १६-१६।

३. चौथे और आठवें चरणों में मात्राएँ ११-११ (अंत में ऽ।)।

---

[1] सोळ-सोळ कळ त्रिय पद साजै। सुध इक साँकळ रीत समाजै ॥
भण चौथे मोहरे इण भंता। एकादस कळ गुरु लघु अंता ॥
वळे च्यार तुक एम वखाणौ। आठ तुकाँ द्वालो इक आणौ ॥
धुर पद कळा अठारै धरजै। कवी त्राटकौ गीत सु करजै ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

४. तुक पहले, दूसरे और तीसरे की, तथा पाँचवें, छठे और सातवें की, और चौथे तथा आठवें की मिलती है।

५. गति १६ मात्रा की चौपाई के समान तथा ११ मात्रा की दोहे के सम चरण के समान।

उदाहरण—

रद चंपै ओठ डसै रढ रावण,
अंग खड़ा रोमंच अभावण,
सोक सुजाव प्रनाळाँ सावण,
नीर झरै जिम नैण ॥
नाँखे बारमबार निसासाँ,
हथ्थाँ तेग गही चँद्रहासाँ,
कीधो दारुण कोप प्रकासा,
दोट सिया सिर दैण ॥

(६४) मंदार[1]—

१. प्रथम और पाँचवें चरणों में मात्राएँ १६ (अंत में ऽ)।

२. दूसरे और छठे चरणों में मात्राएँ १६ (अंत में ऽ)।

३. तीसरे और सातवें चरणों में मात्राएँ १८।

४. चौथे और आठवें चरणों में मात्राएँ १३ (अंत में ऽ।ऽ)।

५. तुक पहले और दूसरे की, पाँचवें और छठे की, तथा चौथे और आठवें की मिलती है।

६. गति तोटक से कुछ-कुछ मिलती है।

उदाहरण—

सुण सेस सिया ची सोधा नूँ
जेले दिस च्यारूँ जोधा नूँ
सुग्रीव कह्यौ दिस प्राची सोधण ॥
वानर नीत वनीत सा ॥

---

[1]उमँग दुपद कर ऊपरै, अरध सीहँचळ आण।
फिर इम रच द्वालो फवै, सो मंदार सुजाण ॥

११

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जिण साथ पैराकी जंगाँ रा
अत प्राक्रम दीरघ अंगाँ रा
इसड़ा पँचवीस क्रिरोड़ अढंगा।
झुज्झ सरु रीता जीतसा ॥

(६५) भाखड़ी[१]—

१. प्रथम चारों चरणों में मात्राएँ २५–२५ होती हैं जिन का गठन इस प्रकार होता है—१ चौकल + १ पंचकल + 'जी' शब्द=१ द्विकल + १४ मात्रा अंत में गुरु-लघु (ऽ।)।

२. पिछले चार चरण वेताल या कामरूप छंद के होते हैं। जिस के प्रत्येक चरण में (१६ + १०) २६ मात्राएँ होती हैं, और अंत में (ऽ।) होता है।

३. तुक चार-चार चरणों की मिलती है। 'जी' के पहले वाले शब्दों की तुक भी मिलती है।

४. २५ मात्रा के अंतिम चरण के अंत के शब्द वेताल के प्रथम चरण के आदि में ज्यों के त्यों या कुछ हेर-फेर के साथ आते हैं।

उदाहरण—

मिथला महपती जी अवनी कीध जिग आरंभ।
तेड़े समगती जी लिख फुरमाण बाहु प्रलंभ ॥
कर क्रामती जी खोये जैथ हथ जसखंभ।
निझळै नोबती जी घर-घर घुरत द्वार असंभ ॥
घर द्वार नोपत घुरत वाजत, तीस खट अवरेख।
बँध पोळ-पोळ विसाळ तोरण, वणे चित्र विसेख ॥
प्रत सदन पीत पताक फरकत,व रण चहुँ सुखवेस।
मध जनकपुर सुर असुर मानव, पड़े संभृत पेख ॥

---

[१]कर च्यार पंच जीकार केळ। मत चवदै फिर गुरु-लघु सुमेळ ॥
पँचवीस कळा इक पद प्रबंध। सज च्यार साँकळी एम संध ॥
लख पछै फेर सीहावलोक। झड़ जिण पर छंद वेताळ झोक ॥
गुण मंछ भाखरी एम गीत। कर जिकण माँहि रघुनाथ-कीत ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

[१४ चरणों का दोहला]

(६६) त्रकूटबंध[1] नंवर २--

१. प्रथम चरण में मात्राएँ १६ ।

२. दूसरे चरण में मात्राएँ १४ ।

३. तीसरे चरण में मात्राएँ १४ ।

४. चौथे चरण में मात्राएँ १० (अंत में ऽ।) ।

५. पाँचवें और छठे चरणों में मात्राएँ १४–१४ ।

६. सातवें चरण में मात्राएँ १६ (अंत में ।।) ।

७. आठवें, नवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें चरणों की मात्राएँ १४–१४ (अंत में ।।) ।

८. चौदहवें चरण की मात्राएँ १० (अंत में ऽ।) ।

९. तुक पहले की दूसरे के साथ, चौथे की चौदहवें के साथ, पाँचवें की छठे के साथ और सातवें से लेकर तेरहवें तक के सात चरणों की आपस में, मिलती है। सातवें से तेरहवें तक के चरणों में बीच में सातवीं मात्रा की तुक भी सोलहवीं के साथ मिलनी चाहिए (सातवें चरण में नवीं मात्रा की सोलहवीं के साथ)। इसी प्रकार चौदहवें चरण की दूसरी मात्रा की तुक भी इन के साथ मिलनी चाहिए।

१०. गति १६ मात्रा की हरिगीतिका के और १४ मात्रा की गीति के पूर्वार्ध के समान तथा १० मात्रा की वेताल के उत्तरार्ध के समान ।

---

[1]उभै तुकाँ तौ आद भँवरगुंजार तणी भण ।
कळ चवदा, दस कळा वळे, मोहरे गुरु लघु वण ।।
चवद चवद कर चरण दोय साँकळ इक दीजै ।
वळ तुक सोळह कळा, विखम सत-सत री कीजै ।।
धुर तिण नवकळ धार सार साँकळ अनुप्रासह ।
तुक तुक दुय दुयं अंत पछै दस कळा प्रकासह ।।
जिण माँहि अंत मोहरे जुगत रच द्वालो इण रूप रौ ।
कवि मंछ प्रभू कीरत करै दखौ त्रकुटबँध दूसरौ ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उदाहरण—

रघुनाथ श्रीहथ हते रावण
परम संताँ कीध पावण
जयत अह नर अमर जंपै।
समर करुणा सार॥

चित खून खण न विचारियौ
धणियाप निज ब्रद धारियौ
उण अडर निसचर साज लसकर
प्रचँड खितधर कियण पाधर
जबर अहनर अवर निरजर
धरण हरहर रखी तिण धर
पहर थिरचर अतर थर-थर
तेण क्रित भर काज दुसतर
हुवर तिण पर महर नरहर
पसर किय भवपार॥

[१५ चरणों का दोहला]

(६७) त्रकूटबंध[1] नंबर[1]—

१. पहले और दूसरे चरणों में मात्राएँ १४–१४ (अंत में ऽ)।
२. तीसरे चरण में मात्राएँ १६।
३. चौथे चरण में मात्राएँ १०।

---

[1]आद दवालो अरध गीत डोढे रो गुणजै।
दे मोहरा फिर दोय पाय डोढे रो पुणजै॥
चवद कळा धरण चरण बिया कळ बारै बारै।
अठ इक साँकळ अंत साज दुय-दुय लघु सारै॥
तुक वळे दवादस कळ तणी ठिक गुरु लघु मोहरा मुठव।
कवि मंछ, इधक अनुराग सूँ कर त्रकूटबँध इम गीत तव॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

४. पाँचवें से लेकर चौदहवें तक के ग्यारह चरणों में से प्रत्येक में मात्राएँ १४। पिछले आठ चरणों के अंत में दो लघु (।।) आना चाहिए।

५. अंतिम अर्थात् पंद्रहवें चरण में मात्राएँ १२।

६. तुक पहले की दूसरे के साथ, चौथे की पंद्रहवें के साथ, पाँचवें की छठे के साथ, और सातवें से चौदहवें तक के आठ चरणों की परस्पर, मिलती है। आंतरिक तुक सातवें से ले कर पंद्रहवें तक त्रिकूटबंध नंबर २ के अनुसार मिलती है।

७. गति हरिगीतिका, गीतिका, वेताल से मिलती-जुलती होती है।

उदाहरण—

कुळ भ्रात मंत्री सुत कटे
उर क्रोध रावण ऊपटे
मन समझ नहचै घटे मरणौ
सजे घण घमसाण ॥
वध ओप वाजत्र वाजिया
सझ टोप बगतर साजिया
कस कमर वडकर गहर कर
धर धजर आवध सजर धर
चढ़ चले रथ पर ढुर चमर
भड़ अवनि निसचर रिणभँवर
मिल चहुर मूँछाँ भुहर भर
वच पखर घूघर भड़ जबर
गज चीर फरहर खुल अगर
झुक अतुर लोयण अगन झर
अर आवियौ आराण॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(२) वर्णिक

(घ) वर्णिक सम

(६८) अरध गोखो[१]—

१. प्रत्येक चरण में ८ वर्ण होते हैं जिन की १२ मात्राएँ होती हैं।

२. प्रत्येक चरण के अंत में गुरु-लघु (ऽ।) होता है। अंतिम चरण में वीप्सा होती है अर्थात् पहले चार वर्ण दुबारा आते हैं।

३. चारों चरणों की तुक मिलती है।

४. गति मल्लिका छंद के समान होती है।

उदाहरण—

साँभळी इसी सराह।
लायो सीत भरे लाह।
मची सको लोक माह।
त्राह त्राह त्राह त्राह॥

(६९) गोखो[२] नंबर १—

यह अरध-गोखे का दुगना होता है अर्थात् इस में वैसे-वैसे ८ चरण होते हैं।

उदाहरण—

विदेही तणै दिवाँण।
ईसचाप धरे आण।
तोड़बा अनेक ताण।
राजा राव अनै राण।
पिनाक पै धरै पाण।

---

[१] चरण आठ गोखो चवै, चौ पद जास रचंत।
वणे अंत पद वीपसा, गोखो अरध गिणंत।

[२] अठ-अठ वरण चरण कर आठ। पद-पद हुवै द्वादस कळ पाठ॥
दीरघ-लघू अंत में दीजै। मोहरा ही आठूँ में ळीजै॥
अंत वीपसा तुक मेँ आवै। गोखो गीत सु मंछ गिणावै॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिले होय हीणमाण ।
दई वाण दई वाण ॥

(ङ) वर्णिक अर्धसम

(७०) एकलवैणो[1] नंबर[1]—

१. प्रत्येक चरण में वर्ण १६ । प्रथम दोहले के प्रथम चरण में वर्ण १८ ।

२. सम चरणों में वर्ण १४ ।

३. सब वर्ण लघु केवल सम चरण का १३वाँ वर्ण गुरु होता है ।

४. सम चरणों की तुक मिलती है ।

उदाहरण—

दळ-वळ सज दुगम चढिय सुत दसरथ ।
तहक तबल अत रुड़त त्रबाट ।
समरण उबर चरण धण सियपत ।
चहत चरण उबरण वनवाट ॥

(७१) एकलवैणो नंबर २ अथवा घणकठो—

इस में और एकलवैणो नंबर १ में केवल इतना ही अंतर होता है कि उस में सम चरणों में १४ वर्ण होते हैं जिन में १३वाँ वर्ण गुरु होता है पर इस में सम चरणों में १३ ही वर्ण होते हैं और सभी लघु होते हैं ।

उदाहरण—

गह मत गत असत अवर तत परगत ।
अखत दुचित रत भरत अत ।
जगपत हित मुख दुत इण भत जिम ।
प्रभुत हुयत दिन रयण पत ॥

---

[1] सोळह जिण वरण विखम पद साजै, सम पद चवदह वरण सहै ।
दीजै स-उपांत अंक इक दीरघ, लघु बीजा सह वरण लहै ॥
धुर पद दस-आठ, दूसरै धारौ, तवै खुड़द साणोर तणौ ।
गुर आखर नको, सरब लघु, सो इम अेकल वैणो दोय अणौ ॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(७२) सपंखरो[1]—

१. विषम चरणों में वर्ण १६। प्रथम दोहले के प्रथम चरण में वर्ण १८।

२. सम चरणों में वर्ण १४।

३. सम चरणों के अंत में गुरु-लघु (ऽ।) होता है और सगण, भगण और नगण नहीं आते।

४. सम चरणों की तुक मिलती है।

उदाहरण—

अंगाँ ऊससै सवायो तायो सुणे वैण रामवाळा।
वडाळाँ छोह मैं छायो चखाँ चोलवन्न।
कळेसाँ अघायो लेण रटक्काँ सजोर काथै।
कटक्काँ राम रै माथे आयो कुंभकन्न॥

(च) वर्णिक विषम

(७३) गोखो[2] नंबर २—

१. चरणों की संख्या ८।

२. चरणों में वर्णों की संख्या ८, जिन में १२ मात्राएँ हों।

३. चौथे और आठवें चरणों में वर्णों की संख्या ६ जिन में ९, मात्राएँ हों।

४. चरणों के अंत में गुरु-लघु (ऽ।) आता है अंतिम चरण में वीप्सा आती है।

५. तुक सब चरणों की मिलती है।

---

[1] विखम चरण सोड़स वरण सम पद चवदै पाठ।
हुवै दवाला हेक मैं सारा आखर साठ॥
सारा आखर साठ आद तुक अंक अठारै।
मंछ सु मोहरा मेळ अंत गुरु लघु उचारै॥
सगण भगण न न सबद सपँखरो मनहर सम मैं।
नर गायाँ रघुनाथ वळे नह पड़त विखम मैं॥

[2] गीत गोखो इण तरै भी हुवै है। इण मैं नै उण मैं इतरौ तफावत—उण मैं तो आठ वरण रौ पद, तीको आठ पदाँ रौ द्वालौ हुवै। इण मैं चौथी नै आठमी छै-छै वरण री है॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

६. गोखो नंबर १ और इस में इतना ही अंतर होता है कि उस के चौथे और आठवें चरणों में ८ वर्ण और १२ मात्राएँ होती हैं, और इस के इन्हीं चरणों में ६ वर्ण और ९ मात्राएँ ही होती हैं।

उदाहरण—

विहूँ ताम जोड़ बाह ।
नमो सीस नराँ नाह ॥
रिखी ची करी सराह ।
तवै एम ताह ॥
मूझ बोल न्रपाँ माँह ।
ठीक आप रखे ठाह ॥
आलमाँ कहै उमाह ।
वाह वाह वाह ॥

(७४) वीरकंठ[1]—

१. इस के प्रत्येक दोहले में ८ चरण होते हैं।

२. प्रत्येक चरण में ८ वर्ण और १२ मात्राएँ होती हैं।

३. चौथे और आठवें चरणों में केवल ६ वर्ण और ९ मात्राएँ ही होती हैं।

४. प्रत्येक चरणों के अंत में गुरु-लघु (ऽ।) होता है पर तीसरे और सातवें चरणों में ऐसा होना अनिवार्य नहीं है।

५. तुक पहले चरण की दूसरे के साथ, पाँचवें की छठे के साथ, और चौथे की आठवें के साथ मिलती है।

६. नियम नं० ४ और ५ इस गीत को गोखा नंबर २ से भिन्न करते हैं। गोखे की तरह इसमें वीप्सा भी नहीं आती।

---

[1]अठ-अठ वरण चरण द्वै आणौ । जिण इक-इक कळ रवि-रवि जाणौ ॥
सांकळ गुरु लघु अंत सजीजै । तेम वरण मात्रा पद तीजै ॥
छ वरण नव कळ चौथे छाजै । सुध मोहरा दीरघ-लघु साजै ॥
वळे च्यार इम रच पद द्वालो । भाणव गीत वीरकँठ भाळौ ॥

१२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उदाहरण—

कराँ जोड़ रूप कीस
साम पाय नाम सीस
बाँध चाल महावीर
कूदियो कपीस ।
निसाचराँ काळनेम
पती लंक तणै पेम
माग वीच तणै रसौ
सदंभाँ मुनीस ।।

(छ) वर्णिक मात्रिक

(७५) सवैयो[1]—

१. इस में पाँच चरण होते हैं ।

२. पहले चार चरणों में से प्रत्येक चरण में दो सगण होते हैं ।

३. पाँचवें चरण में १६ मात्राएँ होती हैं जो प्राय: चार सगणों के रूप में होती हैं । यदि चार सगण न हों तो गति बहुत-कुछ मिलती-जुलती होनी चाहिए ।

४. पाँचों चरणों की तुक मिलती है ।

उदाहरण—

पर सत्र पटे ।
कर झूझ कटे ।
भिदवाँण भटे ।
हद माण हटे ।
रत कुंभ जगावण राण रटे ।।

---

[1] उभै सगण पद पद चहुँ आवै । पंचम पद सोड़स कळ पावै ।।
पाँचहि मोहरा यों सुध पुणजै । गीत सवैयो तिणनूं गुणजै ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राचीन भारत के पुस्तकालय

[लेखक—श्रीयुत श्यामनारायण कपूर, बी० एस्-सी०]

साहित्योन्नति के साधनों में पुस्तकालयों का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन के द्वारा साहित्य के जीवन की रक्षा, पुष्टि और अभिवृद्धि होती है। पुस्तकालयों द्वारा सुरक्षित साहित्य सभ्यता के इतिहास का जीता-जागता गवाह है। इसी सत्य-प्रिय साक्षी के बल पर वर्तमान भारत को अपने अतीत गौरव का अभिमान है। सभ्यता के विकास में लिपि का आविष्कार एक बहुत बड़ी घटना है। सभ्यता के अन्य साधनों में लिपिकला भी अपना विशेष महत्व रखती है। लिपि के आविष्कार के पहले मानवज्ञान का भंडार स्मृति के दुर्ग में ही निवास करता था। लिपि ने इस ज्ञान को अपने क्रोड़ में स्थान दिया। मिट्टी की ईंटों पर, काठ के टुकड़ों पर और चमड़े की पट्टियों पर लिपि की क्रीड़ा आरंभ हुई। इसी को पुस्तकों का प्रारंभिक रूप समझना चाहिए। जहाँ इन वस्तुओं के संग्रह जमा हुए उन्हीं को आदिम पुस्तकालय कहा जा सकता है। इन के वाद ताम्रपत्र, शिला, भोजपत्र, ताड़पत्र, कपड़ा एवं काग़ज़ की वारी आई। पुस्ताकलयों का रूप भी वदला। पहले धर्म और नियम की वातें लिपिवद्ध की गईं। देवालयों में पुस्तकालय स्थापित हुए। देवालयों पर अधिकार करने के वाद राजमहल, विद्वज्जनों के निवास स्थान और विद्यालय आदि इन के प्रमुख स्थान वने। मुद्रणकला के आविष्कार से पुस्तकों के प्रकाशन और ज्ञान के विस्तार में जितनी द्रुत गति से वृद्धि हुई उसी के अनुरूप पुस्तकालयों का भी वैभव वढ़ता गया। भारतवर्ष में भी पुस्कालयों की उन्नति प्रायः इसी क्रम से हुई।

लिपिकला का आविष्कार कव, कहाँ और कैसे हुआ, इस विपय में विद्वानों का एक मत नहीं है। भारतवर्ष में लिपिवद्ध प्रथम लेख सम्राट् अशोक के हैं। इन लेखों की तिथि प्रायः २५० ई० पू० के लगभग समझी जाती है। ये लेख दो लिपियों में मिलते हैं—खरोष्ठी तथा व्राह्मी में। इन में से खरोष्ठी दाहिनी ओर से वाईं ओर को और व्राह्मी वाईं ओर से दाहिनी ओर को लिखी जाती थी। कुछ विद्वानों का कथन है कि ये

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिपियाँ भारत में ईसा के पाँच शताब्दी पूर्व भी प्रचलित थीं और जन-साधारण में उन का यथेष्ट प्रचार हो चुका था। बलूचिस्तान और सिंधु नदी की उपत्यका में होने वाले पुरा-तत्व-संबंधी अन्वेषण-कार्य से भारतवर्ष में ईसा के ३००० वर्ष पूर्व भी लिपि के व्यवहार के प्रमाण मिले हैं। बौद्धकाल में और बौद्धकाल के कुछ समय पूर्व तो भारतवर्ष में लिपि का यथेष्ट प्रचार हो चुका था। वैदिक काल में भी लकड़ी, चमड़ा, धातु, पत्थर आदि पर लिखने के प्रमाण मिलते हैं। यह ज़रूर है कि उन दिनों लिपि का व्यवहार राजकीय कार्यों तक ही सीमित था। वेदादि धार्मिक एवं पवित्र ग्रंथों का ज्ञान मौखिक ही कराया जाता था। लिपि के आविष्कार के बहुत से समय बाद तक मानव-ज्ञान का भंडार स्मृति के दुर्ग में ही निवास करता था। तत्कालीन आचार्य और विद्वज्जन ज्ञान के भंडार समझे जाते थे। वे लोग अपने शिष्यों को मौखिक शिक्षा देते थे। शिष्यवर्ग अपने आचार्यों से प्राप्त होने वाली शिक्षा के आधार पर अनेक ग्रंथों को स्मरणशक्ति के सहारे कंठाग्र कर लिया करते थे। अनेक पीढ़ियों तक यही क्रम जारी रहा। बहुत संभव है कि आजकल के चतुर्वेदी, त्रिवेदी और द्विवेदी ब्राह्मण परिवार क्रम से चार, तीन और दो वेदों को कंठाग्र कर लेने और उन का समुचित ज्ञान प्राप्त कर लेने ही के नाते उपरोक्त नामों से प्रख्यात हुए हों। कुछ भी हो यह तो निश्चित ही है कि पुस्तकों की रचना और उन के लिपिबद्ध किए जाने के बहुत पूर्व ज्ञान-संग्रह और उस के प्रसार का कार्य आरंभ हो गया था और स्मरणशक्ति के सहारे मनुष्य इस ज्ञान को स्थायी बनाने का प्रयत्न करने लगे थे। पुस्तकालयों के इतिहास के सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर बी० सी० रिचर्डसन इस प्रकार के ज्ञान-भंडारों को 'स्मृति-पुस्तकालयों' के नाम से पुकारते हैं। बहुत संभव है कि तत्कालीन चारणों, भाटों और सूतों के स्मृति-पुस्तकालयों ने ही महाभारत, पुराणादि ग्रंथों को जन्म दिया हो।

पुस्तक की महत्ता

लिपि का समुचित प्रचार हो जाने पर वेदादि ग्रंथों के लिपिबद्ध करने के प्रयत्न शुरू हो गए। शीघ्र ही एक ऐसे युग का पदार्पण हुआ जिस में पुस्तकें बहुत महत्व की दृष्टि से देखी जाने लगीं। पुस्तकों को लिपविद्ध करना एक महत्वपूर्ण कार्य समझा जाने लगा। धार्मिक ग्रंथों में 'पुस्तक-दान' की भी समुचित प्रशंसा की गई, और विद्या की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अधिष्ठात्री—वीणा एवं पुस्तक धारण करने वाली सरस्वती देवी की कल्पना की गई। इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि अतीत काल में भी भारतवर्ष में पुस्तकों को अत्यंत उच्च और महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। बौद्धकाल में पुस्तकों का महत्व और प्रतिष्ठा और भी अधिक वढ़ गई और पुस्तक-संग्रह की मनोवृत्ति भी व्यापक रूप धारण करने लगी। इस वात के तो यथेष्ट प्रमाण नहीं मिलते कि स्वयं भगवान गौतमवुद्ध ने अपने उपदेशों और धार्मिक आदेशों को कभी लिपिबद्ध भी किया था, परंतु उन की मृत्यु के पश्चात् उन के शिष्यों ने उन के समस्त उपदेशों, सूत्रों आदि का संकलन कर के 'त्रिपिटक' की रचना की।

इस समय तक धार्मिक एवं पवित्र ग्रंथों को लिपिवद्ध करने की प्रवृत्ति दृढ़ रूप धारण कर चुकी थी। स्थान-स्थान पर पंडित और विद्वज्जन मानवज्ञान के भंडार को स्मृति के दुर्ग से वाहर निकाल कर लिपिवद्ध करने में जुट गए थे। देवालयों, मठों और मंदिरों में इन लिपिवद्ध धार्मिक ग्रंथों का संग्रह करने की होड़-सी लग गई थी। इस लिपि-वद्ध ज्ञान को संग्रह करने की अभिलाषा ने पुस्तकालयों को जन्म दिया। तत्कालीन राजा लोग भी पुस्तक-संग्रह की इस मनोवृत्ति को प्रोत्साहित करने लगे। ५६५ ई० का लिखा हुआ पश्चिम भारत के वल्लभी राजाओं का इसी आशय का एक लेख भी मिला है।

ताम्रपत्रों पर पुस्तकें

इस लेख के सैकड़ों वर्ष पूर्व भी हम सम्राट् कनिष्क को ईसा की पहली शताब्दी में बौद्ध पंडितों द्वारा ताम्रपत्रों पर 'विभाषा' की रचना करवाते हुए पाते हैं। इस समय काग़ज़ का चलन भी शुरू न हुआ था। अधिकांश ग्रंथ ताड़पत्रों, भोजपत्रों और कपड़ों ही पर लिखे जाते थे। सम्राट् कनिष्क ने बौद्ध आचार्यों द्वारा भगवान् बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् के बौद्ध सिद्धांतों और विचारों को संकलित करवा कर तथा बौद्ध ग्रंथ 'त्रिपिटक' की मीमांसा और व्याख्या करा कर ताम्रपत्रों पर लिपिवद्ध कराया और उसे स्थायी रूप प्रदान करने के लिए एक स्तूप में गड़वा दिया था। उन्हीं दिनों ताम्रपत्रों के अतिरिक्त पत्थरों की शिलाओं पर भी ग्रंथों के रचे जाने और उन के संग्रह किए जानें के यथेष्ट प्रमाण मिलते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिला-लेखों का पुस्तकालय

धार के राजा भोज परमार ने संस्कृत साहित्य के अध्ययन के लिए एक वृहत विद्यालय स्थापित किया था। कर्नल ल्यूआर्ड और मिस्टर लेले ने अपनी 'धार और मालवा के परमार' नामक पुस्तक में इस विद्यालय का विस्तृत विवरण दिया है। इस विवरण से मालूम होता है कि इस विद्यालय में संस्कृत साहित्य के विविध विषयों पर लिखे गए शिलालेखों का अच्छा संग्रह था। शिलालेखों पर ही लिपिवद्ध, मदन नामक एक गौड़ ब्राह्मण द्वारा रचित एक नाटक भी यहाँ मौजूद था। यह नाटक मदन ने अपने संरक्षक अर्जुन वर्मन् परमार के गुजरात विजय करने के उपलक्ष्य में रचा था। विद्यालय में होने वाले वसंतोत्सव के अवसर पर इस नाटक का अभिनय भी किया गया था। संभवत: वहाँ इस नाटक के अतिरिक्त शिलाओं ही पर लिपिवद्ध और भी वहुत से ग्रंथ रहे होंगे। पाठशाला की शिलाओं पर अनेक विषयों से संवंध रखने वाले सुभाषित उत्कीर्ण किए गए थे। मुसलिम विजेताओं ने इस नगर पर क़ब्ज़ा करने के वाद, विद्यालय को नष्ट कर के उस के स्थान में मसजिद वनाई और उन शिलालेखों को फ़र्श वनाने के काम में लगाया। ये शिलालेख 'कमाल मौला' की मसजिद में अव भी धार में मौजूद हैं, परंतु इतने ज़्यादा घिस गए हैं कि उन में अंकित लिपि को समझ सकना नितांत असंभव हो गया है। सौभाग्य से मदन-विरचित नाटक सफलतापूर्वक पढ़ा जा सका है और एपिग्राफिका इंडिका संख्या ८ में संपादित हो चुका है।[१] यह कालिज उन दिनों 'सरस्वती-सदन' या 'भारती-भवन' के नाम से प्रख्यात था।

लेखनोपकरणों का अभाव

आजकल की तरह उस अतीतकाल में काग़ज़ का आविष्कार नहीं हुआ था। काग़ज़ और मुद्रणकला के आविष्कार के पूर्व—पुस्तकों का संग्रह करना आजकल की तरह सरल वात न थी। आजकल साधारण स्थिति के पुस्तकालय में जितनी संपत्ति लगती है, उतनी उन दिनों कभी-कभी एक पुस्तक की तैयारी में लग जाती थी। फिर भी भारत के पुस्तकालय संसार भर में अपना सानी नहीं रखते थे। अतीत काल से ले

---

[१] एस० के० दास, 'एडूकेशनल सिस्टम अव् दि ऐंशेंट हिंदूज़', पृ० ३३०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर मुग़ल सम्राटों के समय तक यही स्थिति रही। चीन, जापान, फ़ारस, मध्य-एशिया, तुर्किस्तान प्रभृति सुदूर स्थित देशों के झुंड के झुंड विद्यानुरागी लंबी-लंबी यात्राएँ कर के भारत आया करते थे।

भारत में काग़ज़ का व्यवहार मुस्लिम शासन-काल ही से आरंभ होता है, यद्यपि उस का आविष्कार चीन में ई० पू० की दूसरी सदी में ही हो चुका था। काग़ज़ के अभाव में, धातुपत्रों, शिलाओं, चमड़े तथा लकड़ी आदि की पट्टियों के अतिरिक्त, आमतौर पर ताड़पत्र तथा भोजपत्र काम में लाए जाते थे। उबालने के बाद, धूप में सुखा कर ताड़ का पत्र किसी चिकनी चीज़ से घोंट लिया जाता था और लिखने के काम में लाया जाता था। आजकल की तरह लेखनोपकरण के सुलभ न होने पर भी, विद्वज्जनों को लिखने का शौक़ ज़रूर था। वे अथक परिश्रम कर के पत्थरों एवं धातुपत्रों को खोदते थे, ईंटों पर लिख कर उन्हें पकाते थे और भोजपत्र या ताड़पत्र को लेखनोपयुक्त बनाने के लिए बहुत श्रम किया करते थे।

बौद्ध यात्रियों के विवरण

तिब्बत, नेपाल, चीन और जापान प्रभृति देशों में बौद्धधर्म के प्रचार और प्रसार ने तत्कालीन पुस्तकालय-संबंधी मनोवृत्ति को बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया। सब से पहले सम्राट् अशोक ने बौद्ध-भिक्षुओं को मध्य-एशिया में धर्म-प्रचारार्थ भेजा था। वे लोग प्रचार करने में बहुत कुछ सफल मनोरथ भी हुए थे। इन लोगों के प्रयत्न से बौद्धधर्म की उदार नीति की चर्चा चीन देश में दिन-बदिन फैलती गई और ईसा के जन्म के ६७ वर्ष पीछे चीन के सम्राट् मिंगटो ने भारतवर्ष से बौद्ध-शिक्षकों को बुलाने के लिए अपने दूत भेजे। दूत कश्यप-मातंग और धर्म-रक्षक नामक दो आचार्यों को अपने साथ चीन देश ले गए। ये दोनों आचार्य अपने साथ बहुत से ग्रंथ भी ले गए और वहाँ पहुँच कर बौद्धधर्म के अनेक ग्रंथों का अनुवाद चीनी भाषा में कर बौद्धधर्म का प्रचार किया। बौद्धधर्म के प्रचार से भारत के साथ चीन का गुरु-शिष्य-संबंध सुदृढ़ होता गया। तब से अनेक बौद्ध भिक्षु भारत-वर्ष की ओर धर्म-यात्रा के लिए आते रहे। ऐसे यात्रियों में जिन्हों ने भारत के भिन्न-भिन्न नगरों और देशों में भ्रमण किया और जो अपना यात्रा-विवरण लिख कर छोड़ गए हों फ़ाहि-यान सब से पहला है। उस के बाद ह्वेनसांग और इत्सिंग प्रभृति यात्री भी समय-समय

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पर यहाँ आए। इन लोगों का यात्रा-काल ईसा की पाँचवीं और सातवीं सदी में माना जाता है। इन यात्रियों ने भारत के विभिन्न भागों की यात्राएँ कीं और स्थान-स्थान पर बौद्ध मठों, मंदिरों और संघारामों में रह कर भारतीय साहित्य एवं संस्कृति का अध्ययन किया और बौद्ध ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ कीं। इन लोगों ने अपने यात्रा-विवरण को भी लिपिवद्ध किया। आज दिन यही यात्रा-विवरण भारतवर्ष की तत्कालीन सांस्कृतिक एवं साहित्यिक स्थिति का परिचायक हो रहे हैं। इन यात्रा-विवरणों से हमें पता चलता है कि तत्कालीन बौद्ध विहारों, मठों, संघारामों, विद्यालयों एवं देवालयों में पुस्तकों का एक अच्छा संग्रह मौजूद रहता था। प्रत्येक मठ और विहार में कुछ प्रतिष्ठित विद्वान भी रहते थे जो विहार में रहने वाले विद्यार्थियों को मौखिक शिक्षा भी देते थे। इन बौद्ध यात्रियों के यात्रा-विवरणों से हमें तत्कालीन तक्षशिला, पाटलिपुत्र, काशी, उदंतपुरी, विक्रमशिला और नालंद प्रभृति विश्व-विद्यालयों एवं विद्यापीठों का सविस्तर विवरण मिलता है।

जेतवन संघाराम

फ़ाहियान के समय में पाटलिपुत्र के निकट जेतवन संघाराम उच्च कोटि की बौद्ध शिक्षा का प्रमुख स्थान था। इस संघ में अस्पताल, भोजनालय, स्नानागार, सरोवर, भिक्षुओं के लिए आवासगृह, मंदिर, उपासनागृह आदि के साथ कई पुस्तकालय और वाचनालय भी मौजूद थे।[1] स्थान-स्थान पर सरोवर बने हुए थें। इन के किनारों पर सुंदर हरे-भरे वृक्ष लगें हुए थे जिन की छाया निर्मल सरोवर पर पड़ती थी। इन सब को आवेष्ठित करती हुई, एक सुदृढ़ दीवार बनी थी। इस संघाराम के पुस्तकालयों में हीनयान, महायान तथा उन के १८ निकायों के ही धर्म-ग्रंथों और पुस्तकों आदि का संग्रह नहीं था; और वेद, वेदांग, दर्शनशास्त्र, अबौद्ध साहित्य और तत्कालीन भारत में प्रचलित विविध विज्ञानों और कलाओं के ग्रंथों का भी अच्छा संग्रह था। यह संघाराम पाटलिपुत्र[2] नगर के निकट होतें हुए भी नगर के कोलाहल से वचा हुआ था। संघाराम के वीचोबीच एक विशाल उपवन भी वना हुआ था।

---

[1] वाटर्स, 'युवान च्वांग', जिल्द १, ३८६

[2] काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'फ़ाहियान' नामक पुस्तक में 'जेतवन संघाराम' को श्रावस्ती के निकट बतलाया गया है परंतु श्री० एस० के० दास ने अपनी पुस्तक में 'जेतवन संघाराम' को पाटलिपुत्र के निकट बतलाया है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मध्य-भारत का महायान संघाराम

जेतवन संघाराम के अतिरिक्त, फ़ाहियान ने मध्यभारत में भी एक महायान संप्रदाय के संघाराम में एक अच्छे पुस्तकालय के होने का उल्लेख किया है। इस संघाराम में फ़ाहियान को वहुत से धार्मिक ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ और अवतरण मिले थे। यहाँ उसे 'महासंघिक-निकाय' के विनय की मूल प्रति भी मिली। यह सर्वांगपूर्ण विवृत्ति और भाष्ययुक्त थी। यहाँ उसे एक और निकाय का विनय मिला जो लगभग ७०० गाथा का था। यह 'सर्वास्तिवादनिकाय' का विनय था। चीन देश के भिक्षुसंघों में इसी का प्रचार था। फ़ाहियान बहुत दिनों से इस की तलाश में भी था। इस की भी शिक्षा गुरु-परंपरा से मौखिक ही चली आती थी, लिखित न थी। यहाँ के इसी संघ में 'संयुक्तधर्महृदय' लगभग ६००० गाथा का मिला। एक और निकाय का सूत्र २५०० गाथा का, 'परिनिर्वाण-वैपुल्यसूत्र' का एक अध्याय ५०० गाथा का और महासंघिक 'अभिधर्म' भी मिला। ये सभी ग्रंथ बहुत दुर्लभ थे। अतः फ़ाहियान यहाँ तीन वर्ष रहा। संस्कृत भाषा और संस्कृत ग्रंथों का अभ्यास करता रहा और 'विनयपिटक' लिखता रहा।[१]

इस संघाराम से आगे चल कर फ़ाहियान तांवलिप्त जनपद में पहुँचा। इसे आजकल तामलुक कहते हैं और यह वंगाल के मेदनीपुर ज़िले में है। इस जनपद में २४ संघाराम थे। श्रमण संघ में रहते थे। वौद्धधर्म का अच्छा प्रचार था। फ़ाहियान यहाँ दो वर्ष रहा। यहाँ रह कर उस ने संघाराम में मौजूद सूत्रों और शास्त्रों[२] की प्रतिलिपि की और मूर्तियों के चित्र वनाए।[३]

नालंद विश्वविद्यालय का पुस्तकालय

फ़ाहियान के वाद सातवीं शताब्दी के आरंभ में जव ह्वेनसांग भारतवर्ष आया तो उसे भारत के पुस्तकालय और भी अधिक उन्नत अवस्था में मिले। तत्कालीन

---

१ 'फ़ाहियान' (काशी ना० प्र० सभा), पृ० ८०
२ एस्० के० दास, 'एडूकेशनल सिस्टम अव् ऐंशेंट हिंदूज़', पृ० ३४४
३ 'फ़ाहियान' (काशी ना० प्र० सभा), पृ० ८१-८२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नालंद[१] विश्वविद्यालय का पुस्तकालय संसार में अपना सानी नहीं रखता था। ह्वेनसांग ने नालंद के बारे में लिखा है कि वहाँ चारों ओर ऊँचे-ऊँचे विहार और मठ खड़े थे। बीच-बीच में सभागृह और विद्यालय बने हुए थे। वे सब समाधियों, स्तूपों और मंदिरों से घिरे थे। उन के चारों ओर बौद्ध शिक्षकों और प्रचारकों के रहने के लिए चौमंज़िली इमारतें थीं। इन के सिवा ऊँची-ऊँची मीनारों और विशाल भवनों की शोभा भी देखने योग्य थी। इन भवनों में नाना प्रकार के बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे। रंग-बिरंगे दरवाज़ों, कड़ियों, छतों और खंभों की सजावट देख कर लोग मुग्ध हो जाते थे। इस विश्वविद्यालय का पुस्तकालय नौमंज़िला था जिस की ऊँचाई क़रीब ३०० फ़ीट थी। इस में बौद्धधर्म-संबंधी सभी ग्रंथ थे। प्राचीन काल में इतना बड़ा पुस्तकालय कदाचित् ही कहीं रहा हो।[२]

ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण के अतिरिक्त तिब्बत में मिलने वाले विवरणों से हमें पता चलता है कि नालंद में एक सुप्रसिद्ध पुस्तकालय था। यह पुस्तकालय नालंद नगर के धर्मगंज में स्थित था । पुस्तकालय के तीन भव्य भवन थे। ये तीनों भवन 'रत्न-सागर', 'रत्नोदधि', और 'रत्नरंजक' के नाम से प्रसिद्ध थे। 'रत्नोदधि' नामक भवन ९ मंज़िल का था। इस में 'प्रज्ञापरिमितसूत्र' प्रभृति पवित्र धार्मिक ग्रंथ तथा 'समाजगुह्य' प्रभृति तांत्रिक ग्रंथों का भी अच्छा संग्रह था।[३]

ह्वेनसांग के निवास-काल में शीलभद्र इस महाविहार के प्रधान आचार्य थे। अन्य आचार्यों और शिक्षकों में धर्मपाल, चंद्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिनमित्र, ज्ञानचंद्र तथा शीघ्रबुद्ध प्रभृति के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।[४] नागार्जुन के शिक्षक

---

[१] नालंद-संघाराम की स्थापना के ठीक-ठीक समय के बारे में विद्वानों में बहुत मतभेद है। ह्वेनसांग की जीवनी के लेखक सुप्रसिद्ध विद्वान ह्वीली का कथन है कि नालंद संघाराम ह्वेनसांग के भारत आने के लगभग ७०० वर्ष पूर्व स्थापित हो चुका था। इस हिसाब से उस का स्थापना-काल ई० पू० ८० के लगभग होता है। इस के विपरीत जनरल कनिंघम प्रभृति विद्वान् उस की स्थापना फ़ाहियान के भारत से चले जाने के बाद और ह्वेनसांग के भारत आने के पूर्व अर्थात् ४२५ ई० और ६२५ ई० के बीच बतलाते हैं।

[२] जनार्दन भट्ट, 'बौद्धकालीन भारत', परिशिष्ट ग, पृ० ३७६-३७७

[३] एस० के० दास, 'एडूकेशनल सिस्टम अव् एंशेंट हिंदूज़', पृ० ३६१

[४] 'सरस्वती', (अगस्त १९१९), पृ० १०२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और गुरु भी यहीं निवास करते थे। इन समस्त विद्वानों ने नालंद महाविहार में निवास करते हुए अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की थी। ये समस्त ग्रंथ नालंद के पुस्तकालयों में सुरक्षित थे। इन में से आर्य असंग ने संस्कृत में १२ पुस्तकें लिखी थीं। इन के चीनी और तिब्वती भाषाओं में अनुवाद अब भी सुरक्षित हैं। आर्य असंग के भाई वसुबंधु ने महायान संप्रदाय तथा तर्कशास्त्र पर अनेक पुस्तकों की रचना की। धर्मपाल ने 'चंद्र-व्याकरण' पर बहुत उपयोगी टीका लिखी थी। बौद्धधर्म पर भी इन्हों ने ४ ग्रंथ लिखे थे। शीलभद्र और उन के आचार्य धर्मपाल ने तर्कशास्त्र पर अनेक ग्रंथों की रचना की थी। स्थरमति ने संस्कृत ग्रंथों की रचना के साथ साथ उन का तिब्वती भाषा में अनुवाद भी किया था। स्थरमति ने ९ संस्कृत ग्रंथों की रचना की, ७ का तिब्वती भाषा में अनुवाद किया और तिब्वती भाषा में अनुवादित १० पुस्तकों का संशोधन, परिवर्धन और संपादन किया। स्थरमति के एक शिष्य चंद्रगोमित ने ६० पुस्तकों की रचना की थी। इसी तरह कमलशील ने ५ पुस्तकें संस्कृत में लिखी थीं और बुद्धकीर्ति ने संस्कृत पुस्तकों के तिब्वती भाषा में अनुवाद किए थे। जिन्मित्र ने भी संस्कृत ग्रंथों को तिब्वती भाषा में अनुवादित कराने में सहायता की थी। दूसरे विद्वानों और आचार्यों ने भी अनेक ग्रंथों, टीकाओं, आलोचनाओं आदि की रचना की थी।[1] मौलिक-पुस्तकों की रचना के साथ शिक्षक और विद्यार्थी पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ भी किया करते थे।[2]

नालंद पुस्तकालय का अंत

नालंद का विश्वविद्यालय और पुस्तकालय ईसा की ११वीं शताब्दी तक सुव्यवस्थित और सुचारु रूप से काम करता रहा। सम्राट् महीपाल (९८०-१०२६ ई०) के शासन-काल के पाँचवें वर्ष में, यहाँ 'अष्टाश्रिका प्रज्ञापरिमिति' की प्रतिलिपि तैयार की गई। यह प्रति अब भी कैंब्रिज विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित है। इस के एक वर्ष बाद महीपाल के ही शासन-काल में इसी पुस्तक की एक प्रति और तैयार की गई। यह प्रति बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय में सुरक्षित है।[3]

---

[1] एस्० के० दास की उपर्युक्त पुस्तक, पृ० ३६६-६९
[2] वही, पृ० १६९
[3] वही, पृ० ३७१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महीपाल के बाद न्यायपाल के शासन-काल में भी नालंद की प्रतिष्ठा पूर्ववत् बनी हुई थी। उस के समय में भी नालंद में पुस्तकों की रचना और नालंद के प्रधान आचार्य के तिब्बत जाने के प्रमाण मिलते हैं। नालंद महाविहार की अवनति न्यायपाल के बाद आरंभ हुई। नालंद के निकट विक्रमशिला नामक एक दूसरे महाविहार की उन्नति इस की अवनति में विशेष सहायक हुई। नालंद के ध्वंसावशेषों में १८६४ में कैप्टेन मार्शल को बालादित्य का जो शिलालेख प्राप्त हुआ था उस से सिद्ध होता है कि नालंद महाविहार भीषण अग्निकांड के कारण जल कर भस्म हो गया और उस के साथ ही उस का विशालकाय सुप्रसिद्ध पुस्तकालय भी भस्म हो गया।[१] कहा जाता है कि पुस्तकालय में इतने अधिक ग्रंथ थे कि पुस्तकालय बराबर एक मास तक सुलगता रहा था।

विक्रमशिला

नालंद ही के सदृश्य विक्रमशिला के महाविहार में भी एक अच्छा पुस्तकालय था। इस महाविहार में अतिसा, रत्नवज्र, ज्ञानश्रीमित्र, रत्नकीर्ति, जेतारि, रत्नाकर-शांति, जमारि प्रभृति विद्वानों ने अनेक ग्रंथों की रचना की थी। विक्रमशिला में भी नालंद ही के समान तिब्बत, चीन और मंगोलिया आदि देशों के विद्वान् शिक्षा प्राप्त करने आया करते थें और यहाँ रहने वाले अनेक संस्कृत ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ कर के तथा अपनी भाषा में अनुवाद कर के उन्हें अपने साथ ले जाया करते थे।

उदंतपुरी

उदंतपुरी के विहार में तो नालंद के पुस्तकालय से भी कहीं अधिक बड़ा पुस्तका-लय था।[२] यह १२०२ ई० तक सुचारु रूप से काम करता रहा। इसे मुस्लिम आक्रमणकारी बख्तियार ख़िलजी और उस की सेना ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। लामा तारानाथ ने इस संबंध में लिखा है कि तुर्क बादशाह ने सारे मगध को जीत कर उदंतपुरी और विक्रमशिला के समस्त पंडितों को मरवा डाला और प्राचीन विहार के स्थान पर

[१] एस्० के० दास, 'एडूकेशनल सिस्टम अव् ऐंशेंट हिंदूज़', पृ० ३७२
[२] वही, पृ० ३८२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक नवीन क़िला स्थापित किया। मिन्हाज ने भी अपनी 'तबक़ाते-नासिरी' में उदंतपुरी के अंत का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'मुहम्मद बख़्तियार नें उदंतपुरी पर आक्रमण कर उसे शीघ्र ही फ़तह कर लिया। वहाँ के निवासियों को—जो अधिकांश में ब्राह्मण थे और सिर घुटाए हुए थें (बौद्ध भिक्षु)—मार डाला। यहाँ मुसलमानों को हस्त-लिखित-पुस्तकों का एक बहुत बड़ा ज़ख़ीरा मिला। उन्हों ने बचे-खुचे निवासियों को बुला कर उन का हाल मालूम करने की कोशिश की, परंतु सब पढ़ें लिखे हिंदू मर चुके थें। बाद में मालूम हुआ कि वह नगर और उस का क़िला एक कालिज था जिसे वे लोग विहार के नाम से पुकारते थे।'

कहा जाता है कि इस विहार के चारों ओर सुदृढ़ दीवारें बनी हुई थीं। इस दीवार के मुसलमान आक्रमणकारी विहार को क़िला समझ बैठे और उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। विहार को नष्ट-भ्रष्ट कर डालने के बाद बख़्तियार और उस के सेनापति ने पुस्तकों की जाँच-पड़ताल शुरू की। बचे-खुचे लोगों से पुस्तकों के बारे में पूछ-ताछ की। परंतु उन्हों ने यह कह कर कुछ भी बताने से इनकार कर दिया कि जो लोग उन्हें पढ़ और समझ सकते थे वे सब मार डाले जा चुके हैं। इस पर मुस्लिम सेनापति बहुत क्रुद्ध हुआ और उस ने समस्त पुस्तकों को आग में जलवा डाला। दूसरे नगरों में स्थित विहारों और उन के पुस्तकालयों की भी यही गति हुई। विभिन्न ऐतिहासिक नगरों में मिलने वाली हस्तलिखित पुस्तकों की राख से भी यही बात साबित होती है।

मुस्लिम आक्रमण का प्रभाव

मुसलमानों के आक्रमण से अन्य बातों के साथ प्राचीन विद्याओं को भी ज़बरदस्त धक्का पहुँचा। हिंदुओं और बौद्धों के लब्ध-प्रतिष्ठ विश्वविद्यालय नष्ट-भ्रष्ट हो गए। विद्वज्जन अपने प्राणों के मोह में लुक-छिप कर इधर-उधर भाग गए। संस्कृत साहित्य की भी ज़बरदस्त हानि हुई। पुस्तकों की तो रक्षा करना भी कठिन हो गया। मुसलमान आक्रमणकारी जहाँ कहीं पुस्तकालय आदि देख पाते उन्हें फ़ौरन ही जला कर खाक कर देते अथवा अन्य उपायों से नष्ट-भ्रष्ट करने में कोई कोर-कसर न रखते। परंतु फिर भी तत्कालीन विद्वत्समाज ने अपने धार्मिक ग्रंथों, शास्त्रों, विज्ञान तथा कला-संबंधी ग्रंथों की रक्षा के लिए प्राणपण से चेष्टाएँ कीं। मुस्लिम आक्रमणकारियों का कार्यक्षेत्र शुरू

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शुरू में उत्तर भारत तक ही सीमित रहा। दक्षिण भारत तक उन की पहुँच न हो सकी। अस्तु मुसलमानों के आक्रमण के बाद हिंदू संस्कृति और साहित्य का विकास दक्षिण में ही देख पड़ता है। मुस्लिम आक्रमण के वाद कुछ विद्वान् दक्षिण की ओर चले गए और कुछ उत्तर में नेपाल तथा तिब्बत आदि प्रदेशों में जा कर वस गए। कुछ ने राजपूताने की मरुभूमि में शरण ली, और कुछ दक्षिण-पश्चिम भारत के पार्वत्य प्रदेशों में आवाद हो गए। उन के साथ ही उन की संस्कृति और उन का साहित्य भी उन्हीं प्रदेशों में फैल गया।

सरस्वती-भांडारिक

हिंदू संस्कृति और साहित्य के विकास के साथ ही दक्षिण में हिंदू ग्रंथों की रचना हुई और उन्हें सुरक्षित रखने के लिए पुस्तकालय स्थापित किए गए। दक्षिण में 'विक्रम-पांड्यचतुर्वेदीमंगलम्'[१] नामक एक प्राचीन ब्राह्मण-ग्राम में हमें पुस्तकालय के होने और उस के प्रबंध के लिए पुस्तकाध्यक्षों—सरस्वती-भांडारिकों—के नियुक्त किए जाने का विवरण मिलता है।

लोहे की आलमारियाँ

इन पुस्तकालयों के प्रवंध के वारे में हमें 'पौस्कर-संहिता'[२] से काफ़ी वातें मालूम होती हैं। उस से पता चलता है कि पुस्तकालयों के लिए पत्थर के भव्य भवन वनाए जाते थे। हस्तलिखित ग्रंथ कपड़े से ढक कर और डोरियों से बाँध कर लोहे की आलमारियों में सुरक्षित रक्खें जाते थे। पुस्तकालय के प्रवंध और व्यवस्था के लिए एक सुयोग्य विद्वान् पुस्तकाध्यक्ष रहता था। पुस्तकाध्यक्ष से केवल पुस्तकालय के प्रबंध करने की ही नहीं वरन् पुस्तकालय में आने वाले समस्त पाठकों और विद्यार्थियों को विज्ञान और कलाओं की शिक्षा देनें की योग्यता रखने की आशा की जाती थी।

---

[१] मद्रास एपिग्राफ़िकल रिपोर्ट फ़र १९१३-१४, १९१३ का नं० २७७

[२] न्यूटन मोहनदत्त—१८ नवंबर १९३१ को तृतीय अखिल बंगाल प्रांतीय पुस्तकालय सम्मेलन के अवसर पर सभापति के आसन से दिया गया भाषण।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुस्तकालय में आ कर अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य-जीवन के नियमों का विधिवत् पालन करना होता था।

आधुनिक समय में पुस्तकालयों में पुस्तकों को सुरक्षित रखने के लिए लोहे की आलमारियों का आविष्कार करने का समस्त श्रेय ब्रिटिश म्यूज़ियम के पुस्तकालय और वाचनालय का निर्माण करने वाले सर एनटानी पेनीज़ी को दिया जाता है। परंतु 'पौस्कर-संहिता में दिए गए उपरोक्त विवरण से यह बात भली भाँति स्पष्ट हो जाती है कि भारत में अब से हज़ार वर्ष पूर्व ही, पुस्तकों को सुरक्षित रखने के लिए लोहे की आलमारियाँ व्यवहार में लाई जाने लगी थीं।

मधुसूदन का चालुक्य पुस्तकालय

पुस्तकालयों के प्रबंध, शिक्षासंस्थाओं में उन के स्थान तथा पुस्तकाध्यक्षों—सरस्वती-भांडारिकों—के महत्व को बतलाने के लिए उपरोक्त पुस्तक के अतिरिक्त और भी प्रमाण उपलब्ध हैं। हैदराबाद दक्षिण में वादी के निकट नगाई नामक गाँव में मिलने वाले कन्नड लिपि के एक शिलालेख से इस संबंध में काफ़ी बातें ज्ञात हुई हैं। यह शिलालेख हैदराबाद की आर्कियालाजिकल सीरीज़ की आठवीं संख्या में प्रकाशित किया जा चुका है।

नगाई आजकल वादी नगर के निकट एक छोटा-सा गाँव है। प्राचीन काल में संभवतः वहाँ एक बड़ा नगर रहा होगा। यह नगर अब नष्ट हो गया है। परंतु इस के ध्वंसावशेष अब भी मौजूद हैं। इन ध्वंसावशेषों में नगर के प्राचीन वैभव का हाल बतलाने वाली बहुत सी चीज़ें मिलती हैं। इन्हीं में ऐतिहासिक महत्व के कई एक शिलालेख भी मिले हैं। इस गाँव के ३६ स्तंभ वाले एक मंदिर में जो 'अरुवधु-कंबाड़-गुड़ी' के नाम से प्रख्यात है—कन्नड भाषा में लिखा हुआ एक शिलालेख मिला है। इस के लिखने की तारीख २४ दिसंबर १०५८ ई० मालूम की गई है। इस शिलालेख में चालुक्य राजा रामनारायण के मंत्री और सेनापति मधुसूदन द्वारा स्थापित सार्वजनिक संस्थाओं का विवरण दिया हुआ है। मधूसूदन ने अन्य संस्थाओं के साथ ही 'चतिकशाला' नामक एक विद्यालय भी स्थापित किया था। इस विद्यालय में २५२ विद्यार्थियों के अध्ययन की व्यवस्था थी—२०० विद्यार्थियों के लिए वेदों और ५२ के लिए शास्त्रों की। विद्यालय

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में तीन आचार्य शास्त्रों की शिक्षा देने के लिए, तीन आचार्य वेदों की शिक्षा देनें के लिए और छः पुस्तकाध्यक्ष—सरस्वती-भांडारिक—नियुक्त थे।

अस्तु जिस पुस्तकालय की देख-रेख और प्रवंध के लिए छः पुस्तकाध्यक्षों की नियुक्ति आवश्यक थी, वह कितना वड़ा, उपयोगी और महत्वपूर्ण रहा होगा यह बात आप ही स्पष्ट है। इस से केवल पुस्तकालय की महत्ता ही प्रमाणित नहीं होती वरन् यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पुस्तकाध्यक्ष का काम किसी शिक्षक से कम महत्व एवं उत्तरदायित्व का न समझा जाता था। शिक्षकों और पुस्तकाध्यक्षों के पद समान प्रतिष्ठा के समझे जाते थे। उन की स्थिति भारतवर्ष के आधुनिक कालिजों के 'क्लार्क लाइब्रेरियनों' जैसी शोचनीय नहीं थी। उसी शिलालेख के अंत में अंकित कुछ पदों से पुस्तकाध्यक्ष के पद की प्रतिष्ठा और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। और यह बात भली भाँति प्रमाणित हो जाती है कि उस ज़माने में भी मधुसूदन ने पुस्तकाध्यक्षों के कार्य के महत्व को काफ़ी उदारतापूर्वक स्वीकार कर लिया था और वह अनेक अंशों में पुस्तकाध्यक्षों की योग्यता एवं प्रतिष्ठा-संबंधी आधुनिक विचारों से भी वहुत कुछ आगें बढ़ गया था। मधुसूदन नें शिक्षकों और पुस्तकाध्यक्षों को वेतन के वदले में जितनी भूमि देने का उल्लेख किया है उस से यह वात भली भाँति सिद्ध हो जाती है:—

४८ भाग भूमि प्रभाकर-दर्शन के आचार्य को।
३५ भाग भूमि भट्ट-दर्शन के आचार्य को।
३० भाग भूमि न्याय के आचार्य को।
२० भाग भूमि वेदांगों के प्रत्येक आचार्य को।
३० भाग भूमि प्रत्येक पुस्तकाध्यक्ष को।

शिक्षकों और पुस्तकाध्यक्षों को एक ही से वेतन देने की व्यवस्था से यह वात भी सिद्ध हो जाती है कि उन की योग्यता भी समान ही रही होगी।[1]

राजा भोज का पुस्तकालय

दक्षिण के इस महान् चालुक्य पुस्तकालय के वाद हमें वारहवीं सदी ईसवी में धारा नगरी के सुविख्यात विद्वान् और विद्वानों के आश्रयदाता राजा भोज के राजकीय

[1] एस्० आर० रंगनाथन, 'फ़ाइव लाज अव् लाइब्रेरी साइंस', पृ० ५७-५८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुस्तकालय का विवरण मिलता है। राजा भोज स्वयं एक सुप्रसिद्ध विद्वान्, कवि एवं लेखक था। उस के दरबार में कवियों, लेखकों और विद्वानों का समुचित आदर-सत्कार किया जाता था। उस का राजकीय पुस्तकालय अपने समय में अत्यंत प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता था। राजा भोज ने स्वयं भी कई पुस्तकों की रचना की थी। इन में से शिल्प-कला और वास्तुकला पर लिखी हुई 'समरांगण' नामक पुस्तक कुछ वर्ष हुए गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज़ में स्वर्गीय न्यूटन मोहनदत्त द्वारा संपादित की जा कर, प्रकाशित की जा चुकी है। राजा भोज के बाद उन के राज्य पर चालुक्य राजा सिद्धराज ने अधिकार कर लिया। सिद्धराज ने राजा भोज के सुप्रसिद्ध पुस्तकालय को धारा नगरी से हटा कर अन्हिलवाड़—बड़ौदा राज्यांतर्गत सुप्रसिद्ध पाटन नगर—में स्थापित किया और चालुक्य-वंश के राजकीय पुस्तकालय से संबद्ध कर लिया।[1]

राजा भोज ने अनेक और विविध विषयों में प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। उन्हों ने ज्योतिष, अलंकार, शिल्प, योग और व्याकरणशास्त्र का भी अच्छा अभ्यास किया था। इन में से प्रत्येक विषय पर उस ने ऐसे-ऐसे ग्रंथ लिखे जो आज भी प्रमाणभूत माने जा सकते हैं। अलंकारशास्त्र पर 'सरस्वतीकंठाभरण', योगशास्त्र पर 'राजमार्तंड' और ज्योतिषशास्त्र पर 'राजमृगांक-करण', ये भोज के लिखे ग्रंथ सुप्रसिद्ध हैं।[2]

भोज जैसा प्रसिद्ध ग्रंथकार था, वैसा ही विद्वज्जनों का विख्यात आश्रयदाता भी था। विद्वानों के प्रति वह अत्यंत उदार था। कहा जाता है कि प्रत्येक कवि को, जो एक भी उत्कृष्ट नवीन भावपूर्ण श्लोक बना कर ले जाता, भोज एक लक्ष मुद्राएँ देता था। संभव है कि कविजनों को उस के द्वारा उदारतापूर्वक दिए गए पुरस्कारों की कथाएँ अत्युक्तिपूर्ण हों, परंतु यह तो निश्चित है कि उस के राजकीय पुस्तकालय में तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ साहित्य का प्रशंसनीय संग्रह अवश्य रहा होगा।

राजा भोज ही के सदृश दक्षिण के हिंदू राजाओं के भी साहित्यिकों को प्रोत्साहन देने और संस्कृत ग्रंथों के संग्रह करने के प्रमाण मिलते हैं। दक्षिण के विजयनगर राज्य के राजा इस के लिए विशेषरूप से प्रसिद्ध थे। इस रियासत में वेद और शास्त्रों का

---

[1] न्यूटन मोहनदत्त का भाषण।
[2] चिंतामणि विनायक वैद्य, 'हिंदू भारत का अंत', पृ० २३७

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रचार करने वाले दो बड़े विद्वान् हुए थें। एक माधवाचार्य और दूसरे सायणाचार्य। माधवाचार्य विजयनगर के राजा के मंत्री थे। माधवाचार्य ने संस्कृत पुस्तकों के अनुवाद और उन के प्रकाशन का एक मंडल बनाया था जिस में बड़े-बड़े पंडित काम करते थे। सायणाचार्य सब के अनुवादों की परीक्षा करते थे।[1]

आधुनिक पुस्तकालयों का उद्देश्य केवल पुस्तक-संग्रह ही नहीं होता। पुस्तकों को अधिक से अधिक व्यवहार में लाना और उन के द्वारा जनसाधारण में ज्ञान का प्रसार करना, इन का चरम उद्देश्य माना जाता है। प्राचीन भारत के पुस्तकालयों का कोई संबद्ध इतिहास नहीं मिलता। इतिहासवेत्ताओं ने भारतीय पुस्तकालयों का कोई संबद्ध इतिहास तैयार करने के कोई उल्लेखनीय प्रयत्न भी नहीं किए हैं। फिर भी जो कुछ थोड़ी बहुत सामग्री मिलती है उस के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत के पुस्तकालय अवश्य ही बहुत उन्नत अवस्था में रहे होंगे। यह भी स्पष्ट है कि लेखनोपकरणों के अभाव में पुस्तकें लिखना और उन का संग्रह करना बहुत ही व्ययसाध्य कार्य रहा होगा। स्थान-स्थान पर पुस्तकालय स्थापित करना और उन्हें आधुनिक पुस्तकालयों जैसा लोक-प्रिय रूप देना संभव न था। परंतु यह फिर भी वे साहित्योन्नति और शिक्षाप्रसार के प्रमुख साधन रहे होंगे, इस में बहुत कम संदेह है।

जनसाधारण में ज्ञान-प्रसार के लिए पुस्तकालयों के अतिरिक्त और भी बहुत सी संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। पातंजलि के महाभाष्य में जनसाधारण में ज्ञानप्रसार का कार्य करने के लिए कई स्थलों पर 'ग्रंथिका' नामक संस्था का उल्लेख मिलता है। महामहोपाध्याय एस० कुप्पम् स्वामी शास्त्री, एम० ए०, आई० एस० के मतानुसार इन ग्रंथिकाओं के उद्देश्य आधुनिक पुस्तकालयों से बहुत कुछ मिलते-जुलते थे। आजकल के पौराणिक और कथावाचक अतीतकाल की ग्रंथिकाओं ही के अवशेष मात्र हैं।

पुस्तकालय और ग्रंथिकाओं के अतिरिक्त लोकशिक्षा के लिए सभा, समाज, गोष्ठी एवं साहित्यसमितियों आदि का भी उल्लेख मिलता है। परंतु लिपि का आविष्कार हो जाने के सैकड़ों वर्ष बाद तक भारत में सुन कर ज्ञान प्राप्त करने—श्रुति—ही का अधिक चलन रहा है। संभवतः इसी कारण हमें वैदिक काल में पुस्तकालय जैसी महत्व-पूर्ण एवं उपयोगी संस्था के होने के यथेष्ट प्रमाण नहीं मिलते।

---

[1] 'भारतवर्ष का इतिहास', (ज्ञानमंडल काशी), पृ० ६१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्फुट प्रसंग

१—संवत् १७६० में खाद्य वस्तुओं का भाव तथा देश की दशा

मुझे संवत् १७६० की लिखी हुई एक पुस्तक प्राप्त हुई है जिस से औरंगज़ेब के राज्यकाल के अंतिम वर्षों में इस देश की क्या दशा थी इस पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। लेखक ने पुस्तक के अंत में पुस्तक का लिपिकाल लिखने के साथ ही साथ उस तिथि को अन्न का क्या भाव था यह भी लिखा है। तदुपरांत उस ने सीधी-सादी भाषा में तत्कालीन देश-दशा का वर्णन कर दिया है।

"श्री सुलितानु मुदः दीन महद अवरंगजेब पातिसाहि गाजी। संवत गत वर्ष ४५ वृतमान ४६। अथ शुभ संवत्सरे अस्मिनु श्री नृपती विक्रमादित्य राज्ये संवत १७६० वर्ष वैसाष सुदि अषे त्रतिया ३। गुरु बासरे। घटी २० रोहिणी नाम नक्षित्रे घटी ६०। सौभगि नाम जोगे घटी १४। तारीख दोसरी सुभ दिने पुस्तक लिषितं। मिश्र बनवारीदास। तत पुत्र कासीदासु। तसि पुत्र विजैरामुः लेषक। लिषंत्री कटारौ गोत्र। षागरी ग्रामे नदवई समीपे सुभ स्थाने सुभं भवेतु।"

इस के पश्चात् लेखक ने जिन सज्जन के लिए यह पुस्तक लिखी है उन के पूर्वजों की एक लंबी नामावली और अन्न का बाज़ार भाव दिया है :—

"अन्नुभाव। मण २॥ऽ (ढाई मन) जौ। गेहूँ १॥ऽ (एक मन तीस सेर)। चना २ऽ (दो मन)। बाजरी २ऽ (दो मन)। ज्वार २॥ऽ (ढाई मन)। तेलु करवो ॥ऽ (तीस सेर)। टका मसीना १२। नरंगसाही टका ३५ कचेः। ये भाव वर्त रहे ता दिन पोथी लिषी।"

तत्कालीन देश दशा का वर्णन इस प्रकार किया है :—

"राजकुराजु। बहिदौ बहौत (झगड़ा अधिक)। जाटु को राजु। तुरक को राजु। हाकिम जाट कौ। तुरक कौ। भेज (मालगुज़ारी) की माँग दोउ करें। चैन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कुचैनु। जाट लूटै। तुरक लूटै। परिजा को चैनु नाही। इस विधि वर्तें। मंगलं लेषकानां च पाठिकानां च मंगलं। मंगलं सर्वलोकानां भूमौ भूपति मंगलं।

"अमिलदारी काविल की। क़ानूगो रामचंद विदांवनु। नदवई की सिरकार। षागरी को चौधरी बड़ोराम राय।"

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि अन्न का भाव बहुत ही सस्ता होने पर भी संवत् १७६० के लगभग मुग़लों की प्रजा सुखी नहीं थी। राज्य की कुव्यवस्था के कारण जनता को दुहरा कर अदा करना पड़ता था। जाट अधिकारियों और मुग़ल हाकिमों के अत्याचार से प्रजा पिस रही थी। सुख शांति का कहीं नाम भी नहीं था। लेखक के शब्द सीधे-सादे होने पर भी इतने ज़ोरदार हैं कि वे उस समय के कुशासन का रूप आँखों के सामने खड़ा कर देते हैं। वे प्रजा की यातनाओं को व्यक्त करने में भली भाँति समर्थ हैं।

नदवई भरतपुर राज्य में एक तहसील का मुख्य स्थान है, और खागरी नदवई के दक्षिण की ओर दो कोस पर एक ग्राम है।

मयाशंकर याज्ञिक

२—सत्यवती कथा

१. सब से प्राचीन ग्रंथ जिस की नक़ल हमारे पास है ईश्वरदास की सत्यवती कथा है। इस का रचनाकाल कवि ने अपने ग्रंथ में यों दिया है :—

जोति एक पंडव के संगा।
पाँच आलमा आठो अंगा॥
भादौं मास पाख उजियारा।
तिथि नवमी सो मंगलवारा॥
नखत अस्विनी मेषक चंदा।
पाँच जना के सदा अनंदा॥
जोगिनिपुर दिल्ली बड़ थाना।
साह सिकंदर बड़ सुलताना॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(अर्थात् संवत् १५५८ भादों सुदी ९, दिन मंगल, मेष राशि के अश्विनी नक्षत्र में जब चंद्रमा था और उस समय सुलतान सिकंदर (लोदी) बादशाह था)। इस ब्योरे के साथ किसी विरले ही ग्रंथ का रचना-काल लिखा गया होगा। सिकंदर लोदी अपने पिता बहलोल लोदी के मरने पर दिल्ली के तख़्त पर बैठा और अट्ठाइस वर्ष राज्य कर के संवत् १५७४ में मर गया। इस से यह सिकंदर लोदी ही हो सकता है, सिकंदर सूर नहीं।

सिकंदर लोदी बड़ा कट्टर मुसल्मान और मूर्तिपूजा का द्रोही था। उस ने हिंदुओं के अनेक मंदिर तुड़वाए। परंतु उसी के राज्य में अवधी के दो प्रसिद्ध लेखक हुए। एक कबीर और दूसरा ईश्वरदास। दूसरी बात इस ग्रंथ के रचने का स्थान है। 'दिल्ली बड़थाना' से हम तो यही अनुमान करेंगे कि यह काव्य दिल्ली में रचा गया। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि उस समय दिल्ली में सिकंदर बादशाह था। परंतु "दिल्ली बड़थाना" लिखने का कुछ विशेष प्रयोजन न रह जायगा। लोदी-वंश का मूल स्थान जौनपूर है इस से संभव है कि लोदी राज-वंश के साथ कुछ जौनपुर के रहने वाले कर्मचारी भी दिल्ली चले गए हों। उन्हीं में से ईश्वरदास भी था। इसी कारण इस काव्य की भाषा अवधी है।

श्री अवधवासी सीताराम

३—छत्रपति शिवाजी की जन्म-कुंडली

विश्वविख्यात महाराजा छत्रपति शिवाजी के आरंभिक जीवन के विषय में अभी अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। चित्रगुप्त बरवर तथा तारीखे-शिवाजी के अनुसार छत्रपति शिवाजी की जन्मतिथि १० एप्रिल, सन् १६२७ है। परंतु परमानंद कविकृत 'शिवभारत' उन का जन्म सन् १६३० में मानता है। बीकानेर के सरकारी पुस्तकालय की एक प्राचीन हस्तलिखित गुटका 'शिवभारत' के कथन का समर्थन करती है। इस गुटके में अनेक राजा, महाराजा, बादशाह, तथा मनसबदारों की जन्मपत्रियों का बहुत अच्छा संग्रह है। अंतिम जन्म-कुंडली संवत् १७१९ या सन् १६६२ ई० की है। इस से प्रतीत होता है कि यह संग्रह छत्रपति शिवाजी के जीवनकाल में ही कर लिया गया था। शिवाजी की जन्मकुंडल तथा उस का सिरनामा आदि इस प्रकार हैं:—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संवत १६८६ वर्षे फागुण बदी ३ भृगौ रात्रिगतघटी १ पल १ सिंहलग्नमध्यें शिवाजी रो जन्म।

जन्मलग्न

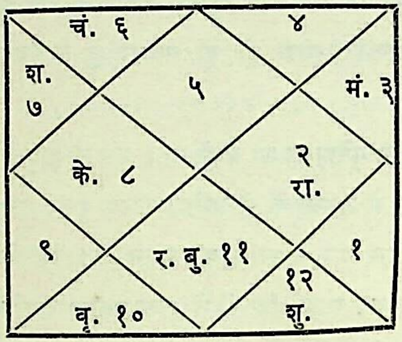

भाव

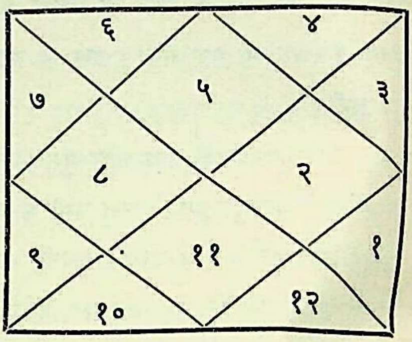

राजज्योतिषी पंडित विष्णुदत्त जी ज्योतिषाचार्य द्वारा गणित कराने पर मालूम हुआ कि इन में ६ ग्रह बिल्कुल ठीक स्थान पर हैं, परंतु वृहस्पति, बुध, और शुक्र ग़ल्ती से एक-एक स्थान पीछे रख दिए गए हैं। अन्यथा जन्मकुंडली सर्वथा शुद्ध है।

दशरथ शर्मा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद

विगत ८ अक्तूबर को बनारस में मुंशी प्रेमचंद का स्वर्गवास हो गया।

प्रेमचंद की मृत्यु द्वारा आधुनिक हिंदी साहित्य को एक बहुत बड़ी क्षति पहुँची है। वह हमारे साहित्य के एक महारथी थे। उन्हों ने एक साधारण कायस्थ-कुल में जन्म पाया था, और उन्हें आजन्म कठिनाइयों का सामना करते बीता। इस निरंतर परीक्षा ने एक बात भलीभाँति सिद्ध कर दी। वह यह कि मनुष्य अपनी परिस्थितियों की अपेक्षा बड़ा था। प्रेमचंद साहित्य के उच्चतम सिद्धांतों से प्रेरित थे, और अपने आदर्श की पूर्ति में सदा संलग्न रहते थे।

लगभग चौथाई शताब्दी तक वह हिंदी साहित्यिकों के मध्य एक प्रमुख आसन ग्रहण किए रहे। सब से पहिले उन्हों ने कहानी-लेखक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की। उन की विशेष शैली के अनुकरण में न जाने कितने अन्य लेखकों ने कहानियाँ लिखीं, लेकिन, यह कहना किंचित् अत्युक्ति न होगी, कि उन के समय में उन की बराबरी करने वाला दूसरा कहानी-लेखक न हुआ। यह बात नहीं कि उन की समस्त कहानियाँ (जिनकी संख्या प्रायः तीन सौ तक पहुँच चुकी है) समान रूप से उच्च कोटि की हुईं। परंतु उन की चुनी हुई कहानियाँ ऐसी हैं जो संसार की किसी भाषा की उत्तमोत्तम कहानियों से टक्कर ले सकती हैं। वह एकमात्र हिंदी लेखक थे जिन की कृतियों के अनुवाद इस देश की सभी प्रमुख भाषाओं में तथा अंग्रेजी और जापानी भाषाओं में भी हो चुके हैं।

प्रेमचंद की रचनाओं की सूची विस्तृत है। लगभग एक दर्जन तो उन्हों ने उपन्यास ही लिखे हैं, जिन में 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प' और 'ग़बन' मुख्य हैं। इन सभी कृतियों में हमें उच्च कोटि की कला की छाप मिलेगी। उन की अंतिम बड़ी कृति 'गोदान' के साथ एक शोकद स्मृति जुटी रहेगी। यह एक वृहत्काय उपन्यास है जिस में लेखक ने हमारी सामाजिक समस्याओं पर अच्छा प्रकाश

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

डाला है और जो लेखक की मृत्यु के कुछ मास ही पूर्व प्रकाशित हुआ है। 'संग्राम' और 'कर्बला' शीर्षक प्रेमचंद के नाटक हिंदी-जगत में ख्याति पा चुके हैं। उन्हों ने टॉल्सटॉय, गॉल्सवर्दी, अनातोल फ़्रांस और जॉर्ज ईलियट की रचनाओं के हिंदी अनुवादों द्वारा हिंदी साहित्य के भंडार की वृद्धि की है। गद्य शैलीकार की दृष्टि से वह छोटे वाक्यों तथा मुहाविरों के उस्ताद थे। साहित्यिक वाद-विवाद में भी जब वह पड़ते थे अपनी प्रतिभा दिखाते थे। संपादकों के बीच उन की विशेष प्रतिष्ठा थी और कई पत्र-पत्रिकाओं से वह संबद्ध रह चुके थे। बनारस के साप्ताहिक 'जागरण' के वह संचालक थे। इस पत्र द्वारा उन्हों ने समाजवादी तथा लोकहितकारी आदर्शों की पूर्ति का बीड़ा उठाया था और अनेक वर्ष तक घाटा उठाते रहते हुए भी वह इस पत्र का संचालन करते रहे थे। अंतिम दिनों में उन्हों ने अपनी शक्ति मुख्यतया 'हंस' पर केंद्रित की थी। कुछ ही मास पूर्व सरकार से ज़मानत माँगे जाने के कारण उन्हें 'हंस' का प्रकाशन स्थगित करना पड़ा था, परंतु अंततः वह उसे पुनरुज्जीवित करने में समर्थ हुए। वह इस पत्र की विशेष उत्साह के साथ सेवा करना चाहते थे परंतु खेद है कि नए 'हंस' की वह केवल एक संख्या देख सके!

सब कुछ मिला कर प्रेमचंद के कार्य का क्षेत्र विस्तृत था। उन्हों ने सत्यशः अपने को साहित्य-सेवा में मिटा दिया। उन के अंतिम दिन किंचित् कटु अनुभवों से पूर्ण थे, उन्हें कई आलोचकों के व्यक्तिगत और विषाक्त आक्षेपों का सामना करना पड़ा। परंतु वह एक सिपाही की भाँति सब का सामना करते रहे और अंततः यह कहना पड़ेगा कि उन का व्यक्तित्व उन के समस्त आलोचकों के सम्मिलित व्यक्तित्व से बड़ा था। हमारे आधुनिक समाज के चित्रण में जितना कौशल प्रेमचंद ने दिखाया था उतना इस युग के किसी दूसरे उपन्यासकार ने नहीं।

प्रेमचंद हिंदुस्तानी भाषा के बड़े हिमायती थे और अपने जीवन के अंतिम दिनों में उन के विचार इस पक्ष में और भी दृढ़ हो गए थे। उर्दू लेखकों के बीच भी प्रेमचंद का स्थान ऊँचा था अतएव इस भाषा के समर्थन के लिए वह विशेष अधिकारी भी थे।

लेखक तो प्रेमचंद बड़े थे ही, मनुष्यता भी उन में उच्च कोटि की थी। नए लेखकों को सदा प्रोत्साहन तथा आर्थिक सहायता भी देते रहते थे। बातचीत का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ढंग अत्यंत सरल और मनोरंजक होता। जी खोल कर अट्टहास करते थे। ऐसे समय पर उन की आँखों के चारों ओर जो गहरी रेखाएँ अंकित हो उठती थीं उन से प्रेमचंद के संघर्षपूर्ण जीवन का किंचित् आभास हो जाता था। हृदय में बड़ी मनुष्यता थी। आक्षेपों से आहत भी होते थे, स्वयं भी आक्षेप करते रहते थे, परंतु अंततः भोले बालक की भाँति कटु बातों को भूल कर मित्र बन जाते थे।

प्रेमचंद जैसा लेखक किसी भी देश में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता। हिंदी में तो उन की मृत्यु के कारण जो स्थान रिक्त हुआ है, उस की पूर्ति होती हुई नहीं जान पड़ती। हरिश्चंद्र के उपरांत उन के इतना बड़ा साहित्यिक हिंदी में नहीं उत्पन्न हुआ। वास्तव में वह हरिश्चंद्र से भी बड़े थे। यह स्मरण करते हुए दुःख होता है कि प्रेमचंद के अंतिम दिन उसी मकान में बीते जिस में हरिश्चंद्र ने निधन प्राप्त किया था। क्या यह कोरी कल्पना होगी कि हरिश्चंद्र की आत्मा एक उपयुक्त साथी के लिए लालायित थी, और उस ने इन्हें इंगित किया?

प्रेमचंद हिंदुस्तानी एकेडमी की काउंसिल के भी सम्मानित सदस्य थे।

हिंदी-संसार प्रेमचंद के लिए बहुत काल तक शोकातुर रहेगा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

१६३६

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

वार्षिक मूल्य पाँच रुपए

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिंदुस्तानी, १९३९

संपादक—रामचंद्र टंडन

संपादक-मंडल

१—डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फ़िल्० (ऑक्सन)

२—डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)

३—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम्० ए०, डी० एस्-सी० (लंदन)

४—डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)

५—श्रीयुत रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लेख-सूची

(१) भू-मंडल---लेखक, डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फ़िल्० (ऑक्सन) १

(२) भारतीय नृत्य की कुछ विशेष बातें---लेखक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० .. .. .. २१

(३) उदासी संत रैदास जी---लेखक, श्रीयुत परशुराम चतुर्वेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० .. .. ४१

(४) ऋग्वेदसंहिता में 'दास' और 'दस्यु'---लेखक, श्रीयुत क्षेत्रेशचंद्र चट्टोपाध्याय, एम्० ए० .. .. ५९

(५) चित्रकार "कवि" मोलाराम की चित्रकला और कविता---लेखक, श्रीयुत मुकंदीलाल, बी० ए० (ऑक्सन), बैरिस्टर-एट-ला ६७, १५१, ३३९

(६) मैथिलकविकुलचूड़ामणि महामहोपाध्याय विद्यापति ठाकुर---लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्० ७७,१७५,३१५

(७) नागार्जुन---लेखक, डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, एम्० ए०, डी० लिट्० १०९

(८) मारवाड़ की मेवाड़ को समय-समय पर दी हुई कुछ सहायताएँ---लेखक, साहित्याचार्य पंडित विश्वेश्वरनाथ रेउ .. १२५

(९) अवध के जिलों के नाम---लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) १३१

(१०) हिंदू धर्म के दस युग---लेखक, रावराजा रायबहादुर पंडित श्यामबिहारी मिश्र तथा रायबहादुर पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र .. १३५

(११) हिंदू-कालीन भारत में नगर-जीवन---लेखक, प्रोफ़ेसर प्रसन्नकुमार आचार्य, पी-एच्० डी० (लेडेन), डी० लिट्० (लंदन) .. १६७

(१२) उर्दू, हिंदी और हिंदुस्तानी---लेखक, श्रीयुत कृष्णप्रसाद कौल .. २२३

(१३) दिल्ली के सुल्तानों के युग में उमराव वर्ग---लेखक, डाक्टर बनारसी प्रसाद सक्सेना, एम्० ए०, पी-एच्० डी० .. २३७, ३६९

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(१४) **उत्तर-अपभ्रंशकालीन लोकभाषा**—लेखक, श्रीयुत सूर्यकरण पारीक, एम्० ए० .. २६३

(१५) **सूबा अवध के सिक्के**—लेखक, रायबहादुर बाबू प्रयागदयाल .. ३५७

(१६) **हिंदी भाषा-संबंधी अशुद्धियाँ**—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) ३८१

(१७) **महाभारत में साहित्यिक शैलियाँ**—लेखक, श्रीयुत वासुदेवशरण अग्रवाल, एम्० ए० .. .. .. ३८७

(१८) **डिंगल के गीत और उन का पिंगल**—लेखक, श्रीयुत नरोत्तमदास स्वामी, एम्० ए० .. .. .. ३९५

(१९) **प्राचीन भारत के पुस्तकालय**—लेखक, श्रीयुत श्यामनारायण कपूर, बी० एस-सी० .. .. .. ४४७

(२०) **स्फुट प्रसंग**—लेखक, श्रीयुत मयाशंकर याज्ञिक; श्रीयुत अवध-वासी रायबहादुर लाला सीताराम; श्रीयुत दशरथ शर्मा .. ४६३

(२१) **स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद** ४६७

समालोचना ९७,२१९

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था——लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ़ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १।)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति——लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य——लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १।)

(४) अरब और भारत के संबंध——लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता——लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत——लेखक, बाबू व्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६।)

(७) गोस्वामी तुलसीदास——लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र। मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक——संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत——लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट——संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १।)

(११) सौर-परिवार——लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास——लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी——संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य ३।।) सजिल्द, ३) बिना जिल्द।

(१७) हिंदी उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य सजिल्द १।।), बिना जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्ज़ा अबुलफ़ज़्ल। मूल्य १।)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य सजिल्द ४), बिना जिल्द ३।।)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य सजिल्द ५।।), बिना जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत व्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य ४।।) सजिल्द, ४) बिना जिल्द।

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का सजिल्द ५।।), बिना जिल्द ५)

(२३) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य बिना जिल्द ६), सजिल्द ६।।)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ।।)

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 2966

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सौर-परिवार

[लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०]

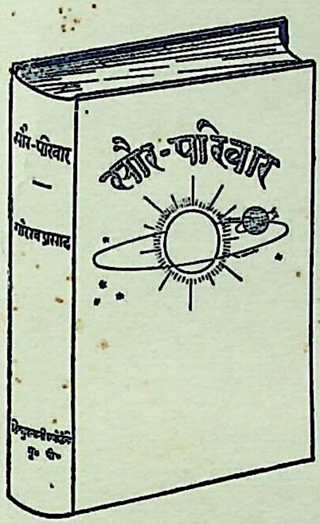

आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक

११६ पृष्ठ, ५८७ चित्र

(जिनमें ११ रंगीन हैं)

इस पुस्तक को काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक मिला है।

"इस ग्रंथ को अपने सामने देख कर हमें जितनी प्रसन्नता हुई उसे हमीं जानते हैं। * * जटिलता आने ही नहीं दी, पर इसके साथ साथ महत्त्वपूर्ण अंगों को छोड़ा भी नहीं। * * पुस्तक बहुत ही सरल है। विषय को रोचक बनाने में डाक्टर गोरखप्रसाद जी कितने सिद्धहस्त हैं, इसको वे लोग तो ख़ूब ही जानते हैं जिनसे आपका परिचय है।

*** * पुस्तक इतनी अच्छी है कि आरंभ कर देने पर बिना समाप्त किए हुए छोड़ना कठिन है।"—सुधा।**

"The explanations are lucid, but never, so far as I have seen, lacking in precision. * * I congratulate you on this excellent work."

श्री० टी० पी० भास्करन, डाइरेक्टर, निज़ामिया वेधशाला

मूल्य १२)

प्रकाशक—हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक देकर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता देकर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फ़ेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

मुद्रक—महेन्द्रनाथ पाण्डेय, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद
प्रकाशक—डाक्टर ताराचंद, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi